Hindi Edition

OF

Pandit Ishwar Chandra Vidyasagar's

Vyakaran Kaumudi

PART IV

(For Students of the B. A., I. A. and Matriculation Classes)

UNIVERSITY LIB... 31 JAN 1940 ALLAHABAD

Translated and Edited by

Narayan Chandra Chatterjee B. A.

Retired Head Master

Shree Vishuddhananda Saraswati Vidyalaya, Calcutta.

AND

Author of

Hindi Upakramanika, Vyakaran Kaumudi—II. & III. Chanakya Shloka Sangraha, Hindi Maukhik Ganit, etc. etc.

Published by

P. C. DWADASH SHRENI & Co.,

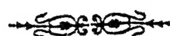
Educational Publishers, Aligarh.

1931.

Price Re. 1/-

Printed by H. K. Ghosh
at the **Rudra Printing Works,**
7, Gour Mohan Mukherjee Street,
CALCUTTA.

भूमिका।



संवत् १६०८ (अं० १८५१) में जगत्-विख्यात प्रातःस्मरणीय दयार्द्र-हृदय पण्डित ईश्वरचन्द्रजी विद्यासागर कृत संस्कृत व्याकरणकी "उपक्रमणिका" वंगभाषामें प्रकाशित हुई थी। संवत् १६१० (अं० १८५३) में उनकी "व्याकरण-कौमुदी" प्रथमभाग तथा द्वितीय और तृतीयभाग दो खण्डोंमें प्रकाशित हुए। उसके दूसरे वर्ष संवत् १६११ (अं० १८५४) में कौमुदीका चतुर्थभाग प्रकाशित हुआ। पण्डित-प्रवर विद्या-वारिधि ईश्वरचन्द्रजी की इन पुस्तकोंको पढ़नेसे संस्कृत व्याकरणका इतना ज्ञान हो जाता है, जिससे संस्कृत काव्य, पुराण, धर्म्मशास्त्र, न्याय, दर्शनादि सभी सुगमतासे पढ़े और सीखे जा सकते हैं। इनके अध्ययनमें साधारण बुद्धिके विद्यार्थियोंको भी दो वर्षसे अधिक नहीं लग सकते हैं। अंगरेज़ी विद्यालयोंके छात्रोंके लिए चार पाँच वर्ष लग सकते हैं। देवभाषा संस्कृत सीखनेके लिए पाणिनि, कलाप, सिद्धान्त-कौमुदी, संक्षिप्तसार, सुपद्म, सारस्वत, मुग्धबोध, प्रयोग रत्नमाला, प्रभृति कोईसा भी व्याकरण पढ़नेमें कमसे कम दश वर्ष बिताने पड़ते हैं, और फिर भी उसमें व्युत्पत्ति लाभ करना कठिन होता है। करुण-हृदय विद्यासागरजीने

कोमलमति विद्यार्थियोंके कष्ट-लाघव करने और स्वल्प समयमें सुगमताके साथ संस्कृत-व्याकरण सिखानेके अभिप्रायसे ही संस्कृत व्याकरण-समुद्रका मन्थनकर "उपक्रमणिका" और "कौमुदी" ये दो रत्न उत्पन्न किये हैं।

हिन्दी भाषाभाषी संस्कृत शिक्षार्थीके लिए और विशेषकर अंगरेज़ी कालेजोंमें पढ़ानेवाले संस्कृत परीक्षार्थियोंके लिए ज्ञान-सागर विद्यासागरजीकी ये पुस्तकें बहुत ही उपयोगी समझी जाती हैं। किन्तु अब तक इनके जितने हिन्दी संस्करण निकले हैं, उनमें बहुतसी बातोंका अभाव और त्रुटियाँ हैं। अतएव इन विद्यार्थियोंके उपकारके लिए वर्त्तमान समयके उपयोगी व्याकरण कौमुदीके द्वितीय, तृतीय भागको बाबू नारायणचन्द्रजी चट्टोपाध्याय महाशयने अनुवाद करके एक नया संस्करण संवत् १९८३ सालमें निकाला था, एवं व्याकरण कौमुदीका चतुर्थभाग भी अनुवाद करके समाप्त किया था तथा छपानेके लिए प्रेसमें भी भेज दिया था; किन्तु कुछ फ़र्म्मे छपनेके बाद ही अचानक परमपिताने उन्हें अपनी गोदमें उठा लिया—उनका स्वर्गवास हो गया। इस आकस्मिक वज्रपातके कारण उनके अनुगत पुत्र बाबू भैरवनाथजी चट्टोपाध्याय महाशय पितृशोकमें विभोर हो जानेसे यह पुस्तक कई एक फ़र्म्मे छपकर प्रेसमें ही पड़ी रही। कई महीने बाद बाबू भैरवनाथजीको इसका स्मरण हुआ और वे अपने पितृदेवकी अप्रकाशित पुस्तकको प्रकाशित करनेके लिए विशेषरूपसे प्रयत्न

करने लगे ; उसीके फलस्वरूप बहुत जल्दी ही पुस्तक छपाकर आपलोगोंके करकमलोंमें अर्पण की जा रही है। यह बताने की कोई आवश्यकता नहीं है कि संस्कृत शिक्षार्थियोंके लिए यह पुस्तक कितनी प्रयोजनीय है। सुधी पाठक जब इस पुस्तकका परिशीलन करेंगे, तभी उन्हें पता लगेगा, कि सुकुमार-मति विद्यार्थियोंके लिए चिरस्मरणीय पण्डित ईश्वरचन्द्रजी विद्यासागर महाशयने जितना श्रम उठाकर इस अमूल्य पुस्तक की रचना की है, तथा बाबू नारायणचन्द्रजीने भी इसे अनुवाद करके हिन्दी भाषाभाषी भाइयों पर जो उपकार किया है उसके लिए मैं उन्हें आन्तरिक धन्यवाद देता हूं, तथा मङ्गलमय परमपितासे प्रार्थना करता हूं कि उनकी आत्माको सद्गति लाभ हो।

जल्दीमें छपानेके कारण कहीं-कहीं इसमें त्रुटियाँ रह गई हैं। विश्वास है कि द्वितीय संस्करणमें पूर्णरूपसे संशोधन करनेका प्रयत्न किया जावेगा। आशा है कि द्वितीय, तृतीय भागको जैसे सुधी विद्यार्थियोंने जिस प्रेमके साथ ग्रहण किया है, उसी प्रकार इस चतुर्थ भागको भी वे अपनावेंगे। अलमति विस्तरेण।

आसाम बङ्गीय सारस्वत मठ
कोकिलामुख जोड़हाट,
आसाम
दुर्गाष्टमी सं० १९८४

निवेदक—
श्रीब्रह्मचारी गोपाल चैतन्य

सूचीपत्र ।

व्याकरण कौमुदी—चतुर्थ भाग ।

॥ श्रीः ॥

व्याकरण-कौमुदी।



चतुर्थ-भाग।



विभक्ति-निर्णय।

१। "सङ्ख्याकारकबोधयित्री विभक्तिः"। जिसके द्वारा संख्या और कारककी प्रतीति (अर्थात् बोध, ज्ञान, निश्चयता) होती है उसे विभक्ति कहते हैं। यथा—घटः, घटौ, घटाः; यहां घट-शब्दमें एकवचन, द्विवचन और बहुवचनकी विभक्तियोंके योग रहनेके कारण एक घट, दो घट, बहु घट इत्यादि संख्याका बोध होता है। चन्द्रं पश्यति, यहां "चन्द्र"में द्वितीया विभक्ति का योग रहनेके कारण चन्द्र-शब्दसे कर्म्म-कारककी प्रतीति होती है।

२। "विभक्तयः सप्त"। प्रथमा, द्वितीया, तृतीया, चतुर्थी, पञ्चमी, षष्ठी, सप्तमी ये सात विभक्तियां हैं।

प्रथमा (*First case-ending*)।

कर्त्तर्य्यव्ययोगे च तथा सम्बोधनेऽपि च।
नाम्न्युक्तकर्म्मणि प्रोक्ता विभक्तिः प्रथमा बुधैः॥

३। (1) "अभिधेयमात्रे प्रथमा" (१)। जहां क्रियापद प्रभृति नहीं रहता है, केवल अभिधेय-(२) के बोधके निमित्त शब्दका प्रयोग किया जाता है, वहां उस शब्दके उत्तर प्रथमा विभक्ति होती है। यथा—वृक्षः, लता, पुष्पम्, गिरिः, नदी, जलम्, रामः, सीता, लक्ष्मणः, एकः, द्वौ, त्रयः, द्रोणः, खारी, प्रस्थः।

४। (2) "कर्त्तरि"। कर्त्तृवाच्यके कर्त्तृ-कारकमें प्रथमा विभक्ति होती है। यथा, शिशुः क्रीड़ति, गौः शब्दायते, मेघो गर्ज्जति।

५। (3) "सम्बोधने" (३)। सम्बोधनमें प्रथमा विभक्ति होती है। यथा, हे पितः, हे भ्रातरौ, हे पुत्राः।

६। (4) "अव्यययोगे च" (४)। इति प्रभृति कईएक अव्यय शब्दोंके योगसे प्रथमा विभक्ति होतो है। यथा, अयोध्या नगरे दशरथ इति ख्यातो नृपतिरासीत् (*In the city of Ayodhya there was a king named Dasharatha*); पापात्मनां सङ्गः परित्यक्तुं साम्प्रतम् (*It is proper to shun the company of the wicked*); विषवृक्षोऽपि संवर्द्ध्य स्वयं

---

(१) प्रातिपदिकार्थलिङ्गपरिमाणवचनमात्रे प्रथमा (पाणिनि २।३।४६)। प्रातिपदिकार्थमात्र, लिङ्गार्थमात्र परिमाणमात्र और वचनमात्रका बोध होनेसे प्रथमा विभक्ति होती है। इसको "क्रियाराहित्ये", "अर्थमात्रे", "नाम्नि" तथा "लिङ्गार्थे" प्रथमा भी कहते हैं। (२) जिस शब्दसे जिसका बोध होता है, वही उस शब्दका अभिधेय है। (३) सम्बोधने च (पा २।३।४७)। (४) क्वचिन्निपातेनाभिधानम्।—सिद्धान्तकौमुदी।

छेत्तुमसाम्प्रतम् (*Even a poison-tree should not be cut down by one who has promoted its growth*)।

अतिरिक्त।

"उक्ते कर्म्मणि प्रथमा"। कर्म्मवाच्यके कर्म्मकारकमें (अर्थात् उक्त कर्म्ममें) प्रथमा विभक्ति होती है। यथा, बालकेन चन्द्रः दृश्यते (*The moon is being seen by the boy*)।

द्वितीया (*Second case-ending*)।

द्वितीया कर्म्मणि प्रोक्ता क्रियायाश्च विशेषणे।
हादिप्रत्यनुयोगे च व्याप्तौ कालाध्वनोरपि॥

७। (1) "कर्म्मणि द्वितीया" (१)। कर्त्तृवाच्यके कर्म्मकारकमें द्वितीया विभक्ति होती है। यथा, पुष्पं चिनोति; अन्नं भुङ्क्ते (He *takes* his *food*); जलं पिबति।

८। (2) "क्रियाविशेषणे च"। क्रियाके विशेषणमें द्वितीया विभक्ति होती है। "क्लीवैक वचनञ्च"। क्लीबलिङ्गके एकवचनमें ही इसका प्रयोग होता है। यथा, सत्वरं धावति; द्रुतं पलायते; मृदु हसति; साधु भाषते (*speaks well*)।

९। (3) "अध्वकालाभ्यामत्यन्तसंयोगे" (२)। अत्यन्त-संयोग अर्थात् व्याप्ति (*pervasion*) बोध होनेसे अध्व-(पथ *path* or *distance*) वाचक और काल-वाचक शब्दोंके उत्तर द्वितीया विभक्ति होती है। यथा, अध्व-वाचक—क्रोशं गिरिः स्थितः (*The hill stretched over two miles*);

(१) पा २।३।२। (२) कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे (पा २।३।५)।

योजन भृत्येनानुगतः (He *was followed by the servant for eight miles*)। काल-वाचक—दिवसमुपवसति (*dwells during the day* (१) ; मासमधीते (*has been reading for a month*) (२) । क्रोशं, योजनं, दिवसं, मासं व्याप्येत्यर्थः ।

१० । (4) "अभिपरिसर्व्वोभयेस्तसन्तैः" (३) । तस्-प्रत्ययान्त अभि, परि, सर्व्वा, उभय इन कईएक शब्दोंके अर्थात् अभितः (*towards, around, near, before, on either side of*), परितः (*around, on all sides of*), सर्व्वतः (*on all sides of, all over*) और उभयतः (*on both sides of*) शब्दोंके योगसे द्वितीया विभक्ति होती है । यथा, ग्राममभितः, गृहं परितः, उद्यानं सर्व्वतः, नदीमुभयतः ।

११ । (5) "प्रत्यनुधिङ्निकषान्तरान्तरेणयावद्भिः" (३) । प्रति (*towards*), अनु (*after, inferior to*), धिक् (*fie*

---

(१) परन्तु 'दिवसे उपवसति' = *Fasts during the day*. (२) व्याप्ति-अर्थ नहीं होनेसे द्वितीया विभक्ति नहीं होती। यथा, मासस्य द्विरधीते (*reads twice in a month*); क्रोशस्यैकदेशे पर्व्वतः ।

(३) "हादियुक्तात्" । हादि अर्थात् हा (*woe be to*), धिक्, समया (*near*), निकषा, अन्तरा, अन्तरेण, अभितः, परितः, यावत्, सर्व्वतः, उभयतः, उपर्य्युपरि (सामीप्य अर्थमें—*just above or over*) अध्यधि (*just above or near*), अधोऽधः (*just below*) इन अव्ययोंके योगमें द्वितीया विभक्ति होती है। यथा, हा कृष्णाभक्तम् (*Woe be to him who is not a devotee of Krishna*), हा मूर्खम् ; समया ग्रामं (*near*

upon), **निकषा** (*near*), **अन्तरा** (**मध्य अर्थमें**—*between*). **अन्तरेण** (**विना अर्थमें**—*without, excepting*), **यावत्** (*as long as, as far as*) **इन कईएक शब्दोंके योगमें द्वितीया विभक्ति होती है। यथा, दीनं प्रति दया राममनुजातो लक्ष्मणः** (*Laksman was born after Rama*), **कृपणं धिक्, ग्रामं निकषा नदी, स त्वां मां च अन्तरा उपविष्टः** (*He sat between you and me*), **श्रममन्तरेण** (*without labour*) **विद्या न भवति, वनं यावत् अनुसरति** (*follows as for as the forest*) ।

---

the village) ; उपर्य्युपरि लोकं हरिः (*Hari is just over the world*) ; अध्यधि भुवनम् (*just above or near the centre of the world*), अध्यधि ग्रामं (*just near or above the village*) ; अधोऽधः लोकम् (*just below the world*), नवानधोऽधो बृहतः पयोधरान् (माघ) । औरोंके उदाहरण मूलमें हैं। हा, धिक् तथा उपर्य्युपरि इन तीनोंके योगसे द्वितीयाके अतिरिक्त अन्य विभक्तियोंका प्रयोग भी होता है। जैसे :—(१) हा-शब्दके योगसे सम्बोधनमें प्रथमा विभक्ति होती है। यथा, हा भगवन् वशिष्ठ (*Alas, oh revered Vashistha !*), हा राम, हा देवर, हा तात मातः ; हा राम हा कष्टमिति ब्रुवन्तः, परान्मुखैस्ते न्यवृतन्मनोभिः । (भट्टि) । (२) शिष्टप्रयोगमें (*in idiomatic expression or authoritative usage*) कभी कभी धिक्-शब्दके योगसे प्रथमा विभक्ति होती है। यथा, धिगियं दरिद्रता (*cursed be this poverty*) ; और कभी कभी धिक्-शब्दके योगसे सम्बोधनमें प्रथमा विभक्ति होती है और द्वितीया विभक्त्यन्त पद उह्य रहता है ।* यथा, धिक् मूर्ख ! किं भवान् अस्मादुपाध्यायादपि धर्म्मवित्तरः ? (Fie upon you, fool ! do you know religion even better than our preceptor ?), धिक् मूर्ख ! किमेवमुपहससि माम् ? (Fie upon

अतिरिक्त।

"कर्म्मप्रवचनीययोगे च"। कर्म्मप्रवचनीययुक्ते द्वितीया (पा २।३।८)। जो सब उपसर्ग धातुके साथ मिलित नहीं होकर विशेष विशेष अर्थमें क्रियासे विच्छिन्नभावसे प्रयुक्त होकर क्रियानिरूपित सम्बन्धविशेषके प्रकाशक उपपदोंके सदृश व्यवहृत होते है अर्थात् जो सब उपसर्ग धातुके साथ न मिलकर विशेष विशेष अर्थमें उपपदोंके ऐसे प्रयुक्त होते हैं, उन्हें कर्म्मप्रवचनीय (*case-governing Upasargas*) कहते हैं। ऐसे उपसर्गों के योगमें द्वितीया विभक्ति होती है। यथा, "हीन" अर्थात् हीन अर्थमें अनु, उप—अनु हरिं, उप हरिं सुराः (*The gods are inferior to Hari*), अनु अर्ज्जुनं योद्धारः (The warriors are inferior to Arjun), अनु देवान् नराः (Men are inferior to the gods)। "अनुर्लक्षणे" अर्थात् हेतु अर्थमें अनु—जपम् अनु प्रावर्षत् (जपाद्धेतोरित्यर्थः, It rained after i. e. on account of the muttering of the prayer), कन्याम् अनु शोकः (तद्धेतोरित्यर्थः, Lamentation for the daughter)। "लक्षणेत्थम्भूताख्यानभागवीप्सासु प्रतिपर्य्यनवः" अर्थात् लक्षण (*distinguishing mark—a particular thing*), इत्थम्भूताख्यान (*a particular statement*), भाग (*share, portion*) और वीप्सा (*repeatition*) अर्थों में प्रति, परि, अनु। लक्षण—वृक्षं प्रति परि अनु वा विद्योतते विद्युत् (Lightening flashes near the tree); इत्थम्भूताख्यान—भक्तः हरिं प्रति परि अनु वा (The devotee is deeply attached to Hari), स मातरं प्रति परि अनु वा साधु (*He is well-behaved towards his mother*); भाग—यत् मां प्रति, परि अनु वा स्यात् (*That which is in*

---

you, fool! Why do you thus laugh at me?), रे मूर्ख त्वां धिक् इत्यर्थः। (3) सामीप्य भिन्न अन्य अर्थमें उपर्य्युपरि-शब्दके योगसे द्वितीया विभक्ति नहीं होती। यथा, उपर्य्युपरि सर्व्वेषां आदित्य इव तेजसा, उपर्य्युपरि बुद्धीनां चरन्ति राजबुद्धयः। विना (without) और ऋते (except) शब्दोंके योगमें भी द्वितीया विभक्ति होती है। यथा, धर्मं विना, रविमृते।

my share), लक्ष्मीः हरिं प्रति परि अनु वा (Lakshmi is in Hari's share); वीप्सा—सा वृक्षं वृक्षं प्रति परि अनु वा सिञ्चति (*She waters each and every tree*), गृहं गृहं प्रति परि अनु वा गीतम् (There is song in each and every house)। "अभिरभागे" अर्थात् (भाग अर्थको छोड़कर) लक्षण, इत्थम्भूताख्यान और वीप्सा अर्थमें अभि। लक्षणे—स राजानमभि वर्त्तते (*He is before the king*); इत्थम्भूताख्यान—भक्तो हरिमभि (The devotee is attached to Hari); वृक्षं वृक्षमभि सिञ्चति (He waters each and every tree)। "अतिरतिक्रमणे च" अर्थात् अतिक्रमार्थमें तथा पूजा अर्थमें अति। अतिक्रमार्थमें—अति सिक्तं, अति स्तुतं वा त्वया (Excessively or too much watered or praised by you); पूजार्थमें—अति देवान् कृष्णः (Krishna is superior to or most adorable of, all the gods)। सहार्थमें अनु—गङ्गाम् अनु वसिता पुरी (तया सह बद्धा इत्यर्थः)।

तृतीया (*Thrid case-ending*)।

करणे च सहार्थे चाप्यनुक्ते कर्त्तृकारके।
ऊनार्थे विकृताङ्गे च तृतीया शास्त्रसम्मता॥
कारणार्थे प्रकृत्यादौ अपवर्गे च लक्षणे।
प्रयोजनार्थे व्याख्याता सा सदा शब्दकोविदैः॥

१२। (1) "तृतीया करणे" (१)। करण-कारकमें तृतीया विभक्ति होती है। यथा, हस्तेन गृह्णाति (*takes by the hand*), **चक्षुषा पश्यति** (*sees with the eye*), **कर्णेन शृणोति** (*hears with the ear*)।

१३। (2) "सहार्थैः" (२)। सहार्थ (३) शब्दोंके योगमें

---

(१) कर्त्तृकरणयोस्तृतीया (पा २।३।१८)। (२) सहयुक्तेऽप्रधाने (पा २।३।१९)। (३) सह, साकं, सार्द्धं समं, सजुः इत्यादि।

तृतीया विभक्ति होती है। यथा, राम: सीतया लक्ष्मणेन च सह (*with*) वनं जगाम (१), केनापि सार्द्धं (*with*) विरोधो न कर्त्तव्यः। "सहार्थाऽप्रयोगेऽपि"। सहार्थ शब्दके अप्रयोगमें भी तृतीया विभक्ति होती है। यथा, पिता पुत्त्रेण गच्छति, पुत्त्रेण सहेत्यर्थः।

१४। (3) "ऊनवारणप्रयोजनार्थैश्च"। ऊनार्थ, वारणार्थ तथा प्रयोजनार्थ शब्दोंके योगमें तृतीया विभक्ति होती है। यथा, ऊनार्थ—एकेन ऊनः (*Less by one*), विद्यया हीन: (*Devoid of learning*), अहङ्कारेण शून्यः (*Devoid of pride*)। वारणार्थ—अलं विवादेन (*There is no need of quarrelling*), कलहेन किम् (*what is the use of*)। प्रयोजनार्थ—धनेन प्रयोजनम्, कोऽर्थः (*what purpose there is for*) कलहेन। (२)

१५। (4) "अध्वकालाभ्यामपवर्गे" (३)। अपवर्ग अर्थात् क्रिया-समाप्ति (*completion*) तथा फल प्राप्ति (*fruition*) का बोध होनेपर अध्व (पथ)-वाचक और काल-वाचक

---

(१) But we say पितृपुत्त्रौ सहागतौ when the nominatives are independent (प्रधान)।

(२) ऊनार्थक शब्द—ऊन, हीन, शून्य, रहित &c. having the sense of *less, deficient, destitute.* वारणार्थक शब्द—अलम्, कृतम्, किम् &c. signifying *prohibition.* प्रयोजनार्थक शब्द—अर्थः, प्रयोजनम्, कार्य्यम्, गुण: &c. signifying *use* or *need.*

(३) अपवर्गे तृतीया (पा २।३।६)।

शब्दोंके उत्तर तृतीया विभक्ति होती है। यथा, अध्व-वाचक—क्रोशेनानुवाकोऽधीतः। काल-वाचक—त्रिभिरहोभिः कृतम्; मासेन व्याकरणमधीतम् (*Grammar was learnt in a month*)। मासं व्याकरणमधीतं (*Grammar was read for a month*) न तु स्फुरति (*but has not been completed or learnt*); यहां अध्ययनको फलप्राप्तिका बोध नहीं होता है इसलिये मास शब्दके उत्तर तृतीया विभक्ति नहीं हुई।

१६। (5) "येनाङ्गेनाङ्गिनो विकारः" (१)। जिस अङ्ग विकृत होनेके कारण अङ्गीका विकार लक्षित होता है उस अङ्ग-वाचक शब्दके उत्तर तृतीया विभक्ति होती है। यथा, चक्षुषा काणः (*Blind of one eye*), पादेन खञ्ज (*Lame of one leg*), कर्णेन वधिरः (*Deaf of one ear*), पृष्ठेन कुब्जः (*Hump-backed*)।

१७। (6) "लक्षणात्" (२)। जिस लक्षण अर्थात् चिह्न (Characteristic sign or attribute)-के द्वारा कोई व्यक्ति सूचित होता है उस लक्षण बोधक शब्दके उत्तर तृतीया विभक्ति होती है। यथा, जटाभिः तापसमपश्यम् (*I saw a man and knew him to be an ascetic from his matted hair*), भूषाभिः शिशुमदर्शम् (*I saw one whom*

(१) येनाङ्गविकारः (पा २।३।२०)।

(२) इत्थम्भूतलक्षणे (पा २।३।२१)।

I knew to be an infant from the ornaments), छत्रेण (१) छात्रमद्राक्षम्।

१८। (7) "प्रकृत्यादिभ्यश्च" (२)। स्थल-विशेषमें प्रकृति आदि शब्दोंके उत्तर तृतीया विभक्ति होती है। यथा, प्रकृत्या (*by nature*) चारुः, स्वभावेन सरलः, आकृत्या सुन्दरः, जात्या (*by caste*) ब्राह्मणः (३), गोत्रेण शाण्डिल्यः (३), नाम्ना सोमरातः (३), प्रायेण (*mostly*) दुःखितः, वेगेन गच्छति, त्वरया धावति, यत्नेन लिखति, सुखेन स्वपिति, दुःखेन याति, क्लेशेन वदति। (४)

---

(१) गुरुदोषाणामावरणम् छत्रम् तेन। 'छत्रेण छात्रमद्राक्षम्' इस वाक्यका अंगरेजी अनुवाद 'I knew a student by his attempt to hide the defects of his preceptor' होता है।

(२) तृतीयाविधाने प्रकृत्यादिभ्य उपसंख्यानम् (वा० १४६६)।

(३) इन्हें "भेदे तृतीया" भी कहते हैं। ऐसे "अभेदे तृतीया" भी है। यथा, स धान्येन धनवान् (*He is rich of paddy or rice*—i. e.—his wealth consists of paddy or rice only and nothing else), वह्नित्वेन वह्निं जानामि (I know fire as fire)। "अभेदे तृतीया" "हेतौ तृतीया"-के अन्तर्गत है। (४) Other examples :—शतेन शतेन पाययति वत्सान्; अथात्मनः शब्दगुणं गुणज्ञः, पदं विमानेन विगाहमानः (रघु); तथेति शेषामिव भर्तुराज्ञामादाय मूर्ध्ना मदनः प्रतस्थे (कुमार); जीवितेन एव शपामि; केन पथा गन्तव्यम्, अनेन पथा गच्छ (Go by this way), कः प्रयातु वद तेन वर्त्मना (किरात), ययावनुद्घातसुखेन सोऽध्वना (माघ); कियता मूल्येन क्रीतम्, एतद्राज्ञः पाणिवलयं बहुमूल्यम् अल्पमूल्येन न विक्रेयम् (भोजप्रबन्ध); स्वरेण रामचन्द्रमनुहरति।

अतिरिक्त।

(१) "अनुक्ते कर्त्तरि तृतीया"। अनुक्त कर्त्तामें अर्थात् कर्म्मवाच्यके तथा भाववाच्यके कर्त्तृकारकमें तृतीया विभक्ति होती है। यथा, शिशुना चन्द्रः दृश्यते, रामेण वाली हतः; बालकैः रुद्यते, मया स्थीयते, तेन गतम्।

(२) "तृतीया प्रयोज्ये" प्रयोज्य कर्त्तामें तृतीया विभक्ति होती है। यथा, (अणिजन्त) देवदत्तः ओदनं पचति, (णिजन्त) यज्ञदत्तो देवदत्तेन ओदनं पाचयति।

(३) "हेतौ"। हेतु-अर्थमें तृतीया विभक्ति होती है। यथा, धनेन कुलम्, विद्यया यशः, अनेन दोषेण त्वं मण्डूकानां वाहनं भविष्यसि।

N. B.—हेतु और करण :—हेतु—द्रव्य, गुण तथा क्रिया तीनों का हो सकता है, परन्तु करण—केवल क्रियाका ही होता है। हेतु—निर्व्यापार तथा सव्यापार दोनों प्रकारके हो सकते हैं किन्तु करण—केवल सव्यापारका ही हो सकता है।

(४) "संज्ञोऽन्यतरस्यां कर्म्मणि"। सम् पूर्व्वक ज्ञा-धातुके कर्म्ममें विकल्पसे तृतीया विभक्ति होती है। यथा, पुत्रः पितरं पित्रा वा संजानीते (The son *lives in harmony with* his father)।

(५) "यजेः कर्म्मणः करणसंज्ञा सम्प्रदानस्य कर्म्मसंज्ञा"। यज्-धातुके कर्म्ममें तृतीया विभक्ति होती है और सम्प्रदानमें द्वितीया विभक्ति होती है। यथा पशुना रुद्रं यजते=पशुं रुद्राय ददाति।

(६) "प्रसितोत्सुकाभ्यां तृतीया वा (अधिकरणे)"। प्रसित तथा उत्सुक शब्दोंके योगमें विकल्पसे अधिकरणमें तृतीया विभक्ति होती है। यथा, केशेषु केशैर्वा प्रसितः उत्सुको वा।

(७) "तुल्यार्थैरतुलोपमाभ्यां तृतीया वा"। तुला और उपमा भिन्न तुल्यार्थक शब्दोंके (जैसे—तुल्य, सदृश, निभ, सम, संकाश इत्यादिके) योगमें विकल्पसे तृतीया विभक्ति होती है। यथा, तुल्यश्चन्द्रेण, सदृशश्चन्द्रेण चन्द्रस्य वा। तुला और उपमा शब्दोंके योगसे केवल षष्ठी विभक्ति होती है। यथा, स्त्रीमुखस्य तुला शशी,

स्त्रीमुखस्य उपमा पद्मम्। किन्तु तुला और उपमा शब्दोंके योगसे तृतीया विभक्ति भी देखनेमें आती है। यथा, तुलां यदारोहति दन्तवाससा (कालिदास), स्फुटोपमं भूतिसितेन शम्भुना (माघ)। ऐसे स्थलोंमें बहुतोंके मतसे "सहार्थाऽप्रयोगेऽपि" अर्थात् सहार्थके अप्रयोगमें तृतीया है; परन्तु मल्लिनाथ कहते हैं "सदृशपर्य्याययोः तुलोपमाशब्दयोः 'अतुलोपमभ्याम्' इति निषेधात् 'सादृश्य'-वाचित्वे तृतीयेत्याहुः।" इसलिये मल्लिनाथके अनुसार तुला और उपमा शब्दोंका अर्थ जब 'सदृश' (equal or similar—विशेषण) होता है तब इनके योगमें तृतीया नहीं होती किन्तु जब इनका अर्थ 'सादृश्य' (equality or similarity—विशेष्य) होता है तब इनके योगमें तृतीया विभक्ति होती है।

चतुर्थी (*Fourth case-ending*)।

सम्प्रदाने च तादर्थ्ये निवृत्त्यर्थे तुमर्थके।
नमः प्रभृतियोगे च चतुर्थी विहिता बुधैः॥
सम्पद्यमानात् क्लृप्यादेर्योगे सा परिकीर्तिता।
अवज्ञायां मन्यतेश्च कर्म्मणि स्याद्विकल्पतः॥
गत्यर्थकर्म्मणो वा स्यात् सा चेष्टायामनध्वनः।
समर्थार्थकशब्दानां योगे नित्यं भवेच्च सा॥

१६। (1) **"चतुर्थी सम्प्रदाने"** (१) **सम्प्रदान-कारकमें चतुर्थी विभक्ति होती है। यथा, दरिद्राय धनं ददाति, भिक्षवे** (to a beggar) **भिक्षां ददाति।**

२०। (2) **"तादर्थ्ये"** (२)। **तादर्थ्य बोध होनेसे अर्थात् कोई वस्तु या क्रिया जिसके निमित्त अभिप्रेत होती है उसके उत्तर चतुर्थी विभक्ति होती है। यथा, यूपाय** (*for a sacri-*

(१) पा २।३।१३। (२) इसे "निमित्तार्थे चतुर्थी" भी कहते हैं। चतुर्थी विधाने तादर्थ्य उपसंख्यानम् (वा. १४५८)।

ficial post) दारु (*wood*), कुण्डलाय हिरण्यम् (*gold*), अश्वाय घासः, रन्धनाय स्थाली, ज्ञानायाध्ययनम्, दानाय धनोपार्ज्जनम्, स्नानाय नदीं याति, पाकाय अग्निमाहरति, मुक्तये हरिं भजति।

२१। (3) "निवृत्तौ निवर्त्तनीयात्"। निवृत्तिका बोध होनेसे निवर्त्तनीयके उत्तर (अर्थात् जिसको निवारण किया जाता है उसके उत्तर) चतुर्थी विभक्ति होती है। यथा, मशकाय धूमः, मशकनिवृत्तये इत्यर्थः; पिपासायै जलम्, पिपासानिवृत्तये इत्यर्थः; रोगाय औषधम्, रोगनिवृत्तये इत्यर्थः; पापाय प्रायश्चित्तम् (*atonement*), पापनिवृत्तये इत्यर्थः।

२२। 4 "सम्पद्यमानात् क्लृप्यादेः" (१)। क्लृपि आदि (क्लृपि, जन्, भू, सम्+पद्) धातुओंके प्रयोगमें सम्पद्यमानके उत्तर चतुर्थी विभक्ति होता है। यथा—भक्तिर्ज्ञानाय कल्पते, ज्ञानं सुखाय सम्पद्यते जायते वा (*Knowledge conduces to happiness*), धर्म्मः स्वर्गाय भवति (*Virtue leads to heaven*), अधर्म्मो (*vice* or *sin*) नरकाय (*to hell*) भवति। कभी कभी क्रिया उह्य रहती है। यथा, पापं नरकाय।

२३। (5) "हित-सुख-नमोभिः" (२)। हित, सुख और नमस् शब्दोंके योगमें चतुर्थी विभक्ति होती है। यथा—हितं

---

(१) क्लृपि सम्पद्यमाने च (वा. १४५९)। (२) नमः स्वस्तिस्वाहा-स्वधालंवषड्योगाच्च (पा २।३।१६) "हितयोगे च" (वार्त्तिक १४६१)।

पुत्राय, सुखं शिष्याय, नमो गुरवे। क्रियाके योगमें (१) विकल्पसे होता है। यथा, गुरवे नमस्कृत्य, गुरुं नमस्कृत्य।

२४। (6) "स्वस्तिस्वाहास्वधावषड्भिः" (२)। स्वस्ति, स्वाहा, स्वधा और वषट् शब्दोंके योगमें चतुर्थी विभक्ति होती है। यथा, स्वस्ति प्रजाभ्यः (*Good fortune be to the subjects*); स्वाहा अग्नये (*This offering is to Agni*); स्वधा पितृभ्यः (*This offering is to the ancestors*); इन्द्राय वषट् (*This offering is to Indra*)।

२५। (7) "समर्थार्थकैश्च"। समर्थार्थक (३) शब्दोंके योगमें चतुर्थी विभक्ति होती है। यथा, समर्थो मल्लो मल्लाय, अलं मल्लो मल्लाय, शक्तो मल्लो मल्लाय, प्रभुर्मल्लो मल्लाय। समर्थार्थक क्रियाके योगमें भी चतुर्थी विभक्ति होती है। यथा, प्रभवति मल्लो मल्लाय, शक्नोति मल्लो मल्लाय।

---

(१) नमस् शब्दके साथ क्रियाका योग रहनेसे द्वितीया तथा चतुर्थी दोनों विभक्तियां होती हैं। यथा, नमस्कुर्मः (*we bow down*) नृसिंहाय, नारायणं नमस्कृत्य। प्र+नम् और प्र+नि+पत् (*to salute*) धातुओंके योगमें भी द्वितीया और चतुर्थी विभक्तियां होती हैं। यथा, पुत्रः पितरं पित्रे वा प्रणमति; अहमार्य्यमिश्रान् प्रणिपत्य विज्ञापयामि, तस्मै प्रणिपत्य (*prostrating himself at his feet*) in तस्मै शशंस प्रणिपत्य नन्दी शुश्रुषया शैलसुतामुपेताम्।—कुमार ३।६०।

(२) नमःस्वस्तिस्वाहास्वधालंवषड्योगाच्च (पा २।३।१६)। अलमिति पर्य्याप्त्यर्थग्रहणम्।—भट्टोजिदीक्षित।

(३) समर्थ, शक्त, प्रभु, अलम्। यथा, अहं तुभ्यं समर्थः शक्तः प्रभुः अलं वा। (*I am a match for you*)।

२६। (8) "मन्यकर्म्मण्यनादरे विभाषा (१)। अवज्ञा बोध होनेसे दिवादिगणीय मन् धातुके अवज्ञा-बोधक कर्म्ममें विकल्पसे चतुर्थी विभक्ति होती है (२)। यथा, स त्वां तृणाय मन्यते (*He does not care a straw for you*), नाहं त्वां कुक्कुराय मन्ये (*I do not consider you to be a dog even*)। पक्षमें द्वितीया। श्रृगालादि (३) कर्म्ममें चतुर्थी विभक्ति नहीं होती। यथा, त्वामहं श्रृगालं मन्ये (*I consider you to be a jackal*)।

२७। (9) "वा गत्यर्थकर्म्मणि चेष्टायामनध्वनि" (४)। चेष्टा बोध होनेसे गत्यर्थक धातुओंके कर्म्ममें विकल्पसे चतुर्थी विभक्ति होती है। यथा ग्रामाय गच्छति, व्रजाय व्रजति। पक्षमें द्वितीया। चेष्टा-बोध नहीं होनेसे चतुर्थी विभक्ति नहीं होती। यथा, मनसा मथुरां गच्छति। अध्व-वाचक शब्द कर्म्म होनेपर भी नहीं होती। यथा, अध्वानं गच्छति, पन्थानं गच्छति।

अतिरिक्त।

(१) "क्रियार्थोपपदस्य च कर्म्मणि स्थानिनः"। तुम-प्रत्ययान्त क्रिया ऊह्य

---

(१) मन्यकर्म्मण्यनादरे विभाषाऽप्राणिषु (पा २।३।१७)। अप्राणिष्वित्यपनीय नौकाकान्नशुकश्रृगालवर्ज्जेष्विति वाच्यम (वा. १४६४)। (२) अनादर (अवज्ञा) बोध नहीं हो तो चतुर्थी विभक्ति नहीं होती। यथा, अश्मानं दृषदं मन्ये मन्ये काष्ठमुलूखलम्। अन्धायास्तं सुतं मन्ये यस्य माता न पश्यति॥—काशिका। (३) श्रृगाल, काक, शुक, नौ, अन्न। (४) गत्यर्थकर्म्मणि द्वितीयाचतुर्थ्यौ चेष्टायामनध्वनि (पा २।३।१२)।

(*understood*) रहे तो उसके कर्ममें चतुर्थी विभक्ति होती है। यथा, फलेभ्यो याति फलान्याहर्तुं यातीत्यर्थः ।

(२) "तुमर्थाच्च भाववचनात्"। भाववाच्यनिष्पन्न शब्द तुमन्त पदके स्थानमें व्यवहृत हो तो उसमें चतुर्थी विभक्ति होती है। यथा, पाकाय याति, यहां पाक (पच् + भावे घञ्) शब्द पक्तुम् इस तुमन्त पदके स्थानमें व्यवहृत हुआ है इसलिये पाक शब्दमें चतुर्थी विभक्ति हुई है ; ऐसे यागाय व्रजति, यष्टुं व्रजतीत्यर्थः ।

(३) "उत्पाते ज्ञापिते च"। प्राकृतिक लक्षणसे जो उत्पात (भय) सूचित होता है उसमें चतुर्थी विभक्ति होती है। यथा, "पीता वधाय विज्ञेया दुर्भिक्षाय तथासिता। वाताय कपिला विद्युदातपायातिलोहिनी ॥"—महाभारतम् ।

(४) "चतुर्थी वाशिष्यायुष्य-भद्र-कुशल-सुखार्थ-हितार्थैः"। आशीर्वाद बोध होनेसे आयुष्य आदि शब्दोंके योगमें चतुर्थी वा षष्ठी विभक्ति होती है। यथा, आयुष्यं, भद्रं, कुशलं, निरामयं, सुखं, शर्म्म, शं, अर्थः, प्रयोजनं, हितं, पथ्यं वा ते (तुभ्यं) तव वा भूयात ।

(५) "कथनार्थप्रेरणार्थयोश्च"। कथनार्थक तथा प्रेरणार्थक धातुओंके योगमें चतुर्थी विभक्ति होती है। यथा, कथनार्थक (*meaning to tell*)—कथयामि ते (तुभ्यं) भूतार्थम्, आख्याहि मे (मह्यं) को भवानुग्ररूपः, तस्मै शशंस प्रणिपत्य नन्दी, समाचष्ट (सम् + आ + चक्ष्-धातुसे) समागम्य दैत्यराजाय विस्तरात्, याज्ञवल्क्यो मुनिर्यस्मै ब्रह्मपरायणं जगौ (गै-धातुसे), उपस्थितां होमवेलां गुरवे निवेदयामि ; प्रेरणार्थक (*meaning to send*)—भोजेन दूतो (*messenger*) रघवे (*to Raghu*) विसृष्टः (*was sent*), अये तदिदमाभरणं मया स्वशरीरादवतार्य्य राक्षसाय प्रेषितम् (*Ah, this is the ornament which I sent to Rakshasa after taking it off from my own person*)—मुद्राराक्षसम् ।

पञ्चमी (*Fifth case ending*) ।

अपादानेऽन्यार्थयोगे विभक्तिः पञ्चमी मता ।
सीमाभिव्याप्तिबोधे च स्यादाशब्दस्य योगतः ॥

यत: कालाध्वनो मानं तस्मात् भवति पञ्चमी।
दिग्देशकालाद्यर्योगे नित्यं सा परिकीर्त्तिता॥
ल्यब्लोपे कर्म्मणि ज्ञेया तथाधिकरणेऽपि च।
बहिरारात्प्रभृतिभिर्युक्ताद्व भवति पञ्चमी॥
ऋतेयोगे पञ्चमी च द्वितीयापि तथा भवेत।
तृतीया पञ्चमी प्रोक्ता हेत्वर्थे शास्त्रदर्शिभि:॥
स्तोकाल्पकृच्छ्रकतिपयशब्देभ्यस्तथा कतिपयादपि।
पञ्चमी च तृतीया च द्वे विभक्ती विदुर्बुधा:॥
बहूनां वा द्वयोर्मध्ये यतोत्कर्ष: प्रतीयते।
निकृष्टवाचकात्तत्र पञ्चमी कथिता बुधै:॥
नानाविनापृथग्योगे तथा तिस्रो विभक्तय:।
पञ्चमी च द्वितीया च तृतीयापि भवन्ति हि॥

२८। (1) "अपादाने पञ्चमी" (१)। अपादान-कारकमें पञ्चमी विभक्ति होती है। यथा, अश्वात् पतितः, गृहाच्चलितः, जलादुत्थित:।

२९। (2) "ल्यब्लोपे कर्म्मण्यधिकरणे च" (२)। ल्यप्प्रत्ययान्त पदके अप्रयोगमें कर्म्ममें और अधिकरणमें पञ्चमी विभक्ति होती है। यथा, प्रासादात् प्रेक्षते, प्रासादमारुह्य इत्यर्थ:; आसनादवलोकयति, आसने उपविश्य इत्यर्थः।

३०। (3) "कालाध्वनोरवधेः" (३)। काल-परिमाण और अध्व-परिमाण बोध होनेसे अवधि-बोधक शब्दके उत्तर पञ्चमी

(१) पा २।३।२८। (२) जै० १४७४-७५। क्त्वा भी ल्यप्के अन्तर्गत है, इसलिये आसनादवलोकयति आसने स्थित्वा उपविश्य वा अवलोकयति। इसको "यबर्थे पञ्चमी" भी कहते हैं। (३) यतश्चाध्वकालनिर्म्माणं तत्र पञ्चमी (वा० १४७७)।

विभक्ति होती है। यथा, काल-परिमाण—अग्रहायणात् पञ्च मासाः, माघात् तृतीये मासि, विवाहात् सप्तमे दिने। अध्व-परिमाण—पाटलिपुत्रात् शतं क्रोशाः, प्रयागात् त्रिंशत् क्रोशाः, कुरुक्षेत्रात् दश योजनानि ।

३१। (4) "निकृष्टादेकोत्कर्षे" (१)। दो वा अनेकोंमेंसे एकका उत्कर्ष बोध होने पर निकृष्टके उत्तर पञ्चमी विभक्ति होती है। यथा, धनात् विद्या गरीयसी, चैत्रो मैत्रात् बलीयान्, माथुराः पाटलिपुत्रकेभ्यः आढ्यतराः ।

३२। (5) "मर्य्यादाभिविध्योराङ्योगे" (२)। मर्य्यादा और अभिविधि (३) बोध होनेसे आ इस अव्यय शब्दके योगमें पञ्चमी विभक्ति होती है। यथा, मर्य्यादा—आ जन्मनः, आ शैशवात्, आ समुद्रात्, आ हिमाचलात्। अभिविधि—आ वनात् वृष्टो देवः, वनं व्याप्य इत्यर्थः; आ सकलात् ब्रह्म, सकलं व्याप्य इत्यर्थः ।

३३। (6) "अन्यार्थैः"। अन्यार्थ शब्दोंके (४) योगमें

---

(१) "पञ्चमी विभक्तेः" (पा २।३।४२)।

(२) आङ् मर्य्यादावचने (पा १।४।८९); आङ् मर्य्यादाभिविध्योः (पा २।१।१३); पञ्चम्यपाङ्परिभिः (पा २।३।१०)। (३) तेन विना मर्य्यादा (सीमा *limit*), तत्सहितः अभिविधिः (व्याप्ति pervasion)। वर्जनार्थे अप तथा परि अव्ययोंके योगमें भी पञ्चमी विभक्ति होती है। यथा, अप परि वा त्रिगर्त्तेभ्यो वृष्टो देवः त्रिगर्त्तदेशं वर्जयित्वा इत्यर्थः (It rained everywhere excepting the country of the Trigartas)। यहां आ, अप, परि, कर्म्मप्रवचनीय हैं।

(४) अन्य, भिन्न, इतर, विलक्षण, व्यतिरिक्त ।

पञ्चमी विभक्ति होती है। यथा, मित्रादन्यः (१) कः परित्रातु समर्थः ; घटः पटादितरः (१) ; इदमस्माद्भिन्नम्। अन्यार्थ क्रियाके योगमें भी पञ्चमी विभक्ति होती है। यथा, स्वर्णं रजताद्भिद्यते (*Gold is different from Silver*)।

३४। (7) "दिग्देशकालवाचिभिः" (१)। दिग्‌वाचक, देशवाचक और कालवाचक शब्दोंके योगमें पञ्चमी विभक्ति होती है। यथा, दिग्‌-वाचक—पूर्व्वो ग्रामात्, उत्तरो गृहात्। देश-वाचक—चैत्रो मैत्रात् पूर्व्वदेशे (*Chaitra is to the east of Maitra*)। काल वाचक—चैत्रात् पूर्व्वः फाल्गुनः (*Falguna precedes Chaitra*), भोजनात् प्राक् (*before meal*), शयनात् पूर्व्वम् (*before sleeping*), उत्थानात् परतः (*after rising*), प्रस्थानादनन्तरम् (*after departure*)।

३५। (8) "वहिरारात्प्रभृतिभिः" (१)। वहिस् (*outside*), आरात् (दूरसमीपयोः, *remote* or *near*) और प्रभृति शब्दोंके योगमें पञ्चमी विभक्ति होती है। यथा, गृहात् वहिः (२), आरात् वनात् (*Near or remote from the wood*),

---

(१) अन्यारादितरर्त्तेदिक्शब्दाञ्चूत्तरपदाजाहियुक्ते (पा २।३।२९)=अन्य+आरात्+इतर+ऋते+दिक्शब्द+अञ्च्+उत्तरपद+आच्+आहियुक्ते।

(२) क्रमदीश्वरने वहिः शब्दके योगमें पञ्चमी तथा षष्ठी दोनों विभक्तियोंका विधान किया है। यथा (षष्ठी), अस्ति तस्य नगरस्य वहिः प्रतिविम्बोदकः सरोवरः। अदर्शञ्च मार्गाभ्यासवर्त्तिनः कस्यापि चपणकविहारस्य वहिः रक्ताशोकषण्डे निषस्नं कमपि चपणकम्।—दशकुमारचरितम्।

आरात् उद्यानात्, जन्मनः प्रभृति, शैशवात् प्रभृति (*from childhood*)।

३६। (9) "आ-आहिभ्याञ्च" (१)। आ और आहि प्रत्ययान्त शब्दोंके योगमें पञ्चमी विभक्ति होती है। यथा, उद्यानादुत्तरा गृहम्, गृहादुत्तराहि सरः, हिमालयात् दक्षिणा भारतवर्षम्, प्रयागाद् दक्षिणाहि विन्ध्यः।

३७। (10) "ऋते योगे द्वितीया च"। ऋते (*without*) शब्दके योगमें पञ्चमी और द्वितीया विभक्तियां होती हैं। यथा, ज्ञानादृते, ज्ञानमृते (*without knowledge*)।

३८। (11) "पृथग्विनाभ्यां द्वितीयातृतीये च" (२)। पृथक् (*other than*) और विना (*wtthout*) शब्दोंके योगमें पञ्चमी तथा द्वितीया और तृतीया विभक्तियां होती हैं। यथा, चैत्रात् पृथक्, चैत्रं पृथक्, चैत्रेण पृथक् (*other than Chaitra*); श्रमाद् विना, श्रमं विना, श्रमेण विना (*without labour*)। (३)

३९। (12) "स्तोककृच्छ्राल्पकतिपयेभ्यस्तृतीया च" (४)। स्तोक (*a little*), कृच्छ्र (*great difficulty*), अल्प (*very*

---

(१) अन्यारादितरर्त्तेदिक्शब्दाञ्चूत्तरपदाजाहियुक्ते (पा २।३।२९)। (२) पृथग्विनानानाभिस्तृतीयान्यतरस्याम् (पा २।३।३२)। (३) नाना शब्दके योगमें भी द्वितीया, तृतीया और पञ्चमी विभक्तियां होती हैं। यथा, नाना (without) नारीं (नार्य्या नार्य्याः वा) निष्फला लोकयात्रा।

(४) करणे च स्तोकाल्पकृच्छ्रकतिपयस्यासत्त्ववचनस्य (पा २।३।३३)।

little), और कतिपय (*several*) शब्दोंके उत्तर पञ्चमी और तृतीया विभक्तियां होती हैं। यथा, स्तोकान्मुक्तः, स्तोकेन मुक्तः (*released a little*); कृच्छ्रान्मुक्तः, कृच्छ्रेण मुक्तः ; अल्पान्मुक्तः, अल्पेन मुक्तः (*released with very little difficulty*) ; कतिपयान्मुक्तः, कतिपयेन मुक्तः (*released by several*)। विशेषण होनेसे नहीं होता। यथा, स्तोकः पाकः, स्तोकं पचति।

४०। (13) "हेतौ च" (१)। हेतु बोध होनेसे तद्बोधक शब्दके उत्तर पञ्चमी और तृतीया विभक्तियां होती (२) हैं। यथा, धनात् कुलम्, धनेन कुलम्; भयात् कम्पः, भयेन कम्पः ; हर्षात् नृत्यति, हर्षेण नृत्यति ; दुःखात् रोदिति, दुःखेन (*through* or *on account of grief*) रोदिति।

अतिरिक्त।

(१) "प्रतिनिधिप्रतिदाने च यस्मात्" (पा २।३।११); प्रतिः प्रतिनिधिप्रतिदानयोः (पा १।४।९२), प्रति = प्रतिनिधि और प्रतिदान। जिसका प्रतिनिधि (*representative*) वा जिसका प्रतिदान (*exchange*) होता है उसके उत्तर पञ्चमी विभक्ति होती है। यथा, प्रद्युम्नः कृष्णात् प्रति (*Pradyumna is the representative of Krishna*) ; तिलेभ्यः माषान् प्रतियच्छति—*He exchanges Mashas for sesamum.*

---

(१) पा २।३।२३। (२) "विभाषागुणेऽस्त्रियाम्" (पा २।३।२५)। इस सूत्रके अनुसार गुणवाचक स्त्रीलिङ्गभिन्न शब्दोंके उत्तर हेतु अर्थमें पञ्चमी और तृतीया विभक्तियां होती हैं। यथा, जाड्यात् जाड्येन वा बद्धः। गुणवाचक न होनेसे अथवा स्त्री लिङ्ग होनेसे केवल तृतीया विभक्ति होती है। यथा, धनेन कुलं, बुद्ध्या मुक्तः। किन्तु शिष्टप्रयोगमें इस नियमका बहुधा व्यतिक्रम ही देखनेमें आता है।

(२) "अकर्त्तर्यृणे पञ्चमी" (पा २।३।२४)। हेतुसूचक ऋणवाचक शब्दके उत्तर पञ्चमी विभक्ति होती है। यथा, शताद्बद्धः। हेतुसूचक ऋणवाचक शब्द कर्त्ता होनेसे नहीं होता। यथा, शतेन बन्धितः।

(३) "दूरान्तिकार्थेभ्यो द्वितीया च" (पा २।३।३५)। दूरार्थक और अन्तिकार्थक शब्दोंके उत्तर द्वितीया, तृतीया और पञ्चमी विभक्तियां होती हैं। यथा, नगरस्य दूरम् दूरेण दूरात् वा (*far from the town*); ग्रामस्य अन्तिकम्, अन्तिकेन, अन्तिकात् वा (*near the village*)। दूरार्थक और अन्तिकार्थक शब्द विशेषण होनेसे नहीं होती। यथा, दूरः पन्थाः। किसी किसी वैयाकरणोंके मतसे "दूरान्तिकार्थैः षष्ठी वा तेभ्योऽपि सप्तमीपञ्चमीतृतीयाद्वितीयाः"। दूरार्थक तथा अन्तिकार्थक शब्दोंके योगमें पञ्चमी वा षष्ठी विभक्ति होती है, और दूरार्थक तथा अन्तिकार्थक शब्दोंके उत्तर द्वितीया, तृतीया, पञ्चमी वा सप्तमी विभक्ति होती है; और वे एकवचनमें ही व्यवहृत होते हैं। यथा, ग्रामात् ग्रामस्य वा दूरं दूरेण दूरात् दूरे वा वसति (*He lives at a distance from the village*); ग्रामात् ग्रामस्य वा अन्तिकं अन्तिकेन अन्तिकात् अन्तिके वा वसति (*He lives near the village*)।

षष्ठी (*Sixth case-ending*)।

सम्बन्धे रिप्रभृतिभिर्युक्तात् षष्ठी भवेद् ध्रुवम्।
शत्राद्यन्यकृदन्तानां योगे कर्त्तरि कर्म्मणि ॥
कर्म्मणो वा दयादीनां स्मृत्यर्थानां प्रयोगतः।
कर्त्तुर्व्विकल्पे कृत्यानां तृप्त्यर्थकरणेऽपि वा ॥
जास्यादीनां प्रयोगे च कर्म्मणि स्याद्विकल्पतः।
सोपसर्गदिवश्चैव अवन्तस्य द्विपस्तथा ॥
आशिषि कुशलादीनां योगे षष्ठी प्रकीर्त्तिता।
चतुर्थी च भवेत्तत्र विदुषामिति सम्मतम् ॥
आशिषि नाथतेः षष्ठी विभाषा कर्म्मणि मता।
दूरार्थनिकटार्थानां योगे षष्ठी च पञ्चमी ॥

तुल्योपमावर्ज्जितस्य तुल्यार्थस्य प्रयोगतः।
षष्ठी विभक्ति विज्ञेया चतुर्थी तव चेष्यते॥
अन्यत्रापि विवक्षायां षष्ठी भवितुमर्हति॥

४१। (1) "षष्ठी सम्बन्धे" (१)। सम्बन्धमें षष्ठी विभक्ति होती है। यथा, मम पिता, तव पुत्त्रः, तस्य भ्राता, महिषष्य शृङ्गम्, गोर्दुग्धम्, नद्या जलम्, वृक्षस्य छाया, अग्नेः शिखा, वायोर्वेगः, जलस्य प्रवाहः।

४२। (2) "कर्त्तृकर्म्मणोः कृति" (२)। कृत्-प्रत्ययके प्रयोगमें कर्त्ता और कर्म्ममें षष्ठी विभक्ति होती है। यथा, कर्त्तामें —शिशोः शयनम्, अश्वस्य गतिः, तव पिपासा, मम बुभुक्षा। कर्म्ममें —अन्नस्य पाकः, पयसः पानम्, सुखस्य भोगः, धनस्य दाता, वृक्षस्य छेदकः।

४३। (3) "उभयप्राप्तौ कर्म्मणि" (३)। कर्त्ता तथा कर्म्म दोनोंमें षष्ठी प्राप्तिकी सम्भावना होनेसे केवल कर्म्ममें ही षष्ठी विभक्ति होती है। यथा, गवां दोहो गोपेन, पयसः पानं शिशुना, धनस्य दानं नृपेण, जलस्य शोषणं सूर्य्येण, अर्थस्य हरणं चौरेण। (४)

४४। (4) "क्वचिद्विभाषा कर्त्तरि" (५)। कहीं कहीं (४) कर्त्तामें

---

(१) षष्ठी शेषे (पा २।३।५०)। कारकप्रातिपदिकार्थव्यतिरिक्तः स्वस्वामिभावादिः सम्बन्धः शेषस्तत्र षष्ठी। (२) पा २।३।६५। (३) पा २।३।६६। (५) कृत्यानां कर्त्तरि वा (पा २।३।७१)। (४) कारिकाके अनुसार सकर्म्मक धातुके उत्तर कृत् प्रत्यय होनेसे वह कृत्प्रत्ययान्त शब्द यदि स्त्रीलिङ्ग हो जाय तो उसके योगसे कर्त्तामें विकल्पसे षष्ठी विभक्ति होती है। यथा, हानिः सुखानां दरिद्रस्य

विकल्पसे षष्ठी विभक्ति होती है। यथा, घटस्य कृतिः कुम्भ कारेण कुम्भकारस्य वा, शब्दानामनुशासनम् आचार्य्येण आचार्य्यस्य वा।

४५। (5) "न शतादेः" (१)। शतृ, शानच्, कसु

दरिद्रेण वा, परिचर्य्या गुरोः शिष्यस्य शिष्येण वा, वर्णना विष्णोर्भक्तस्य भक्तेन वा। किन्तु वार्त्तिकके अनुसार कृत्‌विहित अ-प्रत्ययान्त और णक-प्रत्ययान्त स्त्रीलिङ्ग शब्दोंके योगसे कर्त्तामें नित्य षष्ठी विभक्ति होती है। यथा, भेदिका बिभित्सा वा रुद्रस्य जगतः, क्रिया जगतः कृष्णस्य, इच्छा मुक्ते स्तपस्विनः। भट्टोजिका तथा दुर्गादासका और संक्षिप्तसारका भी यही मत है। श्रीराम तर्कवागीशके मतमें सकर्म्मक धातुके उत्तर स्त्रीं-विहित अ और णक भिन्न और कोई भी कृत्-प्रत्ययके योगसे कर्त्तामें विकल्पसे षष्ठी विभक्ति होती है। यथा, शब्दानामनुशासनं आचार्य्यस्य आचार्य्येण वा, गवां दोहो गोपस्य गोपेन वा। इन नियमोंके बारेमें वैयाकरणोंका बहुत ही मतभेद है। श्रीराम तर्कवागीशके और दुर्गादासके अनुसार तव्यादिके प्रयोगमें कर्त्ता तथा कर्म्म किसीमें षष्ठी विभक्ति नहीं होती। यथा, कृष्टव्या ग्रामं शाखा कपिना, याचितव्यः कृष्णो मोक्षं भक्तेन, दोहनीया गौर्दुग्धं गोपेन, नेयो भक्तो वैकुण्ठं कृष्णेन, वाह्यो भारो ग्रामं भृत्येन। विद्यानिवासके अनुसार द्विकर्म्मक धातुके उत्तर कर्म्मवाच्यमें कृत्-प्रत्यय हो तो दोनों कर्म्ममें षष्ठी विभक्ति होती है। यथा, कृष्णस्य मोक्षस्य याचको भक्तः, दोग्धा दुग्धस्य गोः कृष्णः, क्षीरस्य गवां दोहः कृष्णेन। संक्षिप्तसारके मतमें ऐसे स्थलोंमें मुख्य कर्म्ममें ही षष्ठी विभक्ति होती है। यथा, गां दोग्धा दुग्धस्य गोपः। किसी किसीके मतमें गौण कर्म्ममें ही षष्ठी विभक्ति होती है। यथा, दोग्धा दुग्धं गवां हरिः। पाणिनीयोंके अनुसार ऐसे स्थलोंमें प्रधान कर्म्ममें नित्य षष्ठी और गौण कर्म्ममें विकल्पसे षष्ठी विभक्ति होती है। यथा, नेता अश्वस्य ग्रामस्य ग्रामं वा। अकर्म्मक धातुके प्रयोगमें कर्त्तामें नित्य षष्ठी विभक्ति होती है। यथा, साधोर्वृद्धिः, शिशोः सुप्तिः। (१) न लोकाव्ययनिष्ठाखलर्थतृनाम् (पा २।३।६९)। लोकाव्यय (ल+उ+उक+अव्यय) ल=शतृ, शानच्, क्वसु, कानच्, स्यतृ, स्यमान, अव्यय—तुम्, क्त्वा, ल्यप्। तृन्=शीलार्थ तृन्।

कानच्, स्यतृ और स्यमान प्रत्ययोंके प्रयोगमें षष्ठी विभक्ति नहीं होती। यथा, शतृ—गृहं गच्छन्, जलं पिवन् (१)। शानच्—अन्नं भुञ्जानः, व्याकरणमधीयानः। क्वसु—ओदनं पेचिवान्, ग्रामं जग्मिवान्। कानच्—गुरुं ववन्दानः, शास्त्रं शुश्रुवाणः। स्यतृ—गृहं गमिष्यन्, वेदं पठिष्यन्। स्यमान—गुरुं सेविष्यमाणः, धनं दास्यमानः।

४६। (6) "न तुमुनादेः" (२)। तुमुन्, क्त्वा, ल्यप् और णमुल् प्रत्ययोंके प्रयोगमें षष्ठी विभक्ति नहीं होती। यथा, तुमुन्—गृहं गन्तुम्, चन्द्रं द्रष्टुम्। क्त्वा—जलं पीत्वा, फलं गृहीत्वा। ल्यप्—व्याकरणमधीत्य, गृहमागत्य। णमुल्—गुरुं सेवं सेवम्, शास्त्रं श्रावं श्रावम्।

४७। (7) "नोदन्तस्य" (२)। उकारान्त कृत्-प्रत्ययोंके प्रयोगमें षष्ठी विभक्ति नहीं होती। यथा, जलं पिपासुः, रिपून् जिष्णुः, शिलां क्षिपणुः, विपक्षं निराकरिष्णुः, फलं गृहयालुः।

४८। (8) नोकशीलतृन्भविष्यणिनाम्" (२)। उक, शीलार्थक तृन् और भविष्यदर्थक णिन् प्रत्ययोंके प्रयोगमें षष्ठी विभक्ति नहीं होती। यथा, उक—गृहं गामुकः, जलं वर्षुकः, शत्रुं घातुकः (३)। शीलार्थक तृन्—धनं दाता, अन्नं भोक्ता,

---

(१) "द्विषो विभाषा" (द्विषः शतुर्वा—वा० १५२२)। द्विष्-धातुका विकल्पसे होता है। यथा, सुरं द्विषन्, सुरस्य द्विषन्। (२) न लोकाव्ययनिष्ठाखलर्थतृनाम् (पा २।३।६९)। अकेनोर्भविष्यदाधमर्ण्ययोः (पा २।३।७०)। (३) कामुक-शब्दके प्रयोगमें षष्ठी विभक्ति होती है। यथा, धनस्य कामुकः।

विपक्षं निराकर्त्ता। भविष्यदर्थक णिन्—धनं दायी, घृतं भोजी, गृहं गामी।

४९। (9) "न खलर्थानाम्" (१)। खलर्थ प्रत्ययों (२) के प्रयोगमें षष्ठी विभक्ति नहीं होती। यथा, नैतत् सुकरं भवता, नैतद्दुष्करं तेन, सर्व्वमीषत्करं सुधिया, मया सुमर्षणः शत्रुः, त्वया दुःशासनो रिपुः।

५०। (10) "न निष्ठायाः" (१)। निष्ठा प्रत्ययोंके प्रयोगमें षष्ठी विभक्ति नहीं होती। यथा, क्त—तेन व्याकरणमधीतम्, मया जलं पीतम्, त्वया चन्द्रो दृष्टः। क्तवतु—स गृहं गतवान्, अहं चन्द्रं दृष्टवान्, त्वं वेदमधीतवान्।

५१। (11) "क्तस्य वर्त्तमाने" (३)। वर्त्तमान-कालमें विहित क्त-प्रत्ययके प्रयोगमें (४) षष्ठी विभक्ति होती है। यथा, राज्ञां मतः, राजभिर्मन्यते इत्यर्थः; सतां पूजितः, सद्भिः पूज्यते इत्यर्थः।

५२। (12) "अधिकरणवाचिनश्च" (५)। अधिकरण-

---

(१) न लोकाव्ययनिष्ठाखलर्थतृनाम् (पा २।३।६९)। (२) सु, दुर् और ईषत् शब्दोंके योगमें धातुके उत्तर जो ख और अन होते हैं, उन्हें खलर्थ प्रत्यय कहते हैं। (३) क्तस्य च वर्त्तमाने (पा २।३।६७)। (४) इच्छार्थक, ज्ञानार्थक और पूजार्थक धातुओंके उत्तर वर्त्तमान कालमें क्त प्रत्यय होता है—"मतिबुद्धिपूजार्थेभ्यश्च"; अन्यत्र अतीत कालमें क्त-प्रत्यय होता है। (५) पा २।३।६८।

कारकमें विहित क्त प्रत्ययके प्रयोगमें षष्ठी विभक्ति होती है। यथा, इदमेषां शयितम्, एतदेषामासितम्।

५३। (13) "विभाषा भावे" (१)। भाववाच्य-विहित क्त प्रत्ययके प्रयोगमें विकल्पसे षष्ठी विभक्ति होती है। यथा, मम स्नातम्, मम स्थितम्, मम शयितम्, मम जागरितम्। पक्षमें तृतीया। यथा, मया स्नातम् इत्यादि।

५४। (14) "कृत्यानां कर्त्तरि वा" (२)। कृत्य-प्रत्ययों (३) के प्रयोगमें कर्त्तामें विकल्पसे षष्ठी विभक्ति होती है। यथा, पुस्तकं तव पाठ्यम्, चन्द्रो मम द्रष्टव्यः, गुरुस्तस्यार्च्चनीयः। पक्षमें तृतीया। यथा, पुस्तकं त्वया पाठ्यम् इत्यादि।

५५। (15) "कर्म्मणि जासिपिष्निप्रहनां हिंसायाम्" (४)। हिंसा अर्थ बोध होनेसे जासि, पिष् और नि तथा प्र पूर्व्वक हन्-धातुके कर्म्ममें विकल्पसे षष्ठी विभक्ति होती है। यथा, चौरस्य उज्जासयति, शत्रोः पिनष्टि। नि तथा प्र व्यस्त, समस्त और विपर्य्यस्त (अर्थात् उलटे पुलटे) भावमें रहनेसे भी होती

---

(१) "नपुंसके भावे उपसंख्यानम्"। छात्रस्य हसितम्, मयूरस्य नृत्यम्, कोकिलस्य व्याहृतम्। "शेषविज्ञानात् सिद्धम्" तथा च कर्त्तृविवक्षायां तृतीयापि भवति। छात्रेण हसितमिति।—(काशिका)। (२) पा २।३।७१। (३) "तव्यानीयौ च यच्च ण्यत् क्यप् चेते कृत्यसंज्ञकाः"। मूलमें क्रमसे ण्यत्, तव्य और अनीयके उदाहरण दिये गये हैं। यत् और क्यप्के उदाहरण—शीतलं जलं सर्व्वेषां सर्व्वैः वा पेयम् (Cold water should be druuk by all), हरिः मम मया वा स्तुत्यः (Hari should be prayed by me)।

(४) जासिनिप्रहणनाटक्राथपिषां हिंसायाम् (पा २।३।५६)।

है। यथा, निहन्ति प्रहन्ति निप्रहन्ति प्रणिहन्ति वा चौरस्य। पक्षमें द्वितीया। हिंसा अर्थ न होनेसे षष्ठी नहीं होती।

५६। (16) "वा स्मृत्यर्थदयेशां कर्म्मणि" (१)। स्मरणार्थक धातु तथा दय् और ईश् धातुओंके कर्म्ममें विकल्पसे षष्ठी विभक्ति होती है। यथा, पुत्रो मातुः स्मरति, दाता दरिद्रस्य दयते (*is kind*), पिता पुत्रस्य ईष्टे (*The father rules over his son*)। पक्षमें द्वितीया।

५७। (17) "तृप्त्यर्थानां विभाषा करणे" (२)। तृप्त्यर्थक धातुओंके करण-कारकमें विकल्पसे षष्ठी विभक्ति होती है। यथा, नाग्निस्तृप्यति काष्ठानाम्, "अपां हि तृप्ताय न वारिधारा स्वादुः सुगन्धिः स्वदते तुषारा"—नैषध। पक्षमें तृतीया।

५८। (18) "अस्तादस्यात्यतसुभिः" (३)। अस्तात्, असि, आति तथा अतसु प्रत्ययोंके योगमें षष्ठी विभक्ति होती है। यथा, अस्तात्—पुरस्तादुद्यानस्य, उपरिष्टात् मञ्चस्य। असि—पुरो नगरस्य, अधो वृक्षस्य। आति—उत्तरात् समुद्रस्य, दक्षिणात् हिमालयस्य। अतसु—दक्षिणतो ग्रामस्य, उत्तरतो गृहस्य।

५९। (19) "कृत्वसुसुचोः कालाधिकरणे" (४)। कृत्वसु

(१) अधीगर्थदयेशां कर्म्मणि (पा २।३।५२)। अधीगर्थः—स्मरणार्थः। (२) षष्ठी शेषे (पा २।३।५०)। कर्म्मादीनामपि, सम्बन्धमात्रविवक्षायां षष्ठ्येव—भट्टोजिदीक्षितः। (३) षष्ठ्यतसर्थप्रत्ययेन (पा २।३।३०)। (४) कृत्वोऽर्थप्रयोगे कालेऽधिकरणे (पा २।३।६४)।

और सुच् प्रत्ययोंके प्रयोगमें काल वाचक शब्दके उत्तर अधिकरणमें षष्ठी विभक्ति (१) होती है। यथा, पञ्चकृत्वो दिवसस्याधीते (He reads *five times* a day), सप्तकृत्वो (*seven times*) दिवसस्यागच्छति ; सुच्—द्विर्दिवसस्य भुङ्क्ते (He eats *twice* a day), त्रिर्दिवसस्य स्वपिति (He sleeps *thrice* or *three times* a day)।

६०। (20) "एनपा द्वितीया च" (२)। एनप्-प्रत्ययान्त शब्दोंके योगमें षष्ठी और द्वितीया विभक्तियां होती हैं। यथा, दक्षिणेन (*to the south*) वृक्षवाटिकाया: (*of the orchard*) सर:, दक्षिणेन वृक्षवाटिकां सर: ।

६१। (21) "तुल्यार्थैस्तृतीया च" (३)। तुल्यार्थक शब्दोंके योगमें षष्ठी और तृतीया विभक्तियां होती हैं। यथा, मम तुल्यः, मया तुल्य: ; तव सम:, त्वया सम: ; तस्य सदृशः, तेन सदृश: । (४)

६२। (22) "आशिषि कुशलादिभिश्चतुर्थी च" (५)। आशीर्व्वाद बोध होनेसे कुशल आदि (६) शब्दोंके योगमें षष्ठी

---

(१) बोपदेव और क्रमदीश्वरके मतमें विकल्पसे होती है।

(२) पा २।३।२१। (३) तुल्यार्थैरतुलोपमाभ्यां तृतीयान्यतरस्याम् (पा २।३।७२)। (४) पाणिनिके अनुसार तुला और उपमा शब्दोंके योगमें केवल षष्ठी विभक्ति होती है। यथा, नास्ति तुला विष्णोः, नास्त्युपमा शिवस्य। (५) चतुर्थी चाशिष्यायुष्यमद्रभद्रकुशलसुखार्थहितैः (पा २।३।७३)। (६) कुशल, निरामय, हित, सुख, शम्, मद्र, भद्र, अर्थ, पथ्य, आयुष्य और एतदर्थक शब्द।

और चतुर्थी विभक्तियां होती हैं। यथा, कुशलं देवदत्तस्य भूयात्, कुशलं देवदत्ताय भूयात् (*May Devadatta fare well*); निरामयं देवदत्तस्य भूयात्, निरामयं देवदत्ताय भूयात् (*May Devadatta be healthy*); सुखं देवदत्तस्य भूयात, सुखं देवदत्ताय भूयात् (*May Devadatta be happy*)। (१)

६३। (23) "दूरान्तिकार्थैः पञ्चमी च" (२)। दूरार्थक और अन्तिकार्थक शब्दोंके योगमें षष्ठी और पञ्चमी विभक्तियां होती हैं। यथा, दूरं ग्रामस्य, दूरं ग्रामात्; अन्तिकं नगरस्य अन्तिकं नगरात्।

६४। (24) "निमित्ताद्धेतुप्रयोगे" (३)। हेतु-शब्दके प्रयोग रहनेसे निमित्तबोधक शब्दके उत्तर षष्ठी विभक्ति होती है (४)। यथा, अल्पस्य हेतोर्व्वसति, "अल्पस्य हेतोर्बहुहातुमिच्छन् विचारमूढ़: प्रतिभासि मे त्वम्"—रघु।

६५। (25) "सर्व्वनाम्नस्तृतीया च" (४)। हेतु शब्दका प्रयोग रहनेपर निमित्तबोधक सर्व्वनाम शब्दके उत्तर षष्ठी और

(१) आशीर्व्वाद बोध नहीं होनेसे चतुर्थी नहीं होती। यथा, देवदत्तस्य सुखं भवति, देवदत्तस्यायुष्यमस्ति। (२) दूरान्तिकार्थैः षष्ठ्यन्यतरस्याम् (पा २।३।३४)।

(३) षष्ठी हेतुप्रयोगे (पा २।३।२६)। (४) "निमित्तपर्य्यायप्रयोगे सर्व्वासां प्रायदर्शनम्"।—(वार्त्तिक १४७२)। "प्रायग्रहणाद् असर्व्वनाम्न: प्रथमाद्वितीये न स:"—भट्टोजि। बोपदेव और भट्टोजिदीक्षितने यहां तृतीयादि पांच विभक्तियोंका विधान किया है। यथा, ज्ञानेन निमित्तेन ज्ञानाय निमित्ताय ज्ञानात् निमित्तात् ज्ञानस्य निमित्तस्य ज्ञाने निमित्ते वा स: वसति। (४) पा २।३।२७।

तृतीया विभक्तियां होती हैं (१)। यथा, कस्य हेतोः स आगतः, केन हेतुना स आगतः।

अतिरिक्त।

"सम्बन्ध विवक्षया षष्ठी"। विवक्षा (वक्ताके बोलनेकी इच्छा) के कारण कभी कभी दूसरी विभक्तिके स्थानमें षष्ठी विभक्ति होती है। यथा, तावद् भयस्य भेतव्यं यावद् भयमनागतम् (*One may be afraid of an evil so long as it does not come*), यहां पञ्चमीके स्थानमें विवक्षाके कारण षष्ठी हुई है; अज्ञातकुल-शीलस्य वासो देयो न कस्यचित् (No accomodation should be given to a person of unknown birth and character), यहां विवक्षाके कारण चतुर्थीके स्थानमें षष्ठी हुई है।

* *N. B.* अंगरेजीके जिन वाक्योंमें "*seems to be*" तथा "*appears to be*" मिलते हैं उन वाक्योंके संस्कृत अनुवादमें षष्ठी विभक्तिका प्रयोग किया जाता है। यथा, He seems to me to be intelligent—सः बुद्धिमान् प्रतिभाति मे; You appear to me not to reason well—विचारमूढ़ः प्रतिभासि मे त्वम्; This boy seems to me to be the germ of great promise—महतस्तेजसो बीजं बालोऽयं प्रतिभाति मे; This seems strange to me—एतच्चित्रमिव मे प्रतिभाति; The universe seems to me to be devoid of anything—शून्यमेव मे प्रतिभाति जगत्; She seems to me to be the best jwell of the female creation—स्त्रीरत्नसृष्टिरपरा प्रतिभाति सा मे।

सप्तमी (*Seventh case ending*)।

आधारे च तथा भावे साध्वसाधुप्रयोगतः।
निमित्तात् कर्म्मयोगे च विभक्तिः सप्तमी मता॥

---

(१) बोपदेव, क्रमदीश्वर तथा भट्टोजिदीक्षितने प्रथमा प्रभृति, सातों विभक्तियोंका विधान किया है। यथा, कः हेतुः कं हेतुं केन हेतुना कस्मै हेतवे कस्मात् हेतोः कस्य हेतोः कस्मिन् हेतौ वा सः आगतः।

निर्द्धारणेऽनादरे च तथा स्वाम्यादियोगतः।
सप्तमी च तथा षष्ठी वैयाकरणसम्मता॥
साधुनिपुणयोगेन प्रशंसायाञ्च सप्तमी।
प्रसितोत्सुकयोगेन तृतीया सप्तमी मता॥
दूरार्थान्तिकार्थाच्च स्याद्विभक्तिचतुष्टयम्।
द्वितीया च तृतीया च पञ्चमी सप्तमी तथा॥
हेत्वर्थ शब्दयोगेन तथा सर्व्वा विभक्तयः।
भवन्ति सर्व्वनामभ्य इति शब्दविदां मतम्॥

६६। (1) "सप्तम्यधिकरणे" (१)। अधिकरण-कारकमें सप्तमी विभक्ति होती है। यथा, गृहे तिष्ठति, शय्यायां शेते, नद्यां स्नाति।

६७। (2) "यस्य च भावेन भावलक्षणम्" (२)। जिसके क्रियाके कालके द्वारा दूसरी क्रियाका काल निरूपित होता है, उसके उत्तर सप्तमी विभक्ति होती है (३)। यथा, रवावस्तंगते गतः, रवेरस्तगमनसमकालं गत इत्यर्थः; विधावुदिते समागतः, विधूदयसमकालं समागत इत्यर्थः; रजन्यां प्रभातायां प्रस्थितः, रजनीप्रभातसमकालं प्रस्थित इत्यर्थः। (४)

---

(१) पा २।३।३६। (२) पा २।३।३७। (३) इसको "भावे सप्तमी" (*Nominative Absolnte* or *Absolute case*) भी कहते हैं। सूर्य्ये उदिते पद्मं प्रकाशते (*The sun having risen*, the lotus blooms) यहां सूर्य्यकी क्रियाके (उदित-के) कालके द्वारा दूसरी क्रियाका (प्रकाशतेका) काल निरूपित होता है इसलिये सूर्य्य शब्दमें (भावे) सप्तमी विभक्ति हुई है। (४) *As soon... as, No sooner...than, Scarcely...before* (*or when*)

उसके साथ "एव" शब्द दिया जाता है। यथा, The thief fled *as soon as* I came = मयि आगते एव चौरः पलायितः; *No sooner* did the thief enter into the room *than* I awoke = चौरे कक्षं प्रविष्टे एव अहम् अजागरम्; *Scarcely* had he gone *before* (or *when*) I came = तस्मिन् अप्रस्थिते एव अहम् आगतः। Other examples of "भावे सप्तमी"— "स्वस्था भवन्ति मयि जीवति धार्त्तराष्ट्राः"; "अस्ताचलचूडावलम्बिनि भगवति चन्द्रमसि लघुपतनकनामा वायसः प्रबुद्धः"; "प्रविष्टे भाव एव तत्र भवति निरुपप्लवानि नः कर्म्माणि"; "नाथे कुतस्त्वय्यशुभं प्रजानाम्"।

६८। (3) "साधुनिपुणाभ्यामर्चायाम्" (१)। प्रशंसा बोध होनेपर साधु और निपुण शब्दोंके योगमें सप्तमी विभक्ति होती है (२)। यथा, व्याकरणे साधुः, साहित्ये निपुणः। (३)

६९। (4) "क्तस्य सहेनिना कर्मणि"। इनि-प्रत्ययके सहित क्त-प्रत्ययके प्रयोगमें कर्ममें सप्तमी विभक्ति होती है। यथा, अधीतमनेन 'अधीती व्याकरणे' (*who has learnt Grammar*), अवकीर्णमनेन अवकीर्णी व्रते।

७०। (5) "अध्वनो व्यवधौ प्रथमा च"। व्यवधान बोध होनेसे अध्ववाचक शब्दके उत्तर सप्तमी और प्रथमा विभक्तियां होती हैं। यथा, ग्रामो वनात् पञ्चसु क्रोशेषु पञ्च क्रोशा वा,

---

(१) साधुनिपुणाभ्यामर्चायां सप्तम्यप्रतेः (पा २।३।४३)। (२) वोपदेवके मतमें षष्ठी और सप्तमी दोनों विभक्तियां होती हैं। (३) प्रशंसाबोध नहीं होनेसे, निपुणः राज्ञो भृत्यः। परि, प्रति, अनु शब्दोंके योगमें सप्तमी नहीं होती। यथा, साधुः निपुणः वा मातरं प्रति परि अनु वा। "साध्वसाधु प्रयोगे च" इस सूत्रके अनुसार असाधु शब्दके योगमें भी सप्तमी होती है। यथा, असाधुः मातुले।

पञ्चक्रोशव्यवधाने विद्यते इत्यर्थः ; प्रयागः पाटलिपुत्रात् दशसु योजनेषु दश योजनानि वा, दशयोजनव्यवधाने विद्यते इत्यर्थः ।

७१ । (6) "प्रसितोत्सुकाभ्यां तृतीया च" (१) । प्रसित (*greatly desirous, very anxious*) और उत्सुक (*eager*) शब्दोंके योगमें सप्तमी और तृतीया विभक्तियां होती हैं। यथा, धनेषु प्रसितः, धनैः प्रसितः ; विद्यायामुत्सुकः, विद्ययोत्सुकः ।

७२ । (7) "क्रियामध्येऽध्वकालाभ्यां पञ्चमी च" (२) । दो क्रियाओंके मध्यवर्त्ती अध्ववाचक और कालवाचक शब्दोंके उत्तर सप्तमी और पञ्चमी विभक्तियां होती हैं। यथा, अध्व-वाचक—अयमिह स्थित्वा क्रोशे क्रोशाद्वा लक्ष्यं विध्येत् (*Standing here this man should hit the mark at a distance of one Krosa or two miles*) ; कालवाचक —अयमद्य भुक्त्वा द्व्यहे द्व्यहाद्वा भोक्ता (*Having dined to-day this man will dine after two days*) ।

७३ । (8) "दूरान्तिकार्थेभ्यो द्वितीयातृतीयापञ्चम्यश्च" (३) । दूरार्थ और अन्तिकार्थ शब्दोंके उत्तर सप्तमी तथा द्वितीया, तृतीया और पञ्चमी विभक्तियां होती हैं। यथा, दूरे ग्रामस्य, दूरं ग्रामस्य, दूरेण ग्रामस्य, दूरात् ग्रामस्य ; अन्तिके

---

(१) पा २।३।४४ । (२) सप्तमीपञ्चम्यौ कारकमध्ये (पा २।३।७) ; अर्थात् शक्तिद्वयमध्ये यौ कालाध्वनौ ताभ्यामेते स्तः । (३) दूरान्तिकार्थेभ्यो द्वितीया च (पा २।३।३५) ।

गृहस्य, अन्तिकं गृहस्य, अन्तिकेन गृहस्य, अन्तिकात् गृहस्य। विशेषण होनेसे नहीं होता। यथा, दूरो ग्रामः दूरः पन्थाः।

७४। (9) "षष्ठी चानादरे" (१)। क्रियाके द्वारा अवज्ञा (अनादर, *contempt or disregard*) बोध होनेसे अवज्ञेयके (जिसका अनादर हो उसके) उत्तर सप्तमी और षष्ठी विभक्तियां होती हैं। यथा, रुदति शिशौ जगाम, रुदतः शिशोर्जगाम; रुदन्तं शिशुमनादृत्येत्यर्थः (i. e. *disregarding the weeping child*)।

N. B.—अंगरेजीके वाक्योंके प्रारम्भमें 'not-with-standing', 'in spite of', 'when', 'while' प्रभृति हो तो इस नियमके अनुसार उसका संस्कृत अनुवाद षष्ठी अथवा सप्तमी विभक्तिसे किया जा सकता है।

७५। (10) "साक्षिप्रभृतिभिश्च" (२)। साक्षिन् (*witness*), प्रतिभू (*surety, bail*), कुशल, स्वामिन्, ईश्वर, अधिपति, प्रसूत (*born, brought forth*), आयुक्त (*dexterous, skilful*), दायाद (*heir*) इन सब शब्दोंके योगमें सप्तमी और षष्ठी विभक्तियां होती हैं। यथा, विवादे साक्षी, विवादस्य साक्षी; व्यवहारे प्रतिभूः, व्यवहारस्य प्रतिभूः (*A surety in law*); मीमांसायां कुशलः, मीमांसायाः कुशलः (*Skilful in arbitration* or *proficient in Mimansa Philosophy*); स्त्रियां प्रसूतः, स्त्रियाः प्रसूतः (*Born of* or *brought forth by* a woman)। (३)

---

(१) पा २।३।३८।

(२) स्वामीश्वराधिपतिदायादसाक्षिप्रतिभूप्रसूतैश्च (पा २।३।३९)। "आयुक्तकुशलाभ्यां तात्पर्ये"। (३) Other examples—देवेषु देवानां वा स्वामी, ईश्वरः, अधिपतिः

७६। (11) 'यतश्च निर्द्धारणम्' (१)। जाति, गुण, क्रिया अथवा संज्ञाके द्वारा सजातीय सकलोंमेंसे एकको पृथक करनेको अर्थात् चून लेनेको निर्द्धारण (*selection*) कहते हैं। जिससे निर्द्धारण किया जाता है, उसके उत्तर सप्तमी और षष्ठी विभक्तियां होती हैं। यथा, जाति द्वारा—मनुष्येषु क्षत्रियः शूरः, मनुष्याणां क्षत्रियः शूरः (*Kshatriyas are the bravest of all men*); गुणद्वारा—गोषु कृष्णा बहुक्षीरा, गवां कृष्णा बहुक्षीरा (*Among cows the black ones give the largest quantity of milk*); क्रियाद्वारा—अध्वगेषु (*among travellers*) धावन्तः (*those that run, the runners*) शीघ्रगामिनः (*fast goers*), अध्वगानां धावन्तः शीघ्रगामिनः (*Among travellers the runners are fast goers* or *among travellers those that run are the fastest*); संज्ञाद्वारा—छात्रेषु मैत्रः प्रवीणः, छात्राणां मैत्रः प्रवीणः।

N. B.—इस नियमसे निर्द्धारमें षष्ठी तथा सप्तमी विभक्तियां होती हैं। किन्तु "निकृष्टादिकोत्कर्षे" (३१) नियमसे निकृष्टके उत्तर पञ्चमी विभक्ति होती है। यथा, अजातमृतमूर्खेभ्यो मृताजातौ सुतौ वरम्, माथुराः पौष्पेभ्यः आढ्यतराः। इन दोनों नियमोंसे अंगरेजीसे संस्कृतमें अनुवाद करनेके लिये साधारणतः यह नियम किया जा सकता है कि अंगरेजी *Superlative degree* के अनुवादमें षष्ठी अथवा सप्तमी और *Comparative degree* के अनुवादमें पञ्चमी विभक्तिका व्यवहार किया जाय।

वा; सिंहासने सिंहासनस्य वा दायादः (*An heir to the throne*); आयुक्तः कटकरणे कटकरणस्य वा (*Skilful in making mats*)। (१) पा २।३।४१।

यथा *Superlative degree*—Hari is *the best* of all students (छात्राणां छात्रेषु वा हरिः उत्कृष्टतमः), Gold is *the brightest* of all metals (स्वर्णं धातूनां धातुषु वा उज्ज्वलतमम्)। *Comparative degree*—Hari is *better than* all other students (अन्येभ्यः छात्रेभ्यः हरिः उत्कृष्टतरः), Gold is *brighter than* all other metals (स्वर्णं अन्येभ्यः धातुभ्यः उज्ज्वलतरम्)।

७७। (12) "निमित्तात् कर्म्मयोगे" (१)। कर्म्मके साथ योग रहनेसे निमित्त-बोधक शब्दके उत्तर सप्तमी विभक्ति होती है। यथा, चर्म्मणि द्वीपिनं हन्ति दन्तयोर्हन्ति कुञ्जरम्। केशेषु चमरीं हन्ति सीम्नि पुष्कलको हतः॥ (They kill the *tiger* for *skin*, the *elephant* for *tusks*, the *Chamari* for *hair* and the *musk-deer* for *musk*); **वस्त्रेषु रजकमवधीत् कृष्णः** (Krishna killed the *washerman* for *clothes*)—**मुग्धबोध।** (२)

N. B.—कर्म्मके साथ निमित्त-बोधक शब्दका योग नहीं रहनेसे सप्तमी विभक्ति नहीं होती। यथा, राजा यशसे व्याघ्रं हन्ति। यहां कर्म्म व्याघ्रके साथ निमित्त-वाचक शब्द यशका योग (संयोग तथा समवाय) नहीं रहनेके कारण सप्तमी विभक्ति नहीं हुई।

---

(१) निमित्तमिह फलम्। योगः, संयोगसमवायात्मकः। यहां निमित्तका अर्थ फल है और योगका अर्थ संयोग और समवाय है। "घटादीनां कपालादौ द्रव्येषु गुणकर्म्मणोः। तेषु जातेश्च सम्बन्धः समवायः प्रकीर्त्तितः॥" इससे प्रतीत होता है कि 'अवयव' और 'अवयवी' के बीच जो सम्बन्ध वही समवाय है। सिद्धान्त-कौमुदी तथा मुग्धबोधके अनुसार केवल संयोग सम्बन्ध होने पर भी सप्तमी विभक्ति होती है।

(२) विद्यासागरजीका ७७ संख्यक नियम ऐसा है :—निमित्तात् कर्म्मसमवाये

अतिरिक्त।

(१) "अवच्छेदे सप्तमी"। अवच्छेद (*part of the body taken separately*) बोध होनेसे द्वितीया न होकर सप्तमी विभक्ति होती है। यथा, गृहीतः इव केशेषु मृत्युना धर्ममाचरेत्, द्रौपदी दुःशासनेन केशेष्वाकृष्टाभवत्। प्रहारार्थक धातुके योगमें भी जिसको प्रहार किया जाय उसमें सप्तमी विभक्ति होती है। यथा, आर्त्तत्राणाय ते शस्त्रं न प्रहर्तुमनागसि।

(२) "नक्षत्रे च लुपि" (पा० २।३।४५)। लुप्त तद्धितान्त नक्षत्र-वाचक शब्दके उत्तर अधिकरणमें सप्तमी और तृतीया विभक्तियां होती हैं। यथा, मूले मूलेन वा आवाहयेद्देवीं, श्रवणे श्रवणेन वा विसर्जयेत्।

(३) जिसका योग्यता बोध होता है उसके उत्तर सप्तमी विभक्ति होती है। यथा, अनेनाश्रितवात्सल्येन त्रैलोक्यस्यापि प्रभुत्वं त्वयि युज्यते (*On account of this loving kindness for a protegee, the mastery over the three worlds suits you*), युक्तरूपमिदं त्वयि (*This is fit for you*)। नि+युज् धातुके योगमें भी सप्तमी विभक्ति होती है। यथा, यः इमामाश्रमधर्मे नियुङ्क्ते।

(४) जिसको विश्वास किया जाता है उसमें प्रायः सप्तमी विभक्ति होती है। यथा, विश्वासो नैव कर्त्तव्यः स्त्रीषु राजकुलेषु च; हिडिम्बस्य वधाच्चैवं विश्वासो मे वृकोदरे, प्रत्ययः परवाचि कः, सुकृते वः कथं श्रद्धा, मा मयि अविश्वासिनी भूः, तथा च तस्यां हरिणा विशश्वसुः (*The deers so trusted her*)। कभी कभी द्वितीया विभक्ति भी होती है। यथा, प्रत्येतु कस्तद् भुवि दुरवृत्तम्, श्रद्धास्यते मामिति चिन्तयैव।

विभाषा—कर्मके साथ सम्बन्ध रहनेसे, निमित्तबोधक शब्दके उत्तर विकल्पसे सप्तमी विभक्ति होती है। यथा, चर्मणि द्वीपिनं हन्ति...पुष्कलको हतः। पक्षे चतुर्थी। यथा मुक्ताफलाय करिणं, हरिणं पलाय इत्यादि। और इसका पादटीकामें है वैयाकरण लोग केवल सप्तमी विधान करके मुक्ताफलाय करिणं हरिणं पलाय इत्यादिको अपप्रयोग कहते हैं। मैंने विद्यासागरजीके पादटीकाके आशय पर पाणिनीय वार्त्तिकसे १४९० वां सूत्र विद्यासागरजीके नियमके स्थानमें दिया है।

(५) स्निह्, अभि+लष्, अनु+रन्ज्, वि+तृ (*to impart*), अप+राध् प्रभृति धातुओंके तथा आसक्त (१) प्रभृति शब्दोंके योगसे सप्तमी विभक्ति होती है। यथा, त्वयि स्निह्यति मे हृदयम् (*I love you*), अवैमि (*I know*) ते तस्यां सोदर्य्यस्नेहम् (*sisterly affection*), प्रजापतिः तस्यां अभिलाषमकरोत्, देवे चन्द्रगुप्ते दृढ़मनुरक्ताः प्रकृतयः, वितरति (२) गुरुः प्राज्ञे विद्यां यथैव तथा जड़े, कस्मिन्नपि पूजार्हे अपराद्धा शून्यहृदया शकुन्तला, मय्यासक्तमनाः पार्थ।

(६) जिसमें कुछ सम्भव (*possible*) होता है उसमें सप्तमी विभक्ति होती है। यथा, कथमेतत् भवति सम्भाव्यते (How can it be possible with you?), किं न सम्भाव्यते त्वयि (*with thee*), विप्रेषु सर्व्वं सम्भाव्यते, सर्व्वं सखे! त्वय्युपपन्नमेतत् (O my friend! all these are possible with you)।

(७) जिसपर प्रसन्न हो उसमें सप्तमी और षष्ठी विभक्तियां होती हैं। यथा, अहं त्वयि तव वा प्रसन्ना (*am pleased*); अस्मिन् किमर्थं न प्रसन्ना भवसि, मम किमिति शीघ्रं प्रसन्ना असि; देवि, नित्यं प्रसन्नास्मि वः।

(८) "अधिकशब्दयोगे पञ्चमी च"। अधिक शब्दके योगमें सप्तमी और पञ्चमी विभक्तियां होती हैं। यथा, लोके लोकाद्वा अधिको हरिः (Hari is superior to this earth)।

कारक (Case)।

९८। "क्रियान्वयि कारकम्"। क्रियाके साथ जिसका अन्वय होता है उसे कारक कहते हैं।

---

(१) "व्यापृतासक्तव्यग्रतत्परैर्धूर्त्तकितवैः"। (२) वि+तृ (to impart) धातुके योगसे चतुर्थी विभक्ति भी पाई जाती है। यथा, मारीचस्ते (तुभ्यं) दर्शनं वितरति।

७८। "षट् कारकाणि"। अपादान, सम्प्रदान, करण अधिकरण, कर्म्म, कर्त्ता ये ही छः कारक हैं। (१)

अपादान (२) (Ablative case)।

८०। "यतो विश्लेषोऽपादानम्" (३)। जिससे विश्लेष (जुदाई, Separation) होता है उसे अपादान कारक (४) कहते हैं। यथा, अश्वात् पतितः, हस्ताद् भ्रष्टः, जलादुत्थितः, गृहात् प्रस्थितः, विदेशात् प्रत्यागतः।

८१। "भीत्रार्थानां भयहेतुः" (५)। भयार्थक तथा त्राणार्थक धातुओंके प्रयोगमें भयके हेतु (*Cause* or *source*) अपादान होता है। यथा, भयार्थक—व्याघ्राद् बिभेति, महिषात् त्रस्यति; त्राणार्थक—आतपात् त्रायते, भल्लुकाद्रक्षति (*Protects from the bear*)।

८२। "हेतुरुत्पत्तेः" (६)। उत्पत्तिका कारण (*The prime cause from which anything originates or proceeds*) अपादान होता है। यथा, बीजादङ्कुरो

---

(१) अपादानं सम्प्रदानं करणाधिकरणमेव च।
कर्म्म चैव तथा कर्त्ता कारकाणीति षट् विदुः॥

(२) अपाये वारणे चैव जिघ्रायाञ्च प्रतिग्रहे।
त्राणे भये तथान्तर्द्धौ प्रभवे जनने तथा॥
पराजये प्रमादे च जुगुप्सायां विरामतः।
आधिक्ये च अपादानं चतुर्द्दश प्रकीर्त्तितम्॥

(३) ध्रुवमपायेऽपादानम् (पा १।४।२४); अपायो विश्लेषः। (४) "अपादाने पञ्चमी"। २८ वां नियम देखो। (५) पा १।४।२५। (६) जनिकर्त्तुः प्रकृतिः

जायते, पितुः पुत्रो जायते, दुग्धात् घृतमुत्पद्यते, धर्म्मात् सुखं भवति, अधर्म्मात् दुःखमुद्भवति। (१)

८३। "आविर्भवन भू-भुवः" (२)। भू-धातुके प्रयोगमें आविर्भाव-भूमि अर्थात् प्रकाश-स्थान (*the source*) अपादान होता है। यथा, हिमवतो गङ्गा प्रभवति (*The Ganges has issued from the Himalayas*); वल्मीकाग्रात् प्रभवति धनुःखण्डमाखण्डलस्य, आविर्भवतीत्यर्थः। (३)।

८४। "विरामार्थानां यतो विरतिः" (४)। जिससे विरति होती है, विरामार्थक धातुके प्रयोगमें वह अपादान होता है। यथा, अध्ययनाद्विरमति (*desists*), कलहान्निवर्त्तते (*ceases, refrains from*)।

८५। "पराजेरसह्यम्" (५)। परा-पूर्व्वक जि-धातुके प्रयोगमें असह्य (*unbearable*) विषय अपादान होता है। यथा, अध्ययनात् पराजयते (ग्लायति), पापात् पराजयते; अध्ययनं पापञ्च सोढुमसमर्थः इत्यर्थः (*i. e. finds study*

(पा १।४।३०)। जायमानस्य हेतुरपादानं स्यात्। (१) उत्पत्तिका कारण कभी कभी अधिकरण कारक भी होता है। यथा, शुकनासस्यापि रेणुकायां तनयो जातः (कादम्बरी), सा तस्यां उपपादि (कुमार), परदारेषु जायेते द्वौ सुतौ कुण्डगोलकौ (मनु), तस्यां सा अजायत। (२) भुवः प्रभवः (पा १।४।३१)। (३) "अभूत-प्रादुर्भावो जनिः"। (४) "जुगुप्साविरामप्रमादार्थानामुपसंख्यानम्" (वा १०७९) (५) पराजेरसोढः (पा १।४।२६)।

and *sin* unbearable)। असह्य विषय बोध नहीं होनेपर—शत्रून् पराजयते अभिभवतीत्यर्थः।

८६। "यस्यादर्शनमिच्छन्ति" (१)। जिसके अदर्शनकी (अर्थात् वह न देख सके ऐसो) इच्छा करे तो वह अपादान (२) होता है। यथा, गुरोरन्तर्धत्ते, पितुर्निलीयते, दस्योर्लुक्कायति; गुरुः पिता दस्युर्वा न मां पश्येदिति लज्जया भयेन वा तद्दर्शन-पथादपसरतीत्यर्थः।

८७। "यतो जुगुप्सा तदर्थानाम्" (३)। जिसमें जुगुप्सा अर्थात् घृणा वा निन्दा हो, जुगुप्सार्थक धातुके प्रयोगमें वह अपादान होता है। यथा, पापाज्जुगुप्सते (He *hates* or *shrinks from* crime), नरकात् बीभत्सते।

८८। "त्रपार्थानां यतस्त्रपा" (४)। जिससे लज्जित होता हो, लज्जार्थक धातुके प्रयोगमें वह अपादान होता है। यथा, गुरोर्लज्जते, पितुस्त्रप्यते, मातुर्जिह्रेति।

८९। "अधीत्यर्थानामध्यापयिता" (५)। अध्ययनार्थक धातुके प्रयोगमें अध्यापयिता (पढ़ानेवाला *preceptor, teacher*) अपादान होता है। यथा, उपाध्यायादधीते, गुरोः पठति।

---

(१) अन्तर्द्धौ येनादर्शनमिच्छति (पा १।४।२८)। (२) अर्थात् जिससे छिपनेकी इच्छा करे वह अपादान होता है। (३) "जुगुप्साविरामप्रमादार्थानामुपसंख्यानम्" (वा १०७९)। (४) "ल्यब्लोपे कर्मण्यधिकरणे च" (वा १४७४-१४७५)। यथा, श्वशुराज्जिह्रेति श्वशुरं वीक्ष्येत्यर्थः। (५) आख्यातोपयोगे (पा १।४।२९)।

९० । "वारणार्थानामीप्सितः" (१) । वारणार्थक धातुके प्रयोगमें निवार्य्यमाणका (जिसको निवारण किया जाय उसका अर्थात् कर्म्मका) ईप्सित अपादान होता है । यथा, अन्नेभ्यः काकं वारयति, यवेभ्यश्छागं निषेधति, व्यसनात् पुत्रं निवर्त्तयति ।

९१ । "श्रुत्यर्थानां श्रावयिता" (२) । श्रवणार्थक धातुके प्रयोगमें श्रावयिता (सुनानेवाला—*the person from whom something is heard*) अपादान होता है । यथा, गुरोः शास्त्रं शृणोति, नटाद्गीतिमाकर्णयति, कस्मात् श्रुतं भवता, मया श्रुतमिदं तातात् ।

९२ । "ग्रहणप्राप्त्यर्थानां तत्स्थानम्" (२) । ग्रहणार्थक और प्राप्त्यर्थक धातुओंके प्रयोगमें ग्रहण-स्थान और प्राप्ति-स्थान अपादान होता है । यथा, ग्रहणार्थक—आचार्य्यादुपदेशं गृह्णाति, प्रजाभ्यः करमादत्ते ; प्राप्त्यर्थक—उपाध्यायाद्विद्यां प्राप्नोति, गुरोर्ज्ञानं लभते ।

९३ । "प्रमादार्थानां यतः प्रमादः" (३) । जिस विषयमें प्रमाद होता है, प्रमादार्थक (*signifying swerving or deviation*) धातुके प्रयोगमें वह अपादान होता है । यथा, धर्म्मात् प्रमाद्यति, अध्ययनादनवधानम् । (४)

---

(१) पा १।४।२७ । (२) आख्यातोपयोगे (पा १।४।२९) । (३) "जुगुप्सा-विरामप्रमादार्थानामुपसंख्यानम्" (वा १०७९) । (४) जब प्र+मद्=*to be careless about*, तब प्र+मद् धातुके प्रयोगमें, जिस विषयमें प्रमाद वह अधिकरण होता है । यथा, न प्रमाद्यन्ति प्रमदासु विपश्चितः ।

सम्प्रदान (*Dative case*)।

९४। "यस्मै दानं सम्प्रदानम्" (१)। जिसको कोई वस्तु दी जाती (२) है उसे सम्प्रदान कारक कहते हैं। यथा, दरिद्राय धनं ददाति, भिक्षवे भिक्षां ददाति, सर्व्वस्वं गुरवे दद्यात्।

९५। "रुच्यर्थानां प्रीयमाणः" (३)। रुच्यर्थक धातुके (*roots signifying liking or pleasure*) प्रयोगमें प्रीयमाण (जो प्रीत होता है या जिसकी रुचि होती है वह *i. e.—object pleased*) सम्प्रदान होता है। यथा, मोदकः शिशवे रोचते, इदं मह्यं स्वदते।

९६। "स्पृहेरीप्सितः" (४)। स्पृहि-(*to long for*) धातुके प्रयोगमें कर्त्ताका ईप्सित (जिसके लिये स्पृहा की जाय वह, *the thing desired*) सम्प्रदान होता है। यथा, धनाय स्पृहयति, पुष्पेभ्यः स्पृहयति। (५)

---

(१) कर्म्मणा यमभिप्रैति स सम्प्रदानम् (पा १।४।३२)। (२) यहां देना वा दान करनेका अर्थ इच्छापूर्व्वक स्वत्व त्यागना है। ऐसा दान नहीं हो तो सम्प्रदान नहीं होता। इसलिये "रजकाय वस्त्रं देहि" न होकर "रजकस्य वस्त्रं देहि" होगा कारण वस्त्र लौटा लेनेकी इच्छा है; अतएव रजक सम्प्रदान नहीं हो सकता। (३) पा १।४।३३। (४) पा १।४।३६। (५) स्पृह् धातुसे निष्पन्न पदके प्रयोगमें कर्त्ताका ईप्सित कभी कभी सम्प्रदान और कभी कभी अधिकरण होता है। यथा, सम्प्रदान—"कथमन्ये करिष्यन्ति पुत्त्रेभ्यः पुत्त्रिणः स्पृहाम्"। अधिकरण—

९७ । "धारेरुत्तमर्णः" (१) । धारि (*to owe*)-धातुके प्रयोगमें उत्तमर्ण (ऋणदाता *creditor*) सम्प्रदान होता है । यथा, स तुभ्यं शतं धारयति (*He owes you a hundred rupees*), त्वं मह्यं सहस्रं धारयसि ।

९८ । "क्रियया यमभिप्रैति" । क्रियाके द्वारा जिसको अभिप्रेत करता हो अर्थात् जिसकी प्रीति होनेके लिये क्रिया करे वह सम्प्रदान होता है । यथा, शिशवे क्रीड़नकमानयति, गुरवे दक्षिणामाहरति, पुत्राय चन्द्रं दर्शयति ;

तस्मै भूमिपतिः पत्न्यै दर्शयन् प्रियदर्शनः ।
अपि लङ्घितमध्वानं बुबुधे न बुधोपमः ॥ रघु ।

९९ । "क्रोधद्रोहेर्ष्यासूयार्थानां यदुद्देश्य" (२) । क्रोधार्थक, द्रोहार्थक, ईर्ष्यार्थक और असूयार्थक धातुओंके प्रयोगमें क्रोधादिका उद्देश्य (अर्थात् जिस पर क्रोधादि किया जाय वह—*the person against whom the feeling of anger, hatred, malice &c. is directed*) सम्प्रदान होता है । यथा, भृत्याय क्रुध्यति, शत्रवे द्रुह्यति, प्रतिवेशिने ईर्ष्यति, प्रतिद्वन्द्विने असूयति । (३)

"स्पृहावती वस्तुषु केषु मागधी" । (१) पा १।४।३५ । (२) क्रुधद्रुहेर्ष्यासूयार्थानां यं प्रति कोपः (पा १।४।३७) । (३) "क्रुधद्रुहोरुपसृष्टयोः कर्म्म" । उपसर्गयुक्त क्रुध् और द्रुह् धातुओंका सम्प्रदान कर्म्म हो जाता है । यथा, स पुत्रमभिक्रुध्यति (He is angry *with his son*), स मच्छरीरमभिद्रुह्यति (He does injury *to my person*) । अभि+द्रुह्-धातुके प्रयोगमें सम्प्रदान भी मिलता है । यथा, 'मया पुनरेभ्यः अभिद्रुग्धः यशीन । क्रोधानुभूति वर्त्तमान न

१००। "प्रत्याङ्भ्यां श्रुवः प्रवर्त्तकः" (१)। प्रतिपूर्व्वक और आङ्-पूर्व्वक श्रु (*to promise*)-धातुके प्रयोगमें प्रवर्त्तक (अर्थात् जिसको प्रतिश्रुति की जाती है वह—*the person to whom something is promised*) सम्प्रदान होता है। यथा, दरिद्राय धनं प्रतिश्रृणोति आश्रृणोति वा—दरिद्रेण मह्यं धनं देहीति प्रवर्त्तितः प्रतिजानीते इत्यर्थः।

अतिरिक्त।

(१) "श्लाघह्नुस्थाशपां ज्ञीप्स्यमानः"। श्लाघ, ह्नु, स्था और शप् धातुओंके प्रयोगमें ज्ञीप्स्यमान (*the person who is intended to be informed of something*) सम्प्रदान कारक होता है। यथा, नृपाय श्लाघते बन्दी, नृपं बोधयितुं गुणवत्त्वेन स्तौतीत्यर्थः; पुत्त्रायापह्नुते वणिक्, वणिक् पुत्त्रं बोधयितुं इतरदर्शनायोग्यस्थाने धनानि स्थापयतीत्यर्थः; कान्ताय तिष्ठते कन्या, कन्या कान्तं बोधयितुं स्वाभिप्रायं प्रकाशते इत्यर्थः; प्रियायै शपते पतिः, पतिः प्रियां बोधयितुं शपथं करोतीत्यर्थः।

(२) "राधीक्ष्योर्यस्य विप्रश्नः"। राध् और ईक्ष् धातुओंके प्रयोगमें जिसके सम्बन्धमें विप्रश्न (*questions as to good fortune or welfare*) हो वह सम्प्रदान होता है। यथा, पुत्राय राध्यति, विप्राय ईक्षते, नैमित्तिकः विविध प्रश्नेन तस्य दैवं पर्य्यालोचयतीत्यर्थः। विप्रश्न नहीं हो तो नहीं होता। यथा, विप्रस्य आराध्यति ओदनः।

(३) "परिक्रये वा सम्प्रदानम्"। परि+क्री धातुके प्रयोगमें मूल्यबोधक शब्द विकल्पसे सम्प्रदान होता है। यथा, शताय परिक्रीतोऽयं दासः। पक्षे तृतीया। यथा, शतेन परिक्रीतोऽयं दासः।

रहे तो ईर्ष्यार्थक धातुके प्रयोगमें सम्प्रदान कर्म्म हो जाता है। यथा, भार्य्यामीर्ष्यति (परैः दृश्यमानां न सहते, एनामन्यो न द्राक्षीदित्यर्थः)। (१) प्रत्याङ्भ्यां श्रुवः पूर्व्वस्य कर्त्ता (पा १।४।४०)।

करण (*Instrumental case*)।

१०१। "साधकतमं करणम्" (१)। क्रिया-निष्पत्तिका जो सबसे प्रधान उपाय हो उसे करण-कारक कहते हैं। यथा, चक्षुषा पश्यति, कर्णेन शृणोति, हस्तेन गृह्णाति, दात्रेण लुनाति, यष्ट्या प्रहरति, शरेण विध्यति, अश्वेन सञ्चरते, वस्त्रेण आच्छादयति।

अधिकरण (*Locative case*)।

१०२। "आधारोऽधिकरणम्" (२)। कर्त्ता और कर्म्मका जो आधार हो उसे अधिकरण-कारक कहते हैं। आधार तीन प्रकारके हैं—ऐकदेशिक (३), वैषयिक, अभिव्यापक (४)। यथा, ऐकदेशिक—वने वसति, वनैकदेशे इत्यर्थः; नद्यां स्नाति, नद्या एकदेशे इत्यर्थः; गृहे स्वपिति, गृहैकदेशे इत्यर्थः; शय्यायां शिशुं शाययति, शय्यैकदेशे इत्यर्थः। वैषयिक—जले इच्छा, जलविषये इत्यर्थः; विद्यायामनुरागः, विद्याविषये इत्यर्थः। अभिव्यापक - दुग्धे माधुर्य्यमस्ति, दुग्धस्य सर्व्वानवयवान्

---

(१) पा १।४।४२। (२) पा १।४।४५। (३) इसे औपश्लेषिक भी कहते हैं। (४) और भी एक प्रकारके आधार है जिसे सामीप्यक कहते हैं। यथा, गङ्गायां घोषः प्रतिवसति, गङ्गायाः समीपे गङ्गातीरे इत्यर्थः। इन चार प्रकारके आधाराधिकरणके अतिरिक्त एक कालाधिकरण है जिससे क्रियाके समयका बोध होता है। यथा, वर्षासु वृष्टिर्भवति (*It rains in the rainy season*)। अत.एव अधिकरण पांच प्रकारका होता है। मुग्धबोधमें अधिकरणका उदाहरण ऐसा है:—रेमे शरदि गोविन्दो गोपिभिरुदिते विधौ। कालिन्द्यां कानने केलौ कुशलः सकले स्थितः॥

व्याप्येत्यर्थः ; तिलेषु तैलमस्ति, तिलस्य सर्व्वानवयवान् व्याप्येत्यर्थः ; वह्नौ दाहिका शक्तिरस्ति, वह्नेः सर्व्वानवयवान् व्याप्येत्यर्थः ।

कर्म्म (*Accusative case*) ।

१०३ । "क्रिययाक्रान्तं कर्म्म" (१) । कर्त्ताकी क्रियाके द्वारा जो आक्रान्त होता है, उसे कर्म्मकारक कहते हैं । यथा, गृहं प्रविशति, चन्द्रं पश्यति, ग्रामं गच्छति, अन्नं भुङ्क्ते, जलं पिवति, पुष्पं चिनोति, वस्त्रं ददाति, वेदमधीते, वृक्षम् आरोहति, शाखां छिनत्ति, काष्ठं भिनत्ति ।

१०४ । "अधिशीङ्स्थासामधिकरणम्" (२) । अधि-पूर्व्वक शी, स्था, आस् धातुओंके अधिकरण कारक कर्म्मसंज्ञा प्राप्त होता है । यथा, शय्यामधिशेते, गृहमधितिष्ठति, ग्राममध्यास्ते ।

१०५ । "उपान्वध्याङ् वसः" (३) । उप, अनु, अधि, आङ् पूर्व्वक वस् धातुका अधिकरण कारक कर्म्मसंज्ञा प्राप्त होता है । यथा, ग्राममुपवसति (४), गृहमनुवसति, नगरमधिवसति, गुरोरालयमावसति ।

१०६ । "अभिनिविशो विभाषा" (५) । अभि और नि-

---

(१) कर्त्तुरीप्सिततमं कर्म्म (पा १.४.४९) । "यत् क्रियते तत् कर्म्म" इति सर्व्ववर्म्माचार्य्य । (२) अधिशीङ्स्थासां कर्म्म (पा १।४।४६) । (३) पा १।४।४८ । (४) "अभुक्तार्थस्य न" । उपवास-अर्थमें नहीं होता । यथा, उपवसति वने । (५) अभिनिविशश्च (पा १।४।४७) ।

पूर्व्वक विश् धातुका अधिकरण-कारक विकल्पसे कर्म्म-संज्ञा प्राप्त होता है। यथा, धर्म्ममभिनिविशते, धर्म्मेऽभिनिविशते (१)।

१०७। "क्रुधद्रुहोरुपसृष्टयोः सम्प्रदानम्" (२)। उपसर्ग-पूर्व्वक क्रुध् और द्रुह् धातुओंके सम्प्रदान-कारक कर्म्मसंज्ञा प्राप्त होता है। यथा, भृत्यमभिक्रुध्यति, शत्रुमभिद्रुह्यति।

१०८। "विभाषा दिवः करणम्" (३)। दिव्-धातुका करण-कारक विकल्पसे कर्म्मसंज्ञा प्राप्त होता है। यथा, अक्षान् दीव्यति, अक्षैर्दीव्यति।

१०९। "द्वे कर्म्मणी दुहादेः" (४)। दुह्, याच् (५), चि, प्रच्छ्, नी, मन्थ् आदि कईएक धातुओंके दो कर्म्म होते हैं; एकका नाम प्रधान वा मुख्य (*direct*), दूसरेका नाम अप्रधान वा गौण (*indirect*) है। क्रियाके साथ जिसका अन्वय प्रधानरूपसे होता है उसे प्रधान कर्म्म और जिसका अन्वय क्रियाके साथ अप्रधानरूपसे होता है उसे अप्रधान कर्म्म

---

(१) पाणिनिके १।४।४७ सूत्रके अनुसार अभि+नि+विश् धातुका अधिकरण नित्य (*always*) ही कर्म्म-संज्ञा प्राप्त होता है विकल्पसे (*optionally*) नहीं। यथा, "सैव धन्या, याम् एवं भवन्मनोऽभिनिविशते"। किन्तु शिष्टप्रयोगमें अधिकरण भी मिलता है। यथा, "अभिनिविशते पापे"। इसलिये विद्यासागरजीने दूसरे वैयाकरणोंके अनुसार विकल्प विधान किया है। (२) क्रुधद्रुहोरुपसृष्टयोः कर्म्म (पा १।४।३८)। (३) दिवः कर्म्म च (पा १।४।४३)। (४) अकथितञ्च (पा १।४।५१)। "दुह्याच् पच् दण्ड्रुधिप्रच्छिचिब्रूशासुजिमन्थ्मुषाम्। कर्म्मयुक् स्यादकथितं तथा स्यान्नीहृकृष्वहाम्॥ (५) याच्ञार्थकधातु—नाथ, भिक्ष, अर्थ, याच्, मृगि, द्व प्रभृति।"

कहते हैं। यथा, गोपो गां दुग्धं दोग्धि, दरिद्रो राजानं धनं याचते, मालाकारो वृक्षं पुष्पं चिनोति, शिष्यो गुरुं धर्म्मं पृच्छति, पिता पुत्त्रं गृहं नयति, देवा जलधिममृतं ममन्थुः। यहां दुग्ध, धन, पुष्प, धर्म्म, पुत्त्र, अमृत प्रधान कर्म्म (*Direct objects*) हैं; और गो, राजा, वृक्ष, गुरु, गृह, जलधि अप्रधान कर्म्म (*Indirect objects*) हैं। इसी अप्रधान कर्म्मको अकथित वा अविवक्षित कर्म्म कहते हैं, अर्थात् दोनों कर्म्मोंमेंसे जिसमें अन्य अन्य कारक होनेकी सम्भावना रहते भी वक्ताकी इच्छा न होनेके कारण वे सब कारक न होकर कर्म्म कारक हो तो उसीको अकथित, अविवक्षित वा अप्रधान कर्म्म कहते हैं। ऊपरके उदाहरणोंमें गो आदिको कर्म्म-संज्ञा हुई है किन्तु विवक्षा (वक्ताकी इच्छा) रहनेसे गो-दुग्धं दोग्धि, राज्ञो धनं याचते, वृक्षात् पुष्पं चिनोति, गुरोर्धर्म्मं पृच्छति, पुत्त्रं गृहे नयति, जलधेरमृतं ममन्थुः इसीप्रकार यथा-सम्भव अपादानादि कारक भी हो सकते।

११०। "कर्म्मणि वाच्ये प्रथमा"। कर्म्मवाच्यके प्रयोगमें कर्म्म-कारकमें प्रथमा विभक्ति होती है। यथा, ग्रामो गम्यते, चन्द्रो दृश्यते, वृक्ष आरुह्यते, शत्रुरभिद्रुह्यते।

१११। "न्यादेः प्रधाने" (१)। कर्म्मवाच्यके प्रयोगमें नी

---

(१) गौणे कर्म्मणि दुह्यादेः प्रधाने नीहृकृष्वहाम्।
बुद्धि-भक्षार्थयोः शब्द-कर्म्मणां निजेच्छया।
प्रयोज्यकर्म्मण्यन्येषां ण्यन्तानां लादयो मताः॥—सिद्धान्तकौमुदी।

आदि (१) धातुओंके प्रधान कर्म्ममें प्रथमा विभक्ति होती है। यथा, गौर्ग्रामं नीयते, ह्रियते, कृष्यते, उह्यते वा।

११२। "दुहादेरप्रधाने" (२)। कर्म्मवाच्यके प्रयोगमें दुह् आदि (३) धातुओंके अप्रधान कर्म्ममें प्रथमा विभक्ति होती है। यथा, गौर्दुग्धं दुह्यते, राजा धनं याच्यते, चौरः शतं दण्ड्यते, गुरुर्धर्म्मं पृच्छ्यते, वृक्षः पुष्पं चीयते, शिष्यो धर्म्ममनुशिष्यते, जलधिरमृतं ममन्थे।

कर्त्ता (*Subject*, कर्त्तृकारक *Nominative Case*)।

११३। "क्रियासम्पादकः कर्त्ता" (४)। जिसके प्रयत्नसे क्रिया सम्पन्न होती है उसे कर्त्तृकारक कहते हैं। यथा, शिशुः क्रीड़ति, गौः शब्दायते, मेघो गर्ज्जति, गोपो दुग्धं दोग्धि, मालाकारः पुष्पं चिनोति, वानरो वृक्षमारोहति, राजा प्रजाः पालयति।

११४। "प्रयोजकश्च" (५)। जो प्रयोजक है अर्थात् जो दूसरेको क्रियामें प्रवर्त्तित करता (लगाता) है उसे भी कर्त्तृकारक कहते हैं।

११५। "तृतीया प्रयोज्ये" (६)। क्रियाकी अणिजन्त

---

(१) नी, हृ, कृष्, वह्—ये चार धातु ही प्रायः एकार्थबोधक हैं (All meaning *to take* or *to carry*)। (२) पृष्ठ ५०की पाद टीका देखो। (३) दुह्, याच्, पच्, दण्ड्, रुध्, प्रच्छ्, चि, ब्रू (कथनार्थक—कथ्, वच्, वद्, भाष्, गद्, आ+चक्ष्, अभि+धा आदि), शास्, जि, मन्थ्, मुष् (*to steal*)।

(४) स्वतन्त्रः कर्त्ता (पा १।४।५४)। (५) तत्प्रयोजको हेतुश्च (पा १।४।५५)। (६) कर्त्तृकरणयोस्तृतीया (पा २।३।१८)।

अवस्थामें जो कर्त्ता होता है, णिजन्त अवस्थामें उसे प्रयोज्य कहते हैं। प्रयोज्य कर्त्तामें तृतीया विभक्ति होती है। यथा, देवदत्त ओदनं पचति, यज्ञदत्तो देवदत्तेन ओदनं पाचयति। यहां देवदत्त पचन-क्रियाकी अणिजन्त अवस्थामें कर्त्ता था, किन्तु णिजन्त अवस्थामें उसकी प्रयोज्य संज्ञा हुई है और उसमें तृतीया विभक्ति हुई है; और यज्ञदत्त देवदत्तको पचन-क्रियामें प्रवर्त्तित करता है इसलिये वह प्रयोजक है और उसकी कर्तृ-संज्ञा हुई है और उसमें प्रथमा विभक्ति हुई है।

११६। "गत्यर्थानां कर्म्मसंज्ञा प्रयोज्यस्य" (१)। गमनार्थक (२) धातुके प्रयोगमें प्रयोज्य कर्त्ताकी कर्म्म-संज्ञा होती है। यथा, देवदत्तो गृहं गच्छति, यज्ञदत्तो देवदत्तं गृहं गमयति।

११७। "ज्ञानाशनार्थानाञ्च" (१)। ज्ञानार्थक तथा अशनार्थक (२) धातुओंके प्रयोगमें प्रयोज्य कर्त्ताकी कर्म्मसंज्ञा होती

---

(१) गतिबुद्धिप्रत्यवसनार्थशब्दकर्म्माकर्म्मकाणामणिकर्त्ता स णौ (पा १।४।५२)। यथा, "शत्रूनगमयत् स्वर्गं वेदार्थं स्वानवेदयत्। आशयच्चामृतं देवान् वेदमध्यापयद्विधिम्। आसयत् सलिले पृथ्वीं यः स मे श्रीहरिर्गतिः॥ सिद्धान्तकौमुदी। (२) अद्, खाद्, भक्ष् भिन्न। "न नी खाद्यादिशब्दाय-क्रन्द-ह्वाः कर्तृकर्म्मकाः। तथा भक्षिरहिंसार्थो वहोऽसारथिकर्तृकः॥ नी, सारथि भिन्न कर्तृपदविशिष्ट वह् (गमनार्थक होनेपर भी), खाद्, अद् (आहारार्थ-बोधक होनेसे भी), अहिंसार्थक भक्ष् (आहारार्थक है तौभी), शब्दाय, क्रन्द्, ह्वे (शब्दकर्म्म होनेपर भी) इन सब धातुओंके प्रयोगमें प्रयोज्य कर्त्ताकी कर्म्मसंज्ञा नहीं होती अर्थात् प्रयोज्य कर्त्तामें द्वितीया विभक्ति नहीं होती तृतीया विभक्ति होती है। यथा, भृत्यः भारं नयति वहति वा, प्रभुः भृत्येन भारं नाययति वाहयति वा; शिशुः मिष्टान्नं खादति भक्षि भक्षयति वा, माता शिशुना

है। यथा, ज्ञानार्थक—शिष्यो धर्म्मं बुध्यते, गुरुः शिष्यं धर्म्मं बोधयति ; भोजनार्थक—पुत्रोऽन्नमश्नाति, माता पुत्रमन्नम् आशयति।

११८। "शब्दकर्म्मकाणामकर्म्मकाणाञ्च" (१)। शब्द-(२) कर्म्मक तथा अकर्म्मक (३) धातुओंके प्रयोगमें प्रयोज्य कर्त्ताको कर्म्मसंज्ञा होती है। यथा, शब्द-कर्म्मक—शिष्यो वेदमधीते, गुरुः शिष्यं वेदमध्यापयति ; अकर्म्मक—शिशुः शेते, माता शिशुं शाययति। (४)

मिष्टान्नं खादयति आदयति भक्षयति वा ; कीचकाः (a kind of bamboo) शब्दायन्ते, मारुतः कीचकैः शब्दाययति ; भक्तः क्रन्दति, कृष्णः भक्तेन क्रन्दयति ; हरिः रामं आह्वयति, श्यामः हरिणा राममाह्वाययति। हिंसा करना बोध होनेसे भक्ष् धातुके और सारथि कर्त्ता होनेसे वह् धातुके प्रयोगमें प्रयोज्य कर्त्ताकी कर्म्म-संज्ञा होती है। यथा, मार्ज्जारः मूषिकं भक्षयति, म मार्ज्जारं मूषिकं भक्षयति ; अश्वाः रथं वहन्ति, सारथिः अश्वान् रथं वाहयति।

(१) गतिबुद्धिप्रत्यवसानार्थशब्दकर्म्माकर्म्मकाणामणिकर्त्ता स णौ (पा १।४।५२)। (२) शब्दात्मक विषय—पद, वाक्य, ग्रन्थ, उपदेश, तिरस्कार, प्रशंसा आदि। (३) ह्वे, क्रन्द्, शब्दाय, जल्प्, भाष्, लप्, श्रु, वि-ज्ञा, उप-लभ् भिन्न। (४) गमनाहार-बोधार्थ-शब्दार्थाकर्म्मधातुषु। अणिजन्तेषु यः कर्त्ता स्याण्णिजन्तेषु कर्म्म तत्॥ गमनार्थक (प्राप्त्यर्थक), आहारार्थक, बोधार्थक (ग्रहणार्थक, दर्शनार्थक, श्रवणार्थक), शब्दकर्म्मक तथा अकर्म्मक धातुओंके प्रयोगमें अणिजन्त अवस्थामें जो कर्त्ता रहता है, णिजन्त अवस्थामें वह कर्म्म होता है अर्थात् उसमें द्वितीया विभक्ति होती है। यथा, रामः ग्रामं गच्छति, श्यामः रामं ग्रामं गमयति ; दीनः धनं प्राप्नोति, राजा दीनं धनं प्रापयति ; शिशुरन्नमश्नाति, माता शिशुमन्नमाशयति ; शिष्यः धर्म्मं बुध्यते, गुरुः शिष्यं धर्म्मं बोधयति ; हरिः वस्त्रं गृह्णाति, रामः हरिं वस्त्रं ग्राहयति ; अहं

११९। "विभाषा हृञ्कृञोः" (१)। हृञ् और कृञ् धातुओंके (२) प्रयोगमें प्रयोज्य कर्त्ताकी विकल्पसे कर्म्म-संज्ञा होती है। यथा, भृत्यो भारं हरति, प्रभुर्भृत्यं भृत्येन वा भारं हारयति; कुम्भकारो घटं करोति, यज्ञदत्तः कुम्भकारं कुम्भकारेण वा घटं कारयति।

१२०। "कर्म्मभावयोस्तृतीया" (३)। कर्म्मवाच्य तथा भाववाच्यके प्रयोगमें कर्त्तामें तृतीया विभक्ति होती है। यथा, कर्म्मवाच्यमें—गोपेन दुग्धं दुह्यते, मालाकारेण पुष्पं चीयते, राज्ञा धनं दीयते; भाववाच्यमें—शिशुना रुद्यते, यूना हस्यते, वृद्धेन सुप्यते।

१२१। "कर्म्मसंज्ञायां प्रयोज्यकर्म्मणोः प्रथमाद्वितीये

चन्द्रं पश्यामि, त्वं मां चन्द्रं दर्शयसि; त्वं गीतं शृणोषि, गायकः त्वां गीतं श्रावयति; स वेदं पठति, अध्यापकस्तं वेदं पाठयति; शिशुः शेते, माता शिशुं शाययति। शिष्टप्रयोगमें ग्रह्-धातुके अणिजन्तकालके कर्त्तामें णिजन्तकालमें द्वितीया तृतीया दोनों विभक्तियां मिलती हैं। यथा, द्वितीया—अयाचितारं न हि देवदेवम् अद्रिः सुतां ग्राहयितुं शशाक (कुमार)। तस्याः दारिकायाः यथार्हेण कर्म्मणा मां पाणिमग्राहयेताम् (दशकु)। उपाध्यायेन त्वामासनं ग्राहितः (विक्रमोर्व्वशी)। स साचिव्यं ग्राहयितुं न शक्यते (मुद्रा)। तृतीया—विदितार्थस्तु पार्थिवः त्वया दुहितुः पाणिं ग्राहयिष्यति (दशकु)। पेटिकां कयाचिद्बालिकया ग्राहयित्वा (दशकु)।

(१) हृक्रोरन्यतरस्याम् (पा १।४।५३)। (२) "हृ-क्रञ्-लभां वा" इस सूत्रके अनुसार लभ् धातुके प्रयोगमें भी ऐसा होता है। यथा, भानुः पद्मानि पद्मैर्वा विकाशं लम्भयति। (३) कर्तृकरणयोस्तृतीया (पा २।३।१८)।

कर्म्मणि" (१)। जहां प्रयोज्य कर्त्ताकी कर्म्मसंज्ञा होती है वहां कर्म्मवाच्यके प्रयोगमें प्रयोज्य कर्त्तामें प्रथमा विभक्ति और कर्म्ममें द्वितीया विभक्ति होती है। यथा, शिष्येण वेदोऽधीयते, गुरुणा शिष्यो वेदमध्याप्यते। यहां प्रयोज्य कर्त्ता शिष्यमें प्रथमा विभक्ति और कर्म्म वेदमें द्वितीया विभक्ति हुई हैं। तद्भिन्न स्थानोंमें, देवदत्तेन ओदनं पच्यते, यज्ञदत्तेन देवदत्तेन ओदनं पाच्यते।

अतिरिक्त ।

(१) "अभिवादि दृशोरात्मने पदे वा"। अभि पूर्व्वक वादि धातु और दृश् धातु आत्मनेपदमें प्रयुक्त होनेसे प्रयोज्य कर्त्तामें विकल्पसे द्वितीया विभक्ति होती है। यथा, रामः गुरुं अभिवादयते (*salutes*), हरिः रामेण रामं वा गुरुं अभिवादयते (*causes...to salute*) ; शिशुः चन्द्रं पश्यति, माता शिशुना शिशुं वा चन्द्रं दर्शयते। परस्मैपदमें प्रयुक्त होनेसे यह नियम नहीं लगता। यथा हरिः रामेण गुरुं अभिवादयति (न तु रामं), माता शिशुं चन्द्रं दर्शयति (न तु शिशुना)।

(२) जब प्रयोजक कर्त्ता प्रयोज्य कर्त्ता होता है तब उसमें द्वितीया विभक्ति नहीं होती। यथा, चैत्रः ग्रामं गच्छति, मैत्रः चैत्रं ग्रामं गमयति, देवदत्तः मैत्रेण (न तु मैत्रं) चैत्रं ग्रामं गमयति।

N B—कर्त्ता चार प्रकारके हैं। यथा—उक्त, अनुक्त, प्रयोजक और प्रयोज्य। उक्त कर्त्तामें प्रथमा विभक्ति होती है, अनुक्त कर्त्तामें तृतीया, प्रयोजक कर्त्तामें प्रथमा और प्रयोज्य कर्त्तामें साधारणतः तृतीया और स्थलविशेषमें जब प्रयोज्य कर्त्ताकी कर्म्मसंज्ञा होती है तब उसमें द्वितीया विभक्ति होती है।

---

(१) "बुद्धि-भक्षार्थयोः शब्दकर्म्मकाणां निजेच्छया। प्रयोज्यकर्म्मण्यन्येषां ण्यन्तानां लादयो मताः॥"

१२२। "निवृत्तौ च प्रवृत्तिवत् क्रियायाः" । क्रियाप्रवृत्तिके स्थानमें ही तत्तत् कारकोंका विधान हुआ है; किन्तु क्रिया-प्रवृत्तिके ऐसे क्रियानिवृत्तिके स्थानोंमें भी अविशेषमें तत्तत् कारकोंका विधान होता है। यथा—अश्वात् पतितः, अश्वान्न पतितः ; अध्ययनाद्विरमति, अध्ययनान्न विरमति ; भिक्षवे भिक्षां ददाति, भिक्षवे भिक्षां न ददाति ; मह्यमिदं स्वदते, मह्यमिदं न स्वदते ; हस्तेन गृह्णाति, हस्तेन न गृह्णाति ; वस्त्रेणाच्छादयति, वस्त्रेण नाच्छादयति ; गृहे तिष्ठति, गृहे न तिष्ठति ; शय्यायां शेते, शय्यायां न शेते ; जलं पिबति, जलं न पिबति ; चन्द्रं पश्यति, चन्द्रं न पश्यति ; मेघो वर्षति, मेघो न वर्षति ; नदी वहति, नदी न वहति ।

१२३। "विवक्षावशात् कारकाणि" । जहां जो कारक विहित हुआ है विवक्षाके हेतु अर्थात् वक्ताकी इच्छाके अनुसार उसका अन्यथा-भाव लक्षित होता है। यथा, गृहं गच्छति, गृहे गच्छति ; गृहं प्रविशति, गृहे प्रविशति ; पुष्पेभ्यः स्पृहयति, पुष्पाणि स्पृहयति ; पुष्पेभ्यः स्पृहा, पुष्पेषु स्पृहा ; अरये कुप्यति, अरौ कुप्यति ; गां दुग्धं दोग्धि, गोभ्यो दुग्धं दोग्धि ; नृपं धनं याचते, नृपाद्धनं याचते ; वृक्षं पुष्पं चिनोति, वृक्षात् पुष्पं चिनोति ; पुत्रं गृहं नयति, पुत्रं गृहे नयति ; जलधिममृतं ममन्थुः, जलधेरमृतं ममन्थुः ; शिष्याय विद्यां वितरति, शिष्ये विद्यां वितरति ; हिमवतो गङ्गा प्रभवति, हिमवति गङ्गा प्रभवति ।

अतिरिक्त ।

"अपादान-सम्प्रदान-करणाधार-कर्म्मणाम् ।
कर्त्तुश्चान्योऽन्यसन्देहे परमेकं प्रवर्त्तते ॥"

एक ही वाक्यमें अपादान, सम्प्रदान, करण, आधार (अर्थात् अधिकरण) कर्म्म तथा कर्त्ता इनमेंसे दो तीन कारक होनेकी शङ्का हो (अर्थात् सम्भावना रहे) तो इस श्लोकमें परपर दिये हुए कारकोंमें पूर्व्ववर्त्ती कारक न होकर परवर्त्ती कारक होना चाहिये। यथा, "धनुषा शरान् क्षिपति" इस वाक्यमें 'धनुष्' क्रियानिष्पत्तिका सबसे प्रधान उपाय है इसलिये करणकारक हो सकता है और शरके विश्लेष होनेके अर्थको बोध करानेके लिये अपादानकारक भी हो सकता है। अब करण और अपादान इन दोनों कारकोंमें धनुष् कौन कारकमें हो यह निश्चय करनेके लिये उपरके श्लोकको देखकर स्थिर करते हैं कि करण अपादानके परवर्त्ती कारक है अत:एव धनुष् शब्दका प्रयोग करणकारकमें ही होना चाहिये इसलिये इसमें करणकारकको विभक्ति तृतीया दी गई है। ऐसे—गृहं प्रविश्य निर्गच्छति (यहां गृह अपादान कारक न होकर कर्म्म-कारक हुआ है) ; गङ्गां गत्वा स्नाति (गङ्गा अधिकरणकारक न होकर कर्म्मकारक हुआ है)।

Exercise 1.

1. Determine the case-endings (विभक्ति) which are used for अध्वकालाभ्यामत्यन्तसंयोगे and अध्वकालाभ्यामपवर्गे. Explain the difference between the two. Show the difference in meaing between हरि: मासं गीतामपठत् and हरि: मासेन गीतामपठत्.

2. Fully explain :—लक्षणात् तृतीया, प्रकृत्यादिभ्यस्तृतीया, तादर्थ्ये चतुर्थी, ल्यब्लोपे पञ्चमी, षष्ठीचानादरे, यतश्च निर्द्धारणम्, तृतीया प्रयोज्ये, अधिशीङ्स्थासामधिकरणम्। Give two examples of each.

3. What case-endings are used in connection with the words पृथक्, विना, ऋते and हेतो: and words signifying तुल्य, दूर and अन्तिक ?

4. Distinguish between कर्म and सम्प्रदान, करण and हेतु. What is meant by भावे सप्तमी ? What is it called in English Grammar ? Give a few examples illustrating your answer. What case endings are governed by अधिशेते and याचते ?

5. Fully discuss the use of the sixth case-ending in the Nominative and in the Accusative cases citing the rules and exceptions and fully illustrating your answer by examples.

6. What special rule is there for the sixth case-ending in the Instrumental case ?

7. Determine the roots, the Instrumental, the Dative and the Locative of which become Accusative respectively. Name and illustrate the roots which have two accusatives. Which of the objects of a द्विकर्मक verb takes the first case-ending in the Passive voice ? Give examples

8. Determine the roots the प्रयोज्य कर्त्ता of which becomes accusative. Among the roots implying भक्षण, गति and शब्द select those the प्रयोज्यकर्त्ता of which does not take the accusative case-ending. Give examples.

9. Define निर्द्धारण. Determine the case-endings used in connection with it. Give examples.

10. Determine the *true case* in each of the following sentences :—धनुषा शरान् क्षिपति ; गृहं प्रविश्य निर्गच्छति ; गङ्गां गत्वा हरिः स्नाति ; पश्य चौरः पलायते ; उपविश्य उत्तिष्ठति मञ्चे ; विप्राय धनं दत्त्वा गृह्णाति ।

11. Translate the following extracts into English and account for the case-endings in the words within the inverted commas :—द्वादशभिः 'वर्षैः' व्याकरणं श्रूयते। मनस्विगर्हितः 'पन्थाः' समारोढुमसाम्प्रतम्। धिगिमां देहभृताम् 'असारताम्'। 'स्निग्धम्' आलपसि 'रूक्षम्' एव वा त्वत्कथा भवतु मे रसायणम्। क इदानीं 'सहकारम्' अन्तरेण अति 'मुक्तालतां' पल्लवितां सहते ? स्वस्त्यस्तु 'ते' निर्गलिताम्बुगर्भम्। 'परोपकाराय' सतां विभूतिः। न हि 'स्वदेहशैत्याय' जायन्ते चन्दनद्रुमाः। 'शक्तया' हि याति

निजया पुरुषः प्रतिष्ठाम्। भ्रातः ! 'क्षणं' प्रतीक्षस्व, अहमपि 'भवता' सार्द्धं यामि। उदयति यदि भानुः पश्चिमे 'दिग्विभागे'। 'अनेन' सदृशो लोके न भूतो न भविष्यति। 'सङ्गात्' सञ्जायते कामः कामात् क्रोधोऽभिजायते। पयःपानं 'भुजङ्गानां' केवलं विषवर्द्धनम्। वामे 'विधौ' वद कथं 'विपदां' विमुक्तिः। गृहीत इव 'केशेषु' मृत्युना धर्म्ममाचरेत्। अहो किमपि चित्राणि चरित्राणि महात्मनाम्, लक्ष्मीं 'तृणाय' मन्यन्ते तद् 'भरेण' नमन्ति च। पश्यतोऽपि 'मे' श्येनेनापहृतः शिशुः। 'मया' 'एकशिलानगर्य्याः' आगम्यते 'भोजं' प्रति 'द्रविणाशया'।

12. Construct a sentence of your own in Sanskrit with each of the following :—परितः, निकषा, ऊन, अन्तरा, अन्तरेण, समम्, दक्षिणाहि, प्रभु, आ, आरात, पृथक्, प्रभृति, प्राक्, नाना, विना, उत्तरेण, स्पृहयामि, कल्पते, नमस्करोमि, रोचते, जायते, तृप्यति, मन्ये, विरमति, बहिः, अलम्, प्रसित, उत्सुक, द्विष्+शतृ, अभि+क्रुध्, उप+वस्, सम, तुला, उपमा, अनु।

13. Translate into Sanskrit :—

(*a*) In Oude, there was a king named Dasharath. There is a beautiful garden around your house. Virtue saves the virtuous. The book is between you and me. They have been reading Grammar for three years. They learnt Grammar in three years. There is a tree near my house. The warriors are inferior to Arjun. He does not recollect what I said to him after his brother's departure. He accompanied me to the Ganges. Ram saw beautiful trees on both sides of the Godavari. *No need* (अलम्) of *prolixity* (बाहुल्य). *The Goddess of fortune* (लक्ष्मी) is fickle by nature. Men without knowledge are like beasts. What is the use of riches to a miser ? Does money contribute to his happiness ? A proud man does not care a straw for anybody. May the *subjects* (प्रजा) *be happy* (स्वस्ति). The boy is going to the tank to fetch water for his blind parents. He is mentally going to Mathura. Why has the old man become so angry with his

maid-servant? The river runs winding for two miles. Salutation to that *Karma* over which even the Creator *does not prevail* (प्रभवति) ! I do not long for wealth but your blessings. There is no *salvation* (मुक्ति) without knowledge. Mother and mother-country are superior to heaven even. Knowledge is more precious than wealth. My house is in the north of the town. Ceylon is to the south of India. To me this boy seems to be the germ of great prowess. There is no virtue like forgiveness. You are a great fool for you wish *to give up* (त्यक्तुम्) much for a little. Time and tide for none abide. A tree is known by its fruits. Pride shall have a fall. Death is better than dishonour. The quarrels of friends are the opportunities of the foes Knowledge without modesty is useless. *The way of devotion* (भक्तिमार्गः) is not more difficult to attain than the way of knogledge. You owe me one hundred rupees. The girl waters each and every tree Woe be to those that follow immoral paths. Out of debt, out of danger. He earns his bread by the sweat of his brow. I am determined to save the life of my friend even at the cost of my own. The mongoose ate up the young ones of *the silly crane* (बकमूर्ख) while he looked on. The work having been finished, the labourers went away taking their wages from the cashier. Scarcely had the day dawned, when he went away. The Himalayas are the highest of all the mountains in the world. The hunters will kill a tiger for the skin and a musk-deer for the musk. Kalidas is the greatest of all the poets in the world. No sooner did we enter the forest than we heard the roar of a lion. The king has killed the lion for fame. Sita lived near the hermitage of Valmiki when she was forsaken by Ram. Walking early in the morning in spring is healthful. The temple of Vishnu is remote from the village. O my friend! all these are possible with you. Calcutta is

twenty-four miles distant from this place. A learned man is honoured by all good men. The boy drinks milk *seven times* (सप्तकृत्वः) a day. Excessive pride is the cause of his downfall. Never give shelter to a man of unknown birth and character. Get up before sunrise. He wishes to hear the *story* (उपाख्यान) *from* (आ) *the beginning* (मूल). Gold is brighter and far more valuable than brass. Pure character leads to virtue and happiness. Rich men look upon a poor man as a dog. The monkey *climbs up* (आ + रुह्) the tree. He *by degrees* (क्रमात्) *recognised* (बुध्) him to be Narada. Even a poisonous tree should not be cut down by him who has promoted its growth. The moon *is being seen* (दृश्यते) by the boy. An honest man resorts (अभि + नि + विश्) to a good path. There are *fields* (प्रान्तराः) *all over* (सर्व्वतः) the village where these two men *dwell* (अधि + वस्). Do not play at dice. The *Asuras* bear hatred towards the gods. You are not a match for me. A good servant never *swerves* (प्र + मद्) from his own duty. He, who has no affectionate mother, devoted wife or loving and obedient children at home, should go to the forest. Why does my heart incline to this boy, as if he were mine own son ? The tree feels the great heat of the sun on its top but removes by its shade the troubles of those that take shelter therein. I take shape age after age for protecting the good and destroying the wicked. Strange that the words of that man are not to be trusted though he has never been taught guile or artfulness ever since his birth ! Fie on him for whose sake you have come to such a pass. He is really good who does good even to his enemies. May this *beginning* (प्रारम्भ) be for *good* (शुभ). Men devoid of knowledge *bear hatred* (असूय्) towards the wise. *Ah* (अये), this is *the ornament* (इदमाभरणम्) *I sent* (मया प्रेषितम्) to Rakshasa *after having taken it off* (अवतार्य्य) from my *person* (शरीर). Send a *messen-*

ger (दूत) to the king without delay. That old man at the gate is lame of his right leg. Why is he so sad? There is no difference *between* (अन्तरा) him and a beast. He has *come down* (अव+तॄ) to the earth *to extirpate* (उच्छ्वासयितुम्) the enemies of the world.

(*b*) The sun rises in the east, and when he rises it is day. He shines upon the trees and the houses and upon the water. Everything looks beautiful when he shines upon it He gives us heat and light. It is he who makes us warm. When the sun rises, we too ought to rise. Day is the time to work. Those that work hard all day, will sleep soundly at night.

(*c*) When we *get up* (उत्तिष्ठामः) from our bed in the morning, we should clean our mouths and *wash* (प्रक्षालयेम) our faces. Before we take our food we should also wash our mouths and hands. We *should bear in mind* (स्मरेम) that dirty boys and girls *are not liked* (नाद्रियन्ते) by any one. Nobody likes to walk or talk with dirty children. (C. U. Additional Paper 1913).

14. Correct :—विद्ययाः विना सुखं नास्ति। पुराविदस्तां अपर्णामिति वदन्ति। स जातेः चत्रियः। साधुमुक्तं भवता। तव ऋते मम अन्यं मित्रो नास्ति। इदं मां न रोचते। सः सानन्देन क्रीड़ति। देवाः स्वर्गं अधितिष्ठन्ति। असौ कर्णयोः वधिरः। तव अर्थस्य प्रयोजनो नास्ति। अहं त्वां पुस्तकमेकं दास्यामि। भक्तिः मुक्तौ सम्पद्यते। दुहितरं श्रोत्रियं दत्त्वा कुलीनो वंशजो भवेत्। धृतराष्ट्र आजन्म अन्धः आसीत्। कृष्णेन उपमा नास्ति। नाहं त्वां शृगालाय मन्ये। नदीभ्यो गङ्गा पवित्रतमा। स मनसा पाटलिपुत्राय गच्छति। यत्नं कृते यदि न सिध्यति किमत्र दोषः। रावणो राक्षसैर्वानरान् भक्षयति।

तद्धित ।

(तद्धित-प्रत्यय, *Secondary or Nominal Suffixes or Nominal Affixes*) ।

१ । "तद्धितः" (१) । इस प्रकरणमें जो सब प्रत्यय विहित होते हैं उनका नाम तद्धित है ।

२ । "णिति वृद्धिराद्यस्य" (२) । ण् जिसका इत् होता है ऐसा तद्धित प्रत्यय परे रहनेसे प्रातिपदिकके (शब्दके) आद्य स्वरकी वृद्धि होती है ।

३ । "सुभगादेरुभयोः (३) । सुभगा (*a fortunate woman*), दुर्भगा (*an unlucky woman*), अधिदेव (*a presiding deity*), अधिभूत (*the whole inanimate creation*), इहलोक (*this world*), परलोक (*the next world*), सर्व्वलोक (*all the world*), अकुशल (*unskilful*), परस्त्री (*another's wife*) आदि प्रातिपदिकोंके अन्तर्गत दोनों पदोंके आद्य स्वरकी वृद्धि होती है ।

४ । "सुपञ्चालादेर्द्वितीयस्य" (४) । सुपञ्चाल, अर्द्ध-

---

(१) तद्धिताः (पा ४।१।७६) । प्रातिपदिकोंके (शब्दोंके) उत्तर भिन्न भिन्न अर्थमें जो सब प्रत्यय प्रयुक्त होकर नये नये प्रातिपदिक (शब्द) गठित करते (बनाते) हैं, उन्हें तद्धित प्रत्यय कहते हैं । (२) तद्धितेष्वचामादेः (पा ७।२।११७) । (३) हृद्भगसिन्ध्वन्ते पूर्व्वपदस्य च (पा ७।३।१९) ; अनुशतिकादीनाञ्च (पा ७।३।२०१) । (४) उत्तरपदस्य (पा ७।३।१०) ; अवयवादृतोः (पा ७।३।११) ; सुसर्व्वार्द्धाज्जन-

पञ्चाल, अग्निदेवता, पितृदेवता, द्विवर्ष, त्रिवर्ष (१), चतुर्वर्ष, पञ्चवर्ष आदि प्रातिपदिकोंके अन्तर्गत द्वितीय पदके ही आद्य स्वरकी वृद्धि होती है।

५। "न णित्कार्य्यं सर्व्वत्र"। ण् इत्का आद्यस्वरवृद्धि-रूप जो कार्य्य विहित हुआ है वह सर्व्वत्र नहीं होता।

६। "लोपोऽवर्णेवर्णयोर्यस्वरयोः" (२)। तद्धित-प्रत्ययके य और स्वरवर्ण परे रहनेसे प्रातिपदिकके अन्तस्थित अवर्ण और इवर्णका लोप होता है।

७। "गुण उवर्णस्य" (३)। तद्धित-प्रत्ययके य और स्वरवर्ण परे रहनेसे प्रातिपदिके अन्तस्थित उवर्णका गुण होता है।

पदस्य (पा ७।३।१२); दिशोऽमद्राणाम् (पा ७।३।१३); प्राचां ग्रामनगराणाम् (पा ७।३।१४); संख्यायाः संवत्सरसंख्यस्य च (पा ७।३।१५); वर्षस्याभविष्यति (पा ७।३।१६)। (१) द्वैवार्षिक, त्रैवार्षिक शब्दोंका व्यवहार बहुत देखनेमें आता है; परन्तु व्याकरणके नियमानुसार सिद्ध नहीं हो सकनेके कारण ये दो शब्द अशुद्ध हैं। पूर्ववर्त्ती पादटीका (४) में दिये हुए पाणिनिके ७।३।१०, ७।३।१५ तथा ७।३।१६ सूत्रोंके अनुसार प्रथम संख्यावाचक और उसके बाद वर्ष शब्द रहे तो अभविष्यत् अर्थ बोध होनेसे परपदके आद्य स्वरकी वृद्धि होनेके कारण 'द्विवार्षिक', 'त्रिवार्षिक' शब्द सिद्ध होते हैं और भविष्यत् अर्थबोध होनेपर पूर्वपदके आद्य स्वरकी वृद्धि होनेके कारण 'द्वैवर्षिक', 'त्रैवर्षिक' शब्द सिद्ध होते हैं। किन्तु किसी प्रकारसे 'द्वैवार्षिक', 'त्रैवार्षिक' शब्द सिद्ध नहीं हो सकते। (२) यस्येति च (पा ६।४।१४८)। "यस्योर्लोपो य-स्वरयोः"। (३) ओर्गुणः (पा ६।४।१४६)।

८। "ऋदोदौदुभ्यो यः स्वरवत्" (१)। ऋकार, ओकार और औकारके परस्थित तद्धितप्रत्ययका य स्वरका कार्य करता है। (२)

९। "टेर्लोपो डिति" (३)। डकारेत् तद्धितप्रत्यय परे रहे तो प्रातिपदिकके टिका (४) लोप होता है।

१०। "तेर्विंशतेः" (५)। डकारेत् तद्धित प्रत्यय परे रहनेसे विंशति-शब्दके ति इस अंशका लोप होता है। (६)

११। "इयुवौ यवयोराद्यचः पदान्ते णिति" (७)। णकारेत् तद्धित प्रत्यय परे रहे तो पदके अन्तस्थित आद्यस्वरके स्थानमें जात य के स्थानमें इय् और व के स्थानमें उव् होता है। (८)

१२। "द्वारादीनाञ्च" (९)। णकारेत् तद्धित प्रत्यय परे रहनेसे द्वार आदि (१०) प्रातिपदिकोंके आद्य य के स्थानमें इ् और व के स्थानमें उव् होता है। (११)

---

(१) "ओदौद्दतो यः स्वरवत्"। (२) यथा, गो+य=गव्यम्, नौ+य=नाव्यम् (*navigable*)। (३) टेः (पा ६।४।१४३)। (४) अन्त्य स्वर और तदवधि (वह और उसके आगेका हल) वर्णको टि कहते हैं। अचोऽन्त्यादि टि (पा १।१।६४); अचां मध्ये योऽन्त्यः स आदिर्यस्य तट्टिसंज्ञं स्यात्। (५) ति विंशतेर्डिति (पा ७।४।१४२)। (६) यथा, विंशति+डट्=विंशः (*twentieth*)। (७) न य्वाभ्यां पदन्ताभ्यां पूर्व्वौ तु ताभ्यामैच् (पा ७।३।३)। (८) यथा, व्यश्व+षिण्=वैयश्विः, स्वश्व+षिण्=सौवश्विः। यहां वि और सु के स्थानमें वि=व+इय्=वैय् और सु=स+उव्=सौव् हुआ है। (९) पा ७।३।४। (१०) द्वार, स्वर, स्वाध्याय, व्यल्कश (स), स्वस्ति, स्वर्, स्फ्यकृत, स्वादु, मृदु, श्वस्, श्वन्, स्व। (११) यथा, द्वार+षिकण्=दौवारिकः (*a door-keeper*), स्वर+षण्=सौवरम्, स्व+षण्=सौवम् (*relating to one's own property*)।

१८। "बाह्वादिभ्यश्च" (१)। अपत्य-अर्थमें बाहु आदि प्रातिपदिकोंके उत्तर षिण् होता है। यथा, बाहोरपत्यं बाहविः. उपबाहोरपत्यं औपबाहविः. उपविन्दोः अपत्यं औपविन्दविः, वृषल्या अपत्यं वार्षलिः, वृकलाया अपत्यं वार्कलिः, छगलाया अपत्यं छागलिः, सुमित्राया अपत्यं सौमित्रिः, दुर्म्मित्राया अपत्यं दौर्म्मित्रिः, उदञ्चोरपत्यं औदञ्चविः. उडुलोमस्यापत्यं औडुलोमिः।

१९। "इको व्याससुधात्रोः षिणि" (२)। षिण् प्रत्यय होनेसे व्यास और सुधातु इन दो प्रातिपदिकोंके उत्तर इक होता है; ङ् इत्, अक रहता है। यथा, व्यासस्यापत्यं वैयासकिः, सुधातुः अपत्यं सौधातकिः। (३)

२०। "नडादिभ्यः षायनण्" (४)। अपत्य-अर्थमें नड़ आदि प्रातिपदिकोंके उत्तर षायनण् होता है; ष् ण् इत्, आयन रहता है। यथा, नड़स्यापत्यं नाड़ायनः, चरस्यापत्यं चारायणः, मुञ्जस्यापत्यं मौञ्जायनः, सप्तलस्यापत्यं साप्तलायनः, नरस्यापत्यं नारायणः, दासस्यापत्यं दासायनः. कातलस्यापत्यं कातलायनः, शकटस्यापत्यं शाकटायनः, जलन्धरस्यापत्यं जालन्धरायणः, द्रोणस्यापत्यं द्रौणायनः, पर्व्वतस्यापत्यं पार्व्वतायनः, युगन्धरस्यापत्यं यौगन्धरायणः, अश्वलस्यापत्यं

---

(१) पा ४।१।९६। (२) सुधातुरकङ् च (पा ४।१।९७)। (३) "व्यासवरुड़-निषादचाण्डालबिम्बानाञ्चेति वक्तव्यम्"। (वार्त्तिक २६११)। न य्वाभ्यां पदान्ताभ्यां पूर्व्वौ तु ताभ्यामैच् (पा ७।३।३)—वारुड़किः। (४) नड़ादिभ्यः फक् (पा ४।१।९९)।

आश्वलायनः, बदरस्यापत्यं बादरायणः, उदुम्बरस्यापत्यम् औदुम्बरायणः, दक्षस्यापत्यं दाक्षायणः ।

२१ । "गर्गादिभ्यः ष्यण्" (१) । अपत्य-अर्थमें गर्ग आदि प्रातिपदिकोंके उत्तर ष्यण् होता है ; ष् ण् इत्, य रहता है । यथा, गर्गस्यापत्यं गार्ग्यः, वत्सस्यापत्यं वात्स्यः, अगस्तेरपत्यम् आगस्त्यः, पुलस्तेरपत्यं पौलस्त्यः, विश्वावसोरपत्यं वैश्वावसव्यः, लोहितस्यापत्यं लौहित्यः, बभ्रोरपत्यं बाभ्रव्यः, मण्डोरपत्यं माण्डव्यः, मधोरपत्यं माधव्यः, जिगीषोरपत्यं जैगीषव्यः, कुण्डिन्या अपत्यं कौण्डिन्यः, यज्ञवल्कस्यापत्यं याज्ञवल्क्यः, शण्डिलस्यापत्यं शाण्डिल्यः, चणकस्यापत्यं चाणक्यः, चुलुकस्यापत्यं चौलुक्यः, मुद्गलस्यापत्यं मौद्गल्यः, जमदग्नेरपत्यं जामदग्न्यः, पराशरस्यापत्यं पाराशर्य्यः, जातूकर्णस्यापत्यं जातूकर्ण्यः, अश्वरथस्यापत्यम् आश्वरथ्यः, पूतिमाषस्यापत्यं पौतिमाष्यः, उलूकस्यापत्यम् औलूक्यः, अग्निवेशस्यापत्यम् आग्निवेश्यः, दितेरपत्यं दैत्यः (२), अदितेरपत्यम् आदित्यः, प्रजापतेरपत्यं प्राजापत्यः ।

२२ । "शिवादिभ्यः षण्" (३) । अपत्य-अर्थमें शिव आदि प्रातिपदिकोंके उत्तर षण् होता है ; ष् ण् इत्, अ रहता है । यथा, शिवस्यापत्यं शैवः, ककुत्स्थस्यापत्यं काकुत्स्थः, कहोडस्यापत्यं काहोडः, कुपिञ्जलस्यापत्यं कौपिञ्जलः, विश्र-

(१) गर्गादिभ्यो यञ् (पा ४।१।१०५) । (२) दित्यदित्यादित्यपत्युत्तरपदाण्ण्यः (पा ४।१।८५) (३) शिवादिभ्योऽण् (पा ४।१।११२) ।

वणस्यापत्यं वैश्रवणः, रवणस्यापत्यं रावणः, ऊर्णनाभस्यापत्यं और्णनाभः, पृथाया अपत्यं पार्थः, यस्कस्यापत्यं यास्कः, द्रुह्यस्यापत्यं द्रौह्यः, लह्यस्यापत्यं लाह्यः, अयःस्थूणस्यापत्यम् आयःस्थूणः, इलाया अपत्यम् ऐलः, सपत्न्या अपत्यं सापत्नः (*son of a rival wife, a step-son*)।

२३। "बिदादेः" (१)। अपत्य-अर्थमें बिद आदि प्रातिपदिकोंके उत्तर षण् होता है। यथा, बिदस्यापत्यं बैदः (२), उर्व्वस्यापत्यम् और्व्वः, कश्यपस्यापत्यं काश्यपः कुशिकस्यापत्यं कौशिकः, भरद्वाजस्यापत्यं भारद्वाजः, उपमन्योः अपत्यम् औपमन्यवः, विश्वानरस्यापत्यं वैश्वानरः, ऋष्टिषेनस्यापत्यम् आर्ष्टिषेणः, शरद्वतोऽपत्यं शारद्वतः, शुनकस्यापत्यं शौनकः, अर्कलूषस्यापत्यम् आर्कलूषः, पुनर्भ्वा अपत्यं पौनर्भवः (*son of a re married widow*), पुत्रस्यापत्यं पौत्रः, दुहितुरपत्यं दौहित्रः।

२४। "भृग्वादेश्च" (३)। अपत्य-अर्थमें भृगु आदि प्रातिपदिकोंके उत्तर षण् होता है। यथा, भृगोरपत्यं भार्गवः, मरीचेरपत्यं मारीचः, वशिष्ठस्यापत्यं वाशिष्ठः, कुत्सस्यापत्यं कौत्सः, गोतमस्यापत्यं गौतमः, अङ्गिरसोऽपत्यम् आङ्गिरसः, विश्वामित्रस्यापत्यं वैश्वामित्रः, धृतराष्ट्रस्यापत्यं धार्त्तराष्ट्रः, पाण्डोरपत्यं पाण्डवः, वसुदेवस्यापत्यं वासुदेवः, यदोरपत्यं यादवः, पुरोरपत्यं पौरवः, रघोरपत्यं राघवः, कुरोरपत्यं

(१) अनृष्यानन्तर्ये बिदादिभ्योऽञ् (पा ४।१।१०४)। (२) बाह्वादेराकृतिगणत्वादिञ्—बैदिः। (३) ऋष्यन्धकवृष्णिकुरुभ्यश्च (पा ४।१।११४)।

कौरवः. मनोरपत्यं मानवः, द्रुपदस्यापत्यं द्रौपदः, पर्व्वत-स्यापत्यं पार्व्वतः ।

२५ । "ऐक्ष्वाककौरव्यमनुष्यमानुषाः" । ऐक्ष्वाक (१), कौरव्य (२), मनुष्य, मानुष (३), ये चार शब्द निपातनसे सिद्ध होते हैं । यथा, इक्ष्वाकोरपत्यम् ऐक्ष्वाकः ; कुरोरपत्यं कौरव्यः ; मनोरपत्यं मनुष्यः, मानुषः (*descendant of Manu, man*) ।

२६ । "मातुड्‌ुर् संख्यायाः" (४) । षण् प्रत्यय होने-पर संख्यावाचक शब्दके परवर्त्ती मातृ-शब्दके उत्तर डुर् होता है ; ड् इत्, उर् रहता है । यथा, द्वयोर्मात्रोरपत्यं द्वैमातुरः (*Ganesha, having two mothers*), षण्णां मातृणामपत्यं षाण्मातुरः (*Kartikeya, having six mothers*) । (५)

२७ । "कन्यायाः कनीन" (६) । षण् प्रत्यय परे रहनेसे कन्या-शब्दके स्थानमें कनीन होता है । यथा, कन्याया अपत्यं कानीनः (अनूढाया एव अपत्यमित्यर्थः ; *son of a virgin*) —"व्यासः कर्णश्च" इति सिद्धान्तकौमुदी ।

---

(१) जनपदशब्दात् क्षत्रियादञ् (पा ४।१ १६८) । (२) कुर्वनादिभ्यो ण्यः (पा ४।१ १७२) (३) मनोर्जातावञ् यतौ षुक् च (पा ४।१।१६१) । (४) मातुरुत्संख्यासम्भद्रपूर्व्वायाः (पा ४।१।११५) । (५) सम् और भद्र शब्दोंके परे रहनेसे भी डुर् होता है । यथा, साम्मातुरः, भाद्रमातुरः(*Son of a good or virtuous mother*) । संख्यावाचक शब्दके परवर्त्ती न होनेसे डुर नहीं होता । यथा, सुमातुरपत्यं सौमात्रः (*Son of a good mother*) । (६) कन्यायाः कनीन च (पा ४।१।११६) ।

२८। "स्त्रीभ्यः षेयण" (१)। अपत्य-अर्थमें स्त्री-प्रत्ययान्त प्रातिपदिकके उत्तर षेयण् होता है ; ष् ण् इत्, एय रहता है। यथा, गङ्गाया अपत्यं गाङ्गेयः, राधाया अपत्यं राधेयः, विनताया अपत्यं वैनतेयः, ताड़काया अपत्यं ताड़केयः, सरमाया अपत्यं सारमेयः, सुपर्णाया अपत्यं सौपर्णेयः, भगिन्या अपत्यं भागिनेयः, मह्या अपत्यं माहेयः, कुन्त्या अपत्यं कौन्तेयः, रोहिण्या अपत्यं रौहिणेयः, रुक्मिण्या अपत्यं रौक्मिणेयः, कुमारिकाया अपत्यं कौमारिकेयः, अम्बिकाया अपत्यम् आम्बिकेयः, गोधाया अपत्यं गौधेयः (*an iguana*) ।

२९। "गौधेरगौधारौ" (२)। गोधाया अपत्यं इस अर्थमें गौधेर और गौधार शब्द निपातनसे सिद्ध होते हैं।

३०। "शुभ्रादिभ्यश्च" (३)। अपत्यअर्थमें शुभ्र आदि प्रातिपदिकोंके उत्तर षेयण् होता है। यथा, शुभ्रस्यापत्यं शौभ्रेयः, अत्रेरपत्यम् आत्रेयः, विमातुरपत्यं वैमात्रेयः, शकुनेरपत्यं शाकुनेयः, शतलस्यापत्यं शातलेयः, इतरस्यापत्यम् ऐतरेयः (*a decendant of the sage Itara*) ।

३१। "लोपः षेयण्युवर्णस्य" (४)। षेयण् प्रत्यय होनेपर प्रातिपदिकके अन्तस्थित उ-वर्णका लोप होता है। यथा, मृकण्डोरपत्यं मार्कण्डेयः, कमण्डलवा अपत्यं कामण्डलेयः ।

---

(१) स्त्रीभ्यो ढक् पा ४।१।१२०)। (२) गोधाया ढ्रक् (पा ४।१।१२९)—गौधेरः। आरगुदीचाम् (पा ४।१।१३०)—गौधारः। (३) पा ४।१।१२३। (४) ढे लोपोऽकद्र्वाः (पा ६।४।१४७)।

३२। "न पाण्डुकद्र्वोः"। पाण्डु और कद्रु शब्दोंके उ-वर्णका लोप नहीं होता। यथा, पाण्डोरपत्यं पाण्डवेयः, कद्र्वा अपत्यं काद्रवेयः।

३३। "सुभगादेरिन् षेयणि" (१)। षेयण् प्रत्यय होनेपर सुभगा आदि प्रातिपदिकोंके उत्तर इन् होता है। यथा, सुभगाया अपत्यं सौभागिनेयः, दुर्भगाया अपत्यं दौर्भागिनेयः, बन्धक्या अपत्यं बान्धकिनेयः, कनिष्ठाया अपत्यं कानिष्ठिनेयः, मध्यमाया अपत्यं माध्यमिनेयः, परस्त्रिया अपत्यं पारस्त्रैणेयः (*an adulterine, a bastard*)।

३४। "कुलटाया वा" (२)। षेयण् प्रत्यय परे रहनेसे कुलटाशब्दके (३) उत्तर विकल्पसे इन् होता है। यथा, कुलटाया अपत्यं कौलटिनेयः, कौलटेयः।

३५। "स्वस्रादिभ्यः षीयण्" (४)। अपत्य-अर्थमें स्वसृ (*sister*) आदि प्रातिपदिकोंके उत्तर षीयण् होता है ; ष् ण् इत्, ईय रहता है। यथा, स्वसुरपत्यं स्वस्रीयः (*sister's son*)।

३६। "पितृमातृष्वस्रोः षेयण वा ऋलोपश्च" (५)। पितृ-

---

(१) कल्याण्यादीनामिनङ् (पा ४।१।१२६)। (२) पा ४।१।१२७। (३) यहां कुलटा-शब्दसे सती भिक्षोपजीविनी स्त्रीका बोध होता है ; इसका अर्थ व्यभिचारिणी नहीं। "व्यभिचारिणी स्त्रीका पुत्र" इस अर्थमें कौलटेयः, कौलटेरः ये दो पद निष्पन्न होते हैं। "अथ बान्धकिनेयः स्याद् बन्धुलश्चासती सुतः। कौलटेरः कौलटेयो भिक्षुकी तु सती यदि। तदा कौलटिनेयः स्यात् कौलटेयोऽपि चात्मजः॥"—अमरः। (४) स्वसुश्छ (पा ४।१।१४३)। (५) पितृष्वसुश्छण् (पा ४।१।१३२)। ढकि लोपः (पा ४।१।१३३)। मातृष्वसुश्च (पा ४।१।१३४)।

ष्वसृ (*father's sister*) और मातृष्वसृ (*mother's sister*) शब्दोंके उत्तर विकल्पसे षेयण् होता है; णेयण् होनेपर ऋकारका लोप होता है। यथा, पितृष्वसुरपत्यं पैतृष्वसेयः, पैतृष्वस्रीयः; मातृष्वसुरपत्यं मातृष्वसेयः, मातृष्वस्रीयः।

३७। "रेवत्यादिभ्यः षिकण्" (१)। अपत्य-अर्थमें रेवती आदि प्रातिपदिकोंके उत्तर षिकण् होता है; ष् ण् इत्, इक रहता है। यथा, रेवत्या अपत्यं रैवतिकः, अश्वपाल्या अपत्यम् आश्वपालिकः, कर्णग्राहस्यापत्यं कार्णग्राहिकः, दण्डग्राहस्यापत्यं दाण्डग्राहिकः (*an ascetic*)।

३८। "लोपो गर्गादेर्बहुवचने" (२)। बहुवचनमें गर्ग आदिके उत्तर विहित अपत्य-प्रत्ययका लोप होता है। यथा, गर्गस्यापत्यानि गर्गाः, वत्सस्यापत्यानि वत्साः, अगस्तेरपत्यानि अगस्तयः, विश्वावसोरपत्यानि विश्वावसवः, बभ्रोरपत्यानि बभ्रवः, मुद्गलस्यापत्यानि मुद्गलाः, जमदग्नेरपत्यानि जमदग्नयः, जातूकर्णस्यापत्यानि जातूकर्णाः, पूतिमाषस्यापत्यानि पूतिमाषाः।

३९। "यस्कादेः" (२)। बहुवचनमें यस्कादिके उत्तर विहित अपत्यप्रत्ययका लोप होता है। यथा, यस्कस्यापत्यानि यस्काः, लह्यस्यापत्यानि लह्याः, द्रुह्यस्यापत्यानि द्रुह्याः, तृणकर्णस्यापत्यानि तृणकर्णाः, जङ्घारथस्यापत्यानि जङ्घारथाः।

---

(१) रेवत्यादिभ्यष्ठक् (पा ४।१।१४६)। (२) यस्कादिभ्यो गोत्रे (पा २।४।६३)। यञञोश्च (पा २।४।६४)। अत्रिभृगुकुत्सवसिष्ठगोतमाङ्गिरोभ्यश्च (पा २।४।६५)।

४० । "विदादेः" (१) । बहुवचनमें विदादिके उत्तर विहित अपत्यप्रत्ययका लोप होता है । यथा, विदस्यापत्यानि विदाः, उर्व्वस्यापत्यानि उर्व्वाः, कश्यपस्यापत्यानि कश्यपाः, कुशिकस्यापत्यानि कुशिकाः, भरद्वाजस्यापत्यानि भरद्वाजाः, उपमन्योरपत्यानि उपमन्यवः, विश्वानरस्यापत्यानि विश्वानराः, ऋतभागस्यापत्यानि ऋतभागाः, हर्य्यश्वस्यापत्यानि हर्य्यश्वाः, शरद्वतोऽपत्यानि शरद्वतः, शुनकस्यापत्यानि शुनकाः ।

४१ । "अत्र्यादेश्च" (१) । बहुवचनमें अत्र्यादिके उत्तर विहित अपत्य-प्रत्ययका लोप होता है । यथा, अत्रेरपत्यानि अत्रयः, भृगोरपत्यानि भृगवः, कुत्सस्य अपत्यानि कुत्साः, वशिष्ठस्यापत्यानि वशिष्ठाः, गोतमस्यापत्यानि गोतमाः, अङ्गिरसोऽपत्यानि अङ्गिरसः ।

४२ । "राजसंज्ञाभ्यो विभाषा" (२) । बहुवचनमें राजसंज्ञावाचक प्रातिपदिकोंके उत्तर विहित अपत्य-प्रत्ययका विकल्पसे लोप होता है । यथा, रघोरपत्यानि रघवः, राघवाः ; कुरोः अपत्यानि कुरवः, कौरवाः ; यदोरपत्यानि यदवः, यादवाः ; इक्ष्वाकोरपत्यानि इक्ष्वाकवः, ऐक्ष्वाकाः ; वृष्णेरपत्यानि वृष्णयः, वार्ष्णेयाः ; निमेरपत्यानि निमयः, नैमेयाः ।

४३ । "न स्त्रियाम्" (२) । स्त्रीलिङ्गमें अपत्य-प्रत्ययका

---

(१) यस्कादिभ्यो गोत्रे (पा २।४।६३) । यञञोश्च (पा २।४।६४) । अत्रिभृगुकुत्सवसिष्ठगोतमाङ्गिरोभ्यश्च (पा २।४।६५) । (२) तद्राजस्य बहुषु तेनैवास्त्रियाम् (पा २।४।६२) ।

लोप नहीं होता। यथा, यस्कस्यापत्यानि स्त्रियः यास्क्यः, विदस्यापत्यानि स्त्रियः बैद्यः, अत्रेरपत्यानि स्त्रियः आत्रेय्यः, रघोरपत्यानि स्त्रियः राघव्यः (*The female decendants of Raghu*)।

४४। "अर्थविशेषे चापत्यानि"। अपत्य-अर्थमें जो सब प्रत्यय विहित हुए हैं वे अर्थविशेषमें भी प्रयुक्त होते हैं।

४५। "इय-कण्-णीन-षीकणश्च"। अर्थविशेषमें इय, कण्, णीन, षीकण् ये सब प्रत्यय भी यथासम्भव होते हैं। कण् का ण् इत्, क रहता है; णीन का ण् इत्, ईन रहता है; षीकण् का ष् ण् इत्, ईक रहता है।

४६। "तद्वेत्ति तदधीते" (१)। तत् वेत्ति, तत् अधीते इन दोनों अर्थोंमें प्रातिपदिकोंके उत्तर यथासम्भव पूर्व्वोक्त प्रत्यय सब होते हैं। यथा, (षिकण्)—तर्कं वेत्ति अधीते वा तार्किकः (*One who knows or reads Logic i. e. one versed in Logic or the Science of Reasoning*), न्यायं वेत्ति अधीते वा नैयायिकः (*one versed in or conversant with the Nyaya Philosophy*), वेदान्तं वेत्ति अधीते वा वैदान्तिकः, पुराणं वेत्ति अधीते वा पौराणिकः, वेदं वेत्ति अधीते वा वैदिकः, अलङ्कारं वेत्ति अधीते वा आलङ्कारिकः, ज्योतिषं वेत्ति अधीते वा ज्यौतिषिकः, व्याकरणं वेत्ति अधीते वा वैयाकरणिकः, (षण्) वैयाकरणः;

(१) तदधीते तद्वेद (पा ४।२।५९)।

(कण्)—क्रमं वेत्ति अधीते वा क्रमकः (१), पदं वेत्ति अधीते वा पदकः (*one conversant with Padapatha*)।

४७। "ह्रस्वोऽन्त्यः शिक्षादेः" (१)। शिक्षा आदि प्रातिपदिकोंका अन्त्यस्वर ह्रस्व हो जाता है। यथा, (कण्)—शिक्षां वेत्ति अधीते वा शिक्षकः (*one conversant with Shiksha*), मीमांसां वेत्ति अधीते वा मीमांसकः (*one well-versed in the Mimansa Philosophy*)।

४८। "तेन प्रोक्तम्" (२)। तेन प्रोक्तम् इस अर्थमें प्रातिपदिकोंके उत्तर यथासम्भव पूर्व्वोक्त प्रत्यय सब होते हैं। यथा, (षण्)—ऋषिणा प्रोक्तम् आर्षम् (*said by a Rishi*), मनुना प्रोक्तं मानवं (षीयण्) मानवीयम्, विष्णुना प्रोक्तं वैष्णवम्, पतञ्जलिना प्रोक्तं पातञ्जलम्, कणादेन प्रोक्तं काणादम्, उशनसा प्रोक्तं औशनसम्, अङ्गिरसा प्रोक्तं आङ्गिरसम्, वृहस्पतिना प्रोक्तं वार्हस्पत्यम्; (षीयण्)—पाणिनिना प्रोक्तं पाणिनीयम्, जैमिनिना प्रोक्तं जैमिनीयम्, पराशरेण प्रोक्तं पाराशरीयम्, नारदेन प्रोक्तं नारदीयम्, वाल्मीकिना प्रोक्तं वाल्मीकीयम्, बौधायनेन प्रोक्तं बौधायनीयम्; (षेयण्)—अत्रिणा प्रोक्तं आत्रेयम्।

४९। "तेन कृतम्" (३)। तेन कृतम् इस अर्थमें प्रातिपदिकोंके उत्तर यथासम्भव पूर्व्वोक्त प्रत्यय सब होते हैं। यथा,

---

(१) क्रमादिभ्यो वुन् (पा ४।२।६१)। (२) पा ४।३।१०१। (३) संज्ञायाम् (पा ४।३।११७)। चुद्राभ्रमरवटरपादपादञ् (पा ४।३।११९)। तेन कृते संज्ञायाम्। —भ्रमरैः कृतम् भ्रामरम्, वटरैः कृतम् वाटरम्, पादपैः कृतं पादपम्।

(ष्णिकण्)—कायेन, शरीरेण, अङ्गेन वा कृतं कायिकम्, शारीरिकम्, आङ्गिकम् वा ; वाचा, वचनेन वा कृतं वाचिकम् (१), वाचनिकम् वा ; मनसा कृतं मानसिकम्, सहसा कृतं साहसिकम् (ष्णण्) साहसम् ; (ष्णेयण्)—पुरुषेण कृतं पौरुषेयम् ; (ष्णण्)—मक्षिकाभिः कृतं माक्षिकम् (*honey*), क्षुद्राभिः कृतं क्षौद्रम् (*honey*)।

५० । "तेन रक्तम्" (२)। तेन रक्तम् इस अर्थमें प्रातिपदिकोंके उत्तर यथासम्भव पूर्व्वोक्त प्रत्यय सब होते हैं। यथा, (ष्णण्)—कषायेण रक्तं काषायम् (*dyed with a reddish colour*), कुसुम्भेन रक्तं कौसुम्भम् (*dyed with safron-flower*), नील्या रक्तं नीलम्, हरिद्रया रक्तं हारिद्रम्, मञ्जिष्ठया रक्तं माञ्जिष्ठम् ; (ष्णिकण्)—लाक्षया रक्तं लाक्षिकम्, रोचनया रक्तं रौचनिकम् ; (कण्)—पीतेन रक्तं पीतकम्। (३)

५१ । "सास्य देवता" (४)। सा अस्य देवता इस अर्थमें प्रातिपदिकोंके उत्तर यथासम्भव पूर्व्वोक्त प्रत्यय सब होते हैं। यथा, (ष्णण्)—शिवोऽस्य देवता शैवः (*a worshipper of Siva*), विष्णुरस्य देवता वैष्णवः, शक्तिरस्य देवता शाक्तः, पशुपतिरस्य देवता पाशुपतः पाशुपतम्, सूर्य्योऽस्य देवता सौरः,

---

(१) वाचो व्याहृतार्थायाम् (पा ५।४।३५)। व्याहृत अर्थ न होनेसे "मधुरा वाग् देवदत्तस्य"—काशिका, "सन्देशवाग् वाचिकं स्यात्"—अमरः।
(२) तेन रक्तं रागात् (पा ४।२।१)। "लाक्षारोचनाट्ठक्" (पा ४।२।२)।
(३) शकलकर्द्दमाभ्यामुपसंख्यानम्। (ष्णिकण्)—शाकलिकः, कार्द्दमिकः ; (ष्णण्)—शाकलः, कार्द्दमः (४)। पा ४।२।२४।

बृहस्पतिरस्य देवता बार्हस्पतम्; (ष्यण्)—गणपतिरस्य देवता गाणपत्यः, प्रजापतिरस्य देवता प्राजापत्यः, वायुरस्य देवता वायव्यः, सोमोऽस्य देवता सौम्यः, इन्द्रोऽस्य देवता ऐन्द्रः (मन्त्रः) (षण्) ऐन्द्रम् (हविः), द्यावापृथिव्यौ अस्य देवते द्यावापृथिव्यम् (षीयण्) द्यावापृथिवीयम्, अग्नीषोमावस्य देवते अग्नीषोम्यम् (षीयण्) आग्नीषोमीयम्; (षेयण्)—अग्निरस्य देवता आग्नेयः।

५२। "तस्य समूहः" (१)। तस्य समूह इस अर्थमें प्रातिपदिकोंके उत्तर यथासम्भव पूर्व्वोक्त प्रत्यय सब होते हैं। यथा, (षण्)—काकानां समूहः काकम्, बकानां समूहः बाकम्, भिक्षाणां समूहः भैक्षम् (२), अङ्गाराणां समूहः आङ्गारम् (*a number of fire-brands*), मयूराणां समूहः मायूरम् (*a flock of peacocks*); (कण्)—धेनूनां समूहः धैनुकम्, कलापानां समूहः कालापकम्, राजन्यानां समूहः राजन्यकम् (*a number of Kshatriyas*), राजपुत्त्राणां समूहः राजपुत्त्रकम् (*a number of princes*), मनुष्याणां समूहः मानुष्यकम्, वृद्धाणां समूहः वार्द्धकम्; (षिकण्)—अपूपानां समूहः आपूपिकम्; (ष्यण्)—गणिकानां समूहः गाणिक्यम्, ब्राह्मणानां समूहः ब्राह्मण्यम्।

---

(१) पा ४।२।३७। (२) भिक्षादिभ्योऽण् (पा ४।२।३८)। गोत्रोक्षोष्ट्रोरभ्रराजराजन्यराजपुत्त्रवत्समनुष्याजाद्वुञ् (पा ४।२।३९)। अचित्तहस्तिधेनोष्ठक (पा ४।२।४७)। गणिकाया यञिति वक्तव्यम् (वा २७१९)।

५३। "समूहे खण्ड-काण्ड-तल:" (१)। समूह-अर्थमें प्रातिपदिकोंके उत्तर यथासम्भव खण्ड, काण्ड और तल् प्रत्यय होते हैं। यथा, कमलानां समूह: कमलखण्डम्, कुमुदानां समूह: कुमुदखण्डम्; दूर्व्वाणां समूह: दूर्व्वाकाण्डम्, कर्म्मणां समूह: कर्म्मकाण्डम्। तल्-प्रत्ययान्त शब्द स्त्रीलिङ्ग होते हैं। यथा, जनानां समूह: जनता (*a crowd, a number of men*), बन्धूनां समूह: बन्धुता (२)।

५४। "तत्र भव:" (३)। तत्र भव (४) इस अर्थमें प्रातिपदिकोंके उत्तर यथासम्भव पूर्व्वोक्त प्रत्यय सब होते हैं। यथा, (षण्)—मथुरायां भव: माथुर:, कलिङ्गे भव: कालिङ्ग:, शरदि भव: शारद:, अन्तरे भवम् आन्तरम् (षिकण्) आन्तरिकम्, मनसि भवं मानसम् (षिकण्) मानसिकम्, शरीरे भवं शारीरम् (षिकण्) शारीरिकम्, अरण्ये भव: आरण्य: पशु: (कण्) आरण्यको मनुष्य:, भूमौ भव: भौम:, मध्यन्दिने भवं माध्यन्दिनम्; (ष्यण्)—ग्रामे भव: ग्राम्य: (णीन) ग्रामीण: (५), द्वीपे भव: द्वैप्य: (षायनण्) द्वैपायन:, प्राचि भवं प्राच्यम् (*Eastern*), दिशि भवं दिश्यम् (६), वर्गे भवं वर्ग्यम्

(१) कमलादिभ्य: खण्डच् (वा ३११२); पूर्व्वादिभ्य काण्डच् (वा ३११४)। (२) ग्रामजनबन्धुभ्यस्तल् (पा ४।२।४३)। "जनबन्धुगजग्रामसहायेभ्यस्तलं विदु:।" —प्रयोगरत्नमाला। (३) पा ४।३।५३। (४) यहां भव-शब्दसे जात, स्थित, संक्रान्त, आविर्भूत आदि अनेक अर्थ बोध होते हैं। (५) ग्रामाद् यखञौ (पा ४।२।९४)। (६) दिगादिभ्यो यत् (पा ४।३।५४)।

(१), कण्ठे भवं कण्ठ्यम्, दन्ते भवं दन्त्यम्, तालौ भवं तालव्यम्, ओष्ठे भवम् ओष्ठ्यम् (१), दिवि भवः दिव्यः, अग्रे भवम् अग्र्यम् (२), आदौ भवम् आद्यम्, अन्ते भवम् अन्त्यम्, वेशे भवा वेश्या ; (ष्ठिकण् —नगरे भवः नागरिकः, वर्षासु भवः वार्षिकः (३), वसन्ते भवः वासन्तिकः (४), हेमन्ते भवः हैमन्तिकः (षण्) हैमन्तः, समुद्रे भवः सामुद्रिकः, अकाले भवः आकालिकः, शश्वद्भवः शाश्वतिकः (*Eternal*), इह भवम् ऐहिकम्, लोके भवं लौकिकम्, सर्व्वकाले भवं सार्व्वकालिकम्, अध्यात्मं भवम् आध्यात्मिकम् (५), अधिभूतं भवम् आधिभौतिकम् (*relating to tutelary deity*), अधिदेवं भवम् आधिदैविकम् (६) ; (णीन)—कुले भवः कुलीनः (*born of a high family*), दुष्कुले भवः दुष्कुलीनः (ष्ठेयण्) दौष्कुलेयः (९) ; (ष्ठेयण्)—कोशे भवं कौषेयम् ; (ष्ठीयण्)— जिह्वामूले भवं जिह्वामूलीयम् (८) ; (कण्)—कदाचिद्भवं कादाचित्कम् (*occasional*), सम्प्रति भवं साम्प्रतिकम् ।

५५ । "टिलोपोऽकस्माद्बहिषोः" । अकस्मात् और बहिस्

---

(१) शरीरावयवाच्च (पा ४।३।५५) । (२) अग्राद्द यत् (पा ४।४।११६) । (३) वर्षाभ्यष्ठक् (पा ४।३।१८) । (४) वसन्तादिभ्यष्ठक् (पा ४।२।६३) । (५) अध्यात्मादेष्ठञिष्यते (वा० २८६९) । (६) अनुशतिकादीनां च (पा ७।३।२०) । एषामुभयपदवृद्धिर्ञिति णिति किति च । *Other examples* :— ऐहलौकिकम्, पारलौकिकम् । (७) कुलात् खः (पा ४।१।१३९); दुष्कुलाड्ढक् (पा ४।१।१४२) । (८) जिह्वामूलाङ्गुलेश्छः (पा ४।३।६२) । अङ्गुल्याम् भवम् अङ्गुलीयम् ।

इन दोनों प्रातिपदिकोंके 'टि' का लोप होता है। यथा, अकस्माद्भवम् आकस्मिकम् (*sudden*), बहिर्भवम् वाह्यम् वाहिकम् (*external*)।

५६। "स्त्रीपुंसाभ्यां नञ्" (१)। स्त्री और पुमस् शब्दोंके उत्तार भव आदि अर्थोंमें नञ् होता है; ञ् इत्, न रहता है। यथा, स्त्रोषु भवं स्त्रैणम् (*womanhood*), पुंसु भवं पौंस्नम् (*manhood*)।

५७। "हैमन-शौवस्तिक-पौनःपुनिकाः"। हैमन, शौवस्तिक और पौनःपुनिक शब्द निपातनसे सिद्ध होते हैं। यथा, हेमन्ते भवं हैमनम् (*cold*), श्वो भवं शौवस्तिकम् (*belonging to or lasting till to-morrow*), पुनःपुनर्भवं पौनःपुनिकम् (*recurring*)।

५८। "प्रतीच्योदीच्यतिरश्चीनाः"। प्रतीच्य, उदीच्य और तिरश्चीन ये तीन शब्द निपातनसे सिद्ध होते हैं। यथा, प्रतीचि भवं प्रतीच्यम् (*Western*), उदीचि भवम् उदीच्यम् (*Northern*), तिरश्चि भवं तिरश्चीनम् (*oblique, sideways*)।

५९। "तत्र साधुः" (२)। 'तत्र साधु' इस अर्थमें प्रातिपदिकोंके उत्तर यथासम्भव पूर्व्वोक्त प्रत्यय सब होते हैं। यथा, सभायां साधुः सभ्यः (३), समाजे साधुः सामाजिकः (३),

---

(१) स्त्रीपुंसाभ्यां नञ्स्नञौ भवनात् (पा ४।१।८७)। "स्त्रीणां पुंसां च यत् किञ्चित् स्त्रैणं पौंस्नमिति क्रमात्।"—अमरः।

(२) पा ४।४।९८। (३) सभायां यः (पा ४।४।१०५); पथ्यतिथिवसति-

अतिथौ साधुः आतिथेयः (*hospitable*), वेदे साधुः वैदिकः, संग्रामे साधुः सांग्रामिकः, संयुगे (*in war*) साधुः सांयुगीनः (२), वितण्डायां (*in controversy or dispute*) साधुः वैतण्डिकः, कथायां साधुः काथिकः, संकथायां साधुः सांकथिकः, संग्रहे (*in collection or compilation*) साधुः सांग्रहिकः।

६०। "देये कालादवश्यम्भावे" (१)। 'अवश्यम्भाव' बोध होनसे देय इस अर्थमें कालवाचक प्रातिपादिकोंके उत्तर यथासम्भव पूर्व्वोक्त प्रत्यय सब होते हैं। यथा, मासे देयं मासिकम् (*payble in a month*), वर्षे देयं वार्षिकम्, अब्दे देयम् आब्दिकम्, संवत्सरे देयं सांवत्सरिकम्, अग्रहायणे देयम् आग्रहायणिकम् (*payable in the month of Agrahayana*), श्रावणे देयं श्रावणिकम्।

६१। "निर्वृत्ते च" (२)। निर्वृत्त अर्थात् निष्पन्न अर्थमें भी होता है। यथा, दिनेन निर्वृत्तं दैनिकम्, मासेन निर्वृत्तं मासिकम्, वर्षेण निर्वृत्तम् वार्षिकम्, संवत्सरेण निर्वृत्तं सांवत्सरिकम् (षीयण् योगे) सांवत्सरीयम्।

६२। "अह्नोऽह्नः" (२)। अहन् शब्दके स्थानमें अह्न होता

स्वपतेर्ढञ् (पा ४।४।१०४); कथादिभ्यष्ठक् (पा ४।४।१०२); गुडादिभ्यष्ठञ् (पा ४।४।१०३)। रचति (पा ४।४।२२) समाजं रचति इस अर्थमें भी सामजिकः पद होता है। प्रतिजनादिभ्यः खञ् (पा ४।४।९९)। प्रातिजनीनः; सार्व्वजनीनः।
(१) देयमृणे (पा ४।३।४७)। (२) तेन निर्वृत्तम् (५।१।७९)।

है। यथा, अह्ना निर्वृत्तम् आह्निकम् (*performed every day*)।

६३। "व्याप्तौ च" (१)। 'व्याप्ति' अर्थमें भी होता है। यथा, दिनं व्याप्य स्थितं दैनिकम् (*lasting for a day*), मासं व्याप्य स्थितं मासिकम्, वर्षं व्याप्य स्थितं वार्षिकम्, चतुरो मासान् व्याप्य स्थितं चातुर्मास्यम् (*lasting for four months*)।

६४। "वयसि च" (२)। वयस्-अर्थमें भी होता है। यथा, द्वे वर्षे अस्य वयः द्विवर्षीणः, द्विवर्षीयः, द्विवार्षिकः, द्विवर्षः (*two years old*); पञ्च वर्षाण्यस्य वयः पञ्चवर्षीणः, पञ्चवर्षीयः, पञ्चवार्षिकः, पञ्चवर्षः; षोड़श वर्षाण्यस्य वयः षोड़शवर्षीणः, षोड़शवर्षीयः, षोड़शवार्षिकः, षोड़शवर्षः।

६५। "तत आगतः" (३)। 'तत आगतः' इस अर्थमें प्रातिपदिकोंके उत्तर यथासम्भव पूर्व्वोक्त प्रत्यय सब होते हैं। यथा, मथुराया आगतः माथुरः, नगरादागतः नागरिकः, आपणादागतः आपणिकः, उपाध्यायादागतम् औपाध्यायकम्, पितामहादागतं पैतामहकम्, मातुरागतं मातृकम्, सवितुरागतं सावित्रम्, भ्रातुरागतं भ्रातृकम्, पितुरागतं पैतृकम् पित्र्यम् स्त्रिया आगतं स्त्रैणम्, पुंस आगतं पौंस्नम्।

---

(१) तमधिष्टो भृतो भूतो भावी (पा ५।१।८०)। द्विगोर्यप् (पा ५।१।८२)। (२) वर्षाल्लुक् च (पा ५।१।८८)। चित्तवति नित्यम् (पा ५।१।८९)। वर्ष-शब्दान्तात् द्विगोर्व्वा खः पक्षे ठञ् वा लुक् त्रीणि च रूपाणि। (३) पा ४।३।७४।

६६। "तदर्हति" (१)। 'तत् अर्हति' इस अर्थमें प्रातिपदिकोंके उत्तर यथासम्भव पूर्व्वोक्त प्रत्यय सब होते है। यथा, शतमर्हति शतिकः, सहस्रमर्हति साहस्रिकः, छेदमर्हति छेद्यः, भेदमर्हति भेद्यः, दण्डमर्हति दण्ड्यः (*deserving punishment*), अर्घमर्हति अर्घ्यः, वधमर्हति वध्यः (*fit to be killed*), यज्ञमर्हति यज्ञियः यज्ञीयः (*sacrificial*), दक्षिणामर्हति दक्षिणीय दक्षिण्यः (*worthy of a sacrificial gift*)।

६७। "तस्मादनपेतम्" (२)। 'तस्मात् अनपेतम्' इस अर्थमें प्रातिपदिकोंके उत्तर यथासम्भव पूर्व्वोक्त प्रत्यय सब होते हैं। यथा, धर्म्मादनपेतं धर्म्यम् (*according to justice or morality*), न्यायादनपेतं न्याय्यम् (*right, proper*), अर्थादनपेतम् अर्थ्यम्, पथोऽनपेतं पथ्यम् (*proper, suitable*), शास्त्रादनपेतं शास्त्रीयम् (*according to the Sastras*), विधेरनपेतं वैधम् (*according to rule or law, lawful*)।

६८। "तस्येदम्" (३)। 'तस्य इदम्' इस अर्थमें प्रातिपादिकों के उत्तर यथासम्भव पूर्व्वोक्त प्रत्यय सब होते हैं। यथा, विष्णोरिदं वैष्णवम्, शिवस्येदं शैवम्, जनपदस्येदं जानपदम्, तस्येदं तदीयम्, एतस्येदम् एतदीयम्, देवस्येदं दैवम्,

(१) तदर्हम् (पा ५।१।११७)। (२) धर्मपथ्यर्थन्यायादनपेते (पा ४।४।९२)।
(३) पा ४।३।१२०।

असुरस्येदम् आसुरम् सम्राज इदं साम्राज्यम्, इन्द्रस्येदम् ऐन्द्रम्, महेन्द्रस्येदम् माहेन्द्रम्, मनस इदं मानसम्, शरीरस्येदं शारीरम्, पितुरिदं पित्र्यम्, गोरिदं गव्यम्, महिषस्येदं माहिषम्, वेणोरिदं वैणवम्, पलाशस्येदं पालाशम्, खदिरस्येदं खादिरम्, विल्वस्येदं वैल्वम्, मुञ्जानामिदं मौञ्जम्, स्त्रिया इदं स्त्रैणम्, पुंस इदं पौंस्नम्, गङ्गाया इदं गाङ्गम्, हिमवत इदं हैमवतम्, पशुपतेरिदं पाशुपतम्, शङ्करस्येदं शाङ्करम्, चन्द्रस्येदं चान्द्रम्, वेदस्येदम् वैदिकम्, उपनिषद इदम् औपनिषदम्, पृथिव्या इदं पार्थिवम्, जलस्येदं जलीयम्, तेजस इदं तैजसम्, वायोरिदं वायवीयम्, शत्रोरिदं शात्रवम्, रुरोरिदं रौरवम्, न्यङ्कोरिदं नैयङ्कवम् न्याङ्कवम्, श्वापदस्येदं शौवापदम् श्वापदम्, भरतस्येदं भारतम्, भारतवर्षस्येदं भारतवर्षीयम्, युष्माकमिदं युष्मदीयम् (*your*, *yours*), अस्माकमिदं अस्मदीयम् (*our*, *ours*)।

६९। "त्वन्मदावेकवचने" (१)। एकवचनमें युष्मद्-के स्थानमें त्वद् और अस्मद्-के स्थानमें मद् होता है। यथा, तव इदं त्वदीयम्, (*thy*, *thine*), मम इदं मदीयम् (*my*, *mine*)।

७०। "युष्माकास्माकौ णीन-षणोः" (२)। णीन और षण् प्रत्यय परे रहनेसे युष्मद्के स्थानमें युष्माक और अस्मद्के

---

(१) प्रत्ययोत्तरपदयोश्च (पा ७।२।९८)। उत्तरपदे यथा, तव पुत्रः त्वत्पुत्रः; मम पुत्रः मत्पुत्रः। (२) युष्मदस्मदोरन्यतरस्यां खञ्च (पा ४।३।१)। चाच्छः पक्षेऽण्—सिद्धान्त-कौमुदी।

स्थानमें अस्माक होता है। यथा, युष्माकमिदं यौष्माकीणम् यौष्माकम् (*your, yours*); अस्माकमिदम् आस्माकीणम् आस्माकम् (*our, ours*)।

७१। "तवकममकावेकवचने" (१)। णीन और षण् प्रत्यय परे रहनेसे एकवचनमें तवक और ममक होता है। यथा, तव इदं तावकीनम् तावकम् (*thy, thine*); मम इदं मामकीनम् मामकम् (*my, mine*)।

७२। "परादेः कन् छीयणि" (२)। छीयण् प्रत्यय होनेसे पर, स्व, राजन् आदि प्रातिपदिकोंके उत्तर कुन् होता है; न् इत्, क रहता है। यथा, परस्येदं परकीयम् (*belonging or pertaining to others*)। स्व-शब्दके उत्तर विकल्पसे होता है। यथा, स्वस्येदं स्वकीयम् स्वीयम् (*relating to one's own self, one's own*)।

७३। "सौर-सारव-स्वायम्भुवाः" (३)। सौर, सारव और स्वायम्भुव शब्द निपातनसे सिद्ध होते हैं। यथा, सूर्य्यस्येदं सौरं दिनम्, सरय्वा इदं सारवं जलम् (*water of the river Sarayu*), स्वयम्भुव इदं स्वायम्भुवं धाम।

७४। "भवदीयान्यदीयौ" (४)। भवदीय और अन्यदीय

(१) पा ४।३।१। (२) राज्ञः क च (पा ४।३।१४०)। यथा, राज्ञः इदं राजकीयम्। कुक् जनस्य परस्य च, देवस्य च इति वक्तव्यम् (-ग० सू० ८९, ९०)। (३) संज्ञापूर्व्वकस्य विधेरनित्यत्वात् स्वायम्भुवादयः सिध्यन्ति। (४) भवतष्ठक्छसौ (पा ४।२।११५)। गहादिभ्यश्च (पा ४।२।१३८)। यथा, गह+छ=गहीयः (*one who lives in a cave*)।

शब्द निपातनसे सिद्ध होते हैं। यथा, भवत इदं भवदीयम्, अन्यस्येदम् अन्यदीयम् (*belonging to another*)।

७५। "तस्य विकारः" (१)। 'तस्य विकारः' इस अर्थमें प्रातिपदिकोंके उत्तर यथासम्भव पूर्व्वोक्त प्रत्यय सब होते हैं। यथा, सुवर्णस्य विकारः सौवर्णः (*made of gold*), रजतस्य विकारः राजतः, सीसस्य विकारः सैसः (*made of lead*). दारोर्व्विकारः दारवः, देवदारोर्व्विकारः दैवदारवः, पयसो विकारः पायसः (२), अग्नेः विकारः आग्नेयः, मुद्गस्य विकारः मौद्गः (३), इक्षोर्व्विकारः ऐक्षवः, गुड़स्य विकारः गौड़ः, पिष्टस्य विकारः पैष्टः, तिलस्य विकारः तैलम्।

७६। "तदस्य पण्यम्" (४)। 'तत् अस्य पण्यम्' इस अर्थमें प्रातिपदिकोंके उत्तर यथासम्भव पूर्व्वोक्त प्रत्यय सब होते हैं। यथा, लवणमस्य पण्यं लावणिकः (*a vendor of salt*) (५), तैलमस्य पण्यं तैलिकः. अपूपा अस्य पण्यम् आपूपिकः (६), तण्डुलमस्य पण्यं ताण्डुलिकः, मोदका अस्य पण्यं

---

(१) पा ४।३।१३४। अश्मनो विकारे टिलोपो वक्तव्यः, अश्मनो विकारः आश्मः; अश्मनो विकारः आश्मनः, मृत्तिकाया विकारः मार्त्तिकः। (२) गोपयसोर्यत् (पा ४।३।१६०)। इस सूत्रके अनुसार पयस्यम् भी होता है। (३) अवयवे च प्राण्योषधिवृक्षेभ्यः (पा४।३।१३५)। इस सूत्रके अनुसार प्राणी, ओषधि तथा वृक्षवाचक प्रातिपदिकोंके उत्तर अवयव अर्थमें भी षण् होता है। यथा, मयूरस्य अवयवो विकारो वा मायूरः। मूर्वाया अवयवो विकारो वा मौर्वम्, पिप्पलस्य अवयवो विकारो वा पैप्पलम्। (४) पा ४।४।५१। (५) लवणाट्ठञ् (पा ४।४।५२)। (६) शीलम् (पा ४।४।६१)। अपूपभक्षणं शीलमस्य आपूपिकः। हितम्भक्षाः (पा ४।४।६५)। अपूपभक्षणं हितमस्मै आपूपिकः।

मौदकिकः, उशीर (*Khas Khas, the root of a kind of fragrant grass*)-मस्य पण्यं औशीरिकः, ताम्बूलमस्य पण्यं ताम्बूलिकः।

७७। "तदस्य प्रहरणम्" (१)। 'तत् अस्य प्रहरणम्' इस अर्थमें प्रातिपदिकोंके उत्तर यथासम्भव पूर्व्वोक्त प्रत्यय सब होते हैं। यथा, धनुरस्य प्रहरणम् धानुष्कः, असिः अस्य प्रहरणम् आसिकः, प्रासोऽस्य प्रहरणं प्रासिकः, परश्वधम् अस्य प्रहरणम् पारश्वधिकः (२), परशुरस्य प्रहरणम् पारशविकः, तरवारिरस्य प्रहरणं तारवारिकः, शक्तिरस्य प्रहरणं शाक्तीकः (३), यष्टिरस्य प्रहरणं याष्टीकः (*a soldier armed with a club*)।

७८। "तदस्य प्रयोजनम्" (४)। 'तत् अस्य प्रयोजनम्' इस अर्थमें प्रातिपदिकोंके उत्तर यथासम्भव पूर्व्वोक्त प्रत्यय सब होते हैं। यथा, स्वर्गः प्रयोजनमस्य स्वर्ग्यम् (*procuring a place in heaven*), यशः प्रयोजनमस्य यशस्यम्, आयुः प्रयोजनमस्य आयुष्यम्, कामः प्रयोजनमस्य काम्यम्, गृहप्रवेशनं प्रयोजनमस्य गृहप्रवेशनीयम्, अनुप्रवचनं प्रयोजनमस्य अनुप्रवचनीयम् (५), संवेशनं प्रयोजनमस्य संवेशनीयम्। (६)

७९। "तदस्य शीलम्" (७)। 'तत् अस्य शीलम्' इस

---

(१) प्रहरणम् (पा ४।४।५७)। (२) परश्वधाट् ठञ् (पा ४।४।५८)। (३) शक्तियष्ट्योरीकक् (पा ४।४।५९)। (४) प्रयोजनम् (पा ५।१।१०९)। (५) अनुप्रवचनादिभ्यश्छः (पा ५।१।१११)। (६) स्वर्गः प्रयोजनमस्य स्वर्गीयः, यशस्यः, आयुष्यः, काम्यः, अनुप्रवचनीयः, संवेशनीयः भी यथाक्रम होते हैं। (७) शीलम् (पा ४।४।६१); छत्रादिभ्यो णः (पा ४।४।६२)।

अर्थमें प्रातिपदिकोंके उत्तर यथासम्भव पूर्व्वोक्त प्रत्यय सब होते हैं। यथा, तपोऽस्य शीलं तापसः, (गुरोः दोषाणामावरणं छत्त्रम्) छत्त्रमस्य शीलं छात्त्रः, शिक्षास्य शीलं शैक्षः, प्ररोहोऽस्य शीलं प्रारोहः (*shoot or sprout*), चुरा अस्य शीलं चौरः (*thief*)।

८०। "तदस्य प्राप्तं कालात्" (१)। 'तत् अस्य प्राप्तम्' इस अर्थमें कालवाचक प्रातिपदिकोंके उत्तर यथासम्भव पूर्व्वोक्त प्रत्यय सब होते हैं। यथा, समयोऽस्य प्राप्तः सामयिकः (*relating to or observing time or season, seasonable*), कालोऽस्य प्राप्तः कालिकः, ऋतुरस्य प्राप्तः आर्त्तवः (*conforming to season*)।

८१। "अधिकृत्य कृतं ग्रन्थे" (२)। ग्रन्थ बोध होनेपर 'अधिकृत्य कृतम्' इस अर्थमें प्रातिपदिकोंके उत्तर यथासम्भव पूर्व्वोक्त प्रत्यय सब होते हैं। यथा, राममधिकृत्य कृतम् रामायणम्, भगवन्तमधिकृत्य कृतं भागवतम्, भरतानधिकृत्य कृतं भारतम्, वाक्यं पदञ्चाधिकृत्य कृतं वाक्यपदीयम्, राघवान् पाण्डवांश्चाधिकृत्य कृतं राघवपाण्डवीयम्, किरातमर्ज्जुनञ्चाधिकृत्य कृतं किरातमर्ज्जुनीयम्, अनुशासनमधिकृत्य कृतम् आनुशासनिकम्, अश्वमेधमधिकृत्य कृतम् आश्वमेधिकम्,

(१) समयस्तदस्य प्राप्तम् (पा ५।१।१०४)। कालाद्यत् (पा ५।१।१०७)। इस सूत्रके अनुसार कालः प्राप्तोऽस्य काल्यम् भी होता है। यथा, काल्यं शीतम्। ऋतोरण् (पा ५।१।१०५)। प्रकृष्टे ठञ् (पा ५।१।१०८)। (२) अधिकृत्य कृते ग्रन्थे (पा ४।३।८७)।

आश्रमवासमधिकृत्य कृतम् आश्रमवासिकम्, मुषलमधिकृत्य कृतं मौषलम्, महाप्रस्थानमधिकृत्य कृतं महाप्रस्थानिकम्, स्वर्गारोहणमधिकृत्य कृतं स्वर्गारोहणिकम्, शारीरकमधिकृत्य कृतो ग्रन्थः शारीरकीयः।

८२। "तस्मै प्रभवति" (१)। 'तस्मै प्रभवति' इस अर्थमें प्रातिपदिकोंके उत्तर यथासम्भव पूर्व्वोक्त प्रत्यय सब होते हैं। यथा, सन्तापाय प्रभवति सान्तापिकः, सन्नाहाय प्रभवति सान्नाहिकः, सांग्रामाय प्रभवति सांग्रामिकः, संघाताय प्रभवति सांघातिकः, उत्पाताय प्रभवति औत्पातिकः।

८३। "कार्म्मुकं धनुषि" (२)। 'धनु' इस अर्थमें कार्म्मुक-शब्द निपातनसे सिद्ध होता है। यथा, कर्म्मणे प्रभवति कार्म्मुकं धनुः (*A bow*)।

८४। "तस्मै हितम्" (३)। 'तस्मै हितम्' इस अर्थमें प्रातिपदिकोंके उत्तर यथासम्भव पूर्व्वोक्त प्रत्यय सब होते हैं। यथा, यज्ञाय हितं यज्ञीयम् (*proper for or suitable to a sacrifice*), अध्वराय हितम् अध्वरीणम्, ब्रह्मणे हितं ब्रह्मण्यम्, विश्वजनेभ्यो हितम् विश्वजनीनम् (*suitable to*

(१) तस्मै प्रभवति सन्तापादिभ्य (पा ५।१।१०१)। योगाद्यच्च (पा ५।१।१०२) = योगात् + यत + च। यथा, योगाय प्रभवति योग्यः, यौगिकः। (२) कर्म्मण उकञ् (पा ५।१।१०३)। (३) पा ५।१।५। आत्मन्विश्वजनभोगोत्तर-पदात् खः (पा ५।१।९)। आत्मने हितम् आत्मनीनम्।

all men), सर्व्वजनेभ्यो हितं सार्व्वजनीनम् (*suited to all men, universal*) (१)।

८५। "कालेनक्षत्राद्योगे" (२)। 'काल' और 'नक्षत्रयोग' बोध होनेसे नक्षत्रवाचक प्रातिपदिकोंके उत्तर यथासम्भव पूर्व्वोक्त प्रत्यय सब होते हैं। यथा, विशाखया नक्षत्रेण युक्तो मास: वैशाखः, राधया नक्षत्रेण युक्तो मासः राधः, ज्येष्ठया नक्षत्रेण युक्तो मासः ज्यैष्ठः, आषाढ़या नक्षत्रेण युक्तो मासः आषाढ़ः, श्रवणया नक्षत्रेण युक्तो मासः श्रावणः श्रावणिकः (३), भद्रया नक्षत्रेण युक्तो मासः भाद्रः, भद्रपदया नक्षत्रेण युक्तो मासः भाद्रपदः, प्रोष्ठपदया नक्षत्रेण युक्तो मासः प्रोष्ठपदः. अश्विन्या नक्षत्रेण युक्तो मास: आश्विनः, अश्वयुजा नक्षत्रेण युक्तो मासः आश्वयुजः, कृत्तिकया नक्षत्रेण युक्तो मासः कार्त्तिकः कार्त्तिकिकः (३), अग्रहायण्या नक्षत्रेण युक्तो मासः अग्रहायणः आग्रहायणः आग्रहायणिकः, मृग्या नक्षत्रेण युक्तो मासः मार्गः, मृगशीर्षेण नक्षत्रेण युक्तो मासः मार्गशीर्षः, मृगशिरसा नक्षत्रेण युक्तो मासः मार्गशिरसः, मघया नक्षत्रेण युक्तो मासः माघः, फल्गुन्या नक्षत्रेण युक्तो मासः फाल्गुनः फाल्गुनिकः (३), चित्रया नक्षत्रेण युक्तो मासः चैत्रः चैत्रिकः (३)।

---

(१) सर्व्वजनाट्ठञ् खञ्च; सार्व्वजनिकः सर्व्वजनीनः। प्रतिजनादिभ्यः खञ् (पा ४।४।९९); प्रातिजनीनः, सार्व्वजनीनः। (२) नक्षत्रेण युक्तः कालः (पा ४ २।३)। (३) विभाषा फाल्गुनीश्रवणाकार्त्तिकीचैत्रीभ्यः (पा ४।२।२३); एभ्यष्ठक्वा, पक्षेऽण्।

८६। "यलोपस्तिष्यपुष्ययोः" (१)। तिष्य और पुष्य शब्दोंके य-का लोप होता है। यथा, तिष्येण नक्षत्रेण युक्तो मासः तैषः, पुष्येण नक्षत्रेण युक्तो मासः पौषः (२)।

८७। "तद्वहति" (३)। 'तत् वहति' इस अर्थमें प्रातिपदिकोंके उत्तर यथासम्भव पूर्व्वोक्त प्रत्यय सब होते हैं। यथा, धुरं वहति धुर्य्यः धौरेयः (*capable of taking or bearing burden, a beast of burden*), सर्व्वधुरां वहति सर्व्वधुरीणः, चतुर्धुरां वहति चतुर्धुरीणः, हलं वहति हालिकः (*a ploughman, a plough cattle*), सीरं वहति सैरिकः (*a ploughman*), रथं वहति रथ्यः (*a car or a carriage horse.*), युगं वहति युग्यः (*a carriage-horse*), शकटं वहति शाकटः (*a draught-ox*)।

८८। "तेन जीवति" (४)। 'तेन जीवति' इस अर्थमें प्रातिपदिकोंके उत्तर यथासम्भव पूर्व्वोक्त सब प्रत्यय होते हैं। यथा, वेतनेन जीवति वैतनिकः, वाहनेन जीवति वाहनिकः, जालेन जीवति जालिकः, उपदेशेन जीवति औपदेशिकः, धनुषा जीवति धानुषिकः, क्रयविक्रयाभ्यां जीवति क्रयविक्रयिकः

---

(१) तिष्यपुष्ययोर्नक्षत्राणि यलोप इति वाच्यम् (वा० ४२००)। (२) साऽस्मिन् पौर्णमासीति (पा ४।२।२१)। पौषी पौर्णमासी अस्मिन् इति पौषो मासः। पुष्येण युक्तमहः पौषम्, पौषी रात्रिः। (३) तद्वहति रथयुगप्रासङ्गम् (पा ४।४।७६)। धुरो यड्ढकौ (पा ४।४।७७)। खः सर्व्वधुरात् (पा ४।४।७८)। शकटादण् (पा ४।४।८०)। हलसीराट्ठक् (पा ४।४।८१)। (४) वेतनादिभ्यो जीवति (पा ४।४।१२)।

(*trader*), आयुधेन जीवति आयुधिकः, आयुधीयः (*warrior, soldier*), वागुरया जीवति वागुरिकः, नावा जीवति नाविकः (*sailor, pilot*), व्यवहारेण जीवति व्यवहारिकः (*an advocate, a vakil, litigant*) ।

८९ । "तदस्मिन् दीयते" (१) । 'तत् अस्मिन् दीयते' इस अर्थमें प्रातिपदिकोंके उत्तर यथासम्भव पूर्व्वोक्त प्रत्यय सब होते हैं । यथा, द्वावस्मिन् वृद्धिः आयः लाभः शुल्कम् उपदा वा दीयते द्विकं शतम् , ऐसे त्रिकं शतम् , चतुष्कं शतम् , पञ्चकं शतम् । वृद्धि आदिके दानके स्थलमें ही होता है ।

९० । "तादर्थ्ये" (२) । 'तादर्थ्य' बोध होनेपर प्रातिपदिकोंके उत्तर यथासम्भव पूर्व्वोक्त प्रत्यय सब होते हैं । यथा, पादार्थमुदकं पाद्यम् , अर्घार्थमुदकम् अर्घ्यम् (*offering or oblation to a god*), वलये इदं वालेयम् (३), अतिथये इदम् आतिथ्यम् (*hospitality*), अग्निदेवतायै इदम् अग्निदैवत्यम् , पितृदेवतायै इदं पितृदैवत्यम् ।

९१ । "स्वार्थे" । स्वार्थमें प्रातिपदिकोंके उत्तर यथासम्भव पूर्व्वोक्त प्रत्यय सब होते हैं । ये सब प्रत्यय होनेपर प्रातिपदिकोंके अर्थका वैलक्षण्य नहीं होता, पूर्व्वका ही अर्थ ज्यों के त्यों रहता है । यथा, (षण्)—बन्धुरेव बान्धवः (*friend,*

(१) तदस्मिन् वृद्ध्यायलाभशुल्कोपदा दीयते (पा ५।१।४७)। (२) पादार्घाभ्याञ्च (पा ५।४।२५) । (३) छदिरुपधिबलेर्ढञ् (पा ५।१।१३) ; अतिथेर्ञ्यः (पा ५।४।२६) ; देवतान्तात्तादर्थ्ये यत् (पा ५।४।२४) ।

relation), चोर एव चौरः, चण्डाल एव चाण्डालः, मन एव मानसम्, देवतैव दैवतम्, प्रज्ञ एव प्राज्ञः (१), कुतुकमेव कौतुकम् (*curiosity, eagerness*), कुतूहलमेव कौतूहलम् (*pleasure*), मरुदेव मारुतः (*air*), रक्ष एव राक्षसः, अगारमेव आगारम्; (ष्यञ्)—भेषजमेव भैषज्यम् (*medicine*), इतिहैव ऐतिह्यम् (*tradition*) (२), त्रिलोकी एव त्रैलोक्यम्, करुणा एव कारुण्यम (*kindness*), द्विगुणावेव द्वैगुण्यम्, त्रिगुणा एव त्रैगुण्यम्, षड्गुणा एव षाड्गुण्यम्, चत्वारो वर्णा एव चातुर्वर्ण्यम् (३), युगपदेव यौगपद्यम्, तदर्थ एव तादर्थ्यम्, सेना एव सैन्यम्, सन्निधिरेव सान्निध्यम् (*proximity*), समीपमेव सामीप्यम् (*nearness, proximity*), उपमा एव औपम्यम् (*resemblance*), सुखमेव सौख्यम्, सोदर एव सोदर्य्यः (४), सूर एव सूर्य्यः, मर्त्त एव मर्त्त्यः (*mortal*), समान एव सामान्यम् (*ordinary*), नवमेव नव्यम् (णीन) नवीनम्; (षिकण्)—वागेव वाचिकम् (सन्देशवचनम्) (५), अत्यय एव आत्ययिकः (६), मुक्ता एव मौक्तिकम्; (कन)—एक एव एककः (७); (कण्)—याव एव यावकः, बाल एव बालकः, नौरेव नौका।

---

(१) प्रज्ञादिभ्यश्च (पा ५।४।३८)। (२) अनन्तावसथेतिहभेषजाञ्ञ्यः (पा ५।४।२३)। (३) चतुर्वर्णादीनां स्वार्थे उपसंख्यानम् (वा ३०९१)। (४) सोदराद्यः (पा ४।४।१०९)। (५) वाचो व्याहृतार्थायाम् (पा ५।४।३५); सन्दिष्टवाक् वाचिकं स्यात्। (६) विनयादिभ्यष्ठक् (पा ५।४।३४)। (७) सर्व्वप्रातिपदिकेभ्यः स्वार्थे कन् (वा १७२२)।

६२। "देवात्तल्" (१)। 'स्वार्थमें देव-शब्दके उत्तर तल् प्रत्यय होता है। यथा, देव एव देवता (*a god, a deity*)।

६३। "भागरूपनामेभ्यो धेयः"। स्वार्थमें भाग, रूप और नामन् इन तीनों प्रातिपदिकोंके उत्तर धेय प्रत्यय होता है। यथा, भाग एव भागधेयः (*an heir, a co-heir*), रूपमेव रूपधेयम्, नामैव नामधेयम्।

६४। "मृदस्तिकन्" (२)। स्वार्थमें मृद्-शब्दके उत्तर तिकन् प्रत्यय होता है। यथा, मृदेव मृत्तिका (*earth, soil*)।

६५। "सस्नौ प्रशंसायाम्" (३)। प्रशंसा बोध होनेपर स्वार्थमें मृद्-शब्दके उत्तर स और स्न प्रत्यय होते हैं। यथा, प्रशस्ता मृत् मृत्सा, मृत्स्ना (*rich soil, good clay*)।

६६। "नूत्ननूतनौ" (४)। नूत्न और नूतन ये दो शब्द निपातनसे सिद्ध होते हैं। यथा, नवमेव नूत्नं नूतनम् (*new, fresh, novel*)।

६७। "औपयिकश्च" (५)। औपयिक-शब्द निपातनसे सिद्ध होता है। यथा, उपाय एव औपयिकः (*right, proper*)।

६८। "सोऽस्य निवासोऽभिजनो वा" (६)। 'सः

---

(१) पा ५।४।२७। (२) पा ५।४।३९। (३) पा ५।४।४०। (४) नवस्य नू (आदेशः) त्नप्तनप्खाश्च (वा ३३२७); नवमेव नूत्नं, नूतनं, नव्यं, नवीनम्। (५) विनयादिभ्यष्ठक् (पा ५।४।३४)। उपायाद् ह्रस्वत्वञ्च। (६) सोऽस्य निवासः (पा ४।३।८९); अभिजनश्च (पा ४।३।९०)।

अस्य निवासः (*present residence*) सः अस्य अभिजनः (*ancestral abode*)' (१) इन दोनों अर्थोंमें प्रातिपदिकोंके उत्तर यथासम्भव पूर्व्वोक्त प्रत्यय सब होते हैं। यथा, (षण्) मथुरा अस्य निवासः माथुरः, मिथिला अस्य निवासः मैथिलः, कम्बोजोऽस्य निवासः काम्बोजः, कश्मीरोऽस्य निवासः काश्मीरः, गान्धारोऽस्य निवासः गान्धारः, कलिङ्गोऽस्य निवासः कालिङ्गः, उत्कलोऽस्य निवासः औत्कलः, सिन्धुरस्य निवासः सैन्धवः, तक्षशीलास्य निवासः ताक्षशीलः, विदेहोऽस्य निवासः वैदेहः, पञ्चालोऽस्य निवासः पाञ्चालः, मगधोऽस्य निवासः मागधः, मद्रोऽस्य निवासः माद्रः, अङ्गोऽस्य निवासः आङ्गः, वङ्गोऽस्य निवासः वाङ्गः ; (षिकण्) अयोध्या अस्य निवासः आयोध्यिकः। अभिजन अर्थमें भी ऐसा ही है। यथा, गान्धारोऽस्याभिजनः गान्धारः इत्यादि।

९९। "लोपो बहुवचने" (२) बहुवचनमें 'निवास' और 'अभिमजन' अर्थोंमें विहित प्रत्ययका लोप होता है। यथा, अङ्ग एषां निवासः अङ्गाः, वङ्ग एषां निवासः वङ्गाः, कलिङ्ग एषां निवासः कलिङ्गाः, विदेह एषां निवासः विदेहाः, उत्कल एषां निवासः उत्कलाः, कम्बोज एषां निवासः कम्बोजाः, मगध एषां निवासः मगधाः, पञ्चाल एषां निवासः पञ्चालाः, कश्मीर एषां निवासः कश्मीराः।

---

(१) निवासो नाम यत्र सम्प्रत्युष्यते (यत्र स्वयं वसति स निवासः)। अभिजनो नाम यत्र पूर्व्वैरुषितम् (यत्र पूर्व्वैरुषितं सोऽभिजनः)। (२) तद्राजस्य बहुषु तेनैवास्त्रियाम् (पा २।४।६२)।

१००। "न स्त्रियाम्" (१)। स्त्रीलिङ्गमें नहीं होता (अर्थात् स्त्रीलिङ्गके बहुवचनमें निवास तथा अभिजन अर्थों में विहित प्रत्ययका लोप नहीं होता)। यथा, मगध आसां निवासः मागध्यः, पञ्चाल आसां निवासः पाञ्चाल्यः, विदेह आसां निवासः वैदेह्यः, कलिङ्ग आसां निवासः कालिङ्ग्यः (*the females of Kalinga*)।

१०१। "सोऽस्य राजेत्येवम्" (२)। 'सः अस्य राजा' इस अर्थमें भी ऐसा ही होता है; अर्थात् 'सोऽस्य निवासः', 'सोऽस्याभिजनः' इन दोनों अर्थों में जो प्रत्यय और जो कार्य्य होते हैं 'सोऽस्य राजा' इस अर्थमें भी वैसे ही प्रत्यय और वैसे ही कार्य्य होते हैं। यथा, कश्मीरस्य राजा काश्मीरः (*the king of Kashmir*), कलिङ्गस्य राजा कालिङ्गः, विदेहस्य राजा वैदेहः, पञ्चालस्य राजा पाञ्चालः, मगधस्य राजा मागधः, निषधस्य राजा नैषधः (३)। बहुवचनमें—कश्मीराः, कलिङ्गाः, विदेहाः, पञ्चालाः, मगधाः, निषधाः।

१०२। "तस्य भावः"। 'तस्य भावः' इस अर्थमें प्रातिपदिकोंके उत्तर यथासम्भव पूर्व्वोक्त प्रत्यय सब होते हैं (४)।

---

(१) तद्राजस्य बहुषु तेनैवास्त्रियाम् (पा २।४।६२)। (२) "तस्य राजनि अपत्यवत्"। (३) किन्तु "कम्बोजाल्लुक्" (पा ४।१।१७५) इस सूत्रके और "कम्बोजादिभ्य इति वक्तव्यम्" इस वार्त्तिकके अनुसार कम्बोजस्य राजा कम्बोजः, चोलस्य राजा चोलः, शकस्य राजा शकः, केरलस्य राजा केरलः, यवनस्य राजा यवनः इत्यादि होते हैं। (४) प्राणभृज्जातिवयोवचनोद्गात्रादिभ्योऽञ् (पा ५।१।१२९)। वर्णदृढादिभ्यः ष्यञ् च (पा ५।१।१२३)।

यथा, (षण्)—कुमारस्य भावः कौमारम् (*childhood, youth*), शिशोर्भावः शैशवम् (*childhood*), वृद्धस्य भावः वार्द्धकम् (*old age*), स्थविरस्य भावः स्थाविरम् (*old age*), गुरोर्भावः गौरवम् (*respectability, heaviness*), लघोर्भावः लाघवम् (*lightness*), सुष्ठु (शोभनस्य) भावः सौष्ठवम् (*excellence*), ऋजोर्भावः आर्जवः (*straightness, rectitude, uprightness, sincerity*), मृदोर्भावः मार्दवम् (*softness*), पटोर्भावः पाटवम् (*cleverness, dexterity*), सुरभेर्भावः सौरभम् (*fragrance*); (कण्)—रमणीयस्य भावः रामणीयकम् (*beautifullness*), कमणीयस्य भावः कामणीयकम् (*pleasantness*); (ष्यण्)—स्थिरस्य भावः स्थैर्यम् (*firmness*), धीरस्य भावः धैर्य्यम् (*firmness, steadiness*), गम्भीरस्य भावः गाम्भीर्य्यम् (*depth, graveness*), कृशस्य भावः कार्श्यम् (*thinness*), जडस्य भावः जाड्यम् (*dullness, indolence*), शीतस्य भावः शैत्यम् (*coldness*), उष्णस्य भावः औष्ण्यम् (*warmth*), दृढ़स्य भावः दार्ढ्यम् (*firmness*), मन्दस्य भावः मान्द्यम् (*sluggishness, sickness*), सुभगस्य भावः सौभाग्यम् (*good fortune, blessedness*), दुर्भगस्य भावः दौर्भाग्यम् (*misfortune*), मधुरस्य भावः माधुर्य्यम्, माधुरी (*sweetness*), मूर्खस्य भावः मौर्ख्यम् (*stupidity, folly*), विषमस्य भावः वैषम्यम् (*inequality, unevenness*), समस्य भावः साम्यम् (*equality, likeness*),

कातरस्य भावः कातर्य्यम् (*perplexity*), कर्कशस्य भावः कार्कश्यम् (*harshness, roughness*), बालस्य भावः बाल्यम् (*childhood*), शुक्लस्य भावः शौक्ल्यम् (*whiteness*), सुमनसो भावः सौमनस्यम् (*satisfaction*), दुर्मनसो भावः दौर्मनस्यम् (*dissatisfaction, distress*), विमनसो भावः वैमनस्यम् (*anxiety, sadness*), प्रवीणस्य भावः प्रावीण्यम् (*cleverness, skilfulness*), उदासीनस्य भावः औदासीन्यम् (*indifference, apathy*), कृपणस्य भावः कार्पण्यम् (*niggardliness*), मध्यस्थस्य भावः माध्यस्थ्यम् (*mediation*), उदारस्य भावः औदार्य्यम् (*high-mindedness, generosity, magnanimity*), विगुणस्य भावः वैगुण्यम् (*defect*), सुजनस्य भावः सौजन्यम् (*generosity, kindness*), स्थूलस्य भावः स्थौल्यम् (*fatness, plumpiness*), अधिकस्य भावः आधिक्यम् (*excess*) ।

१०३ । "तस्य भावः कर्म्म च" (१) । तस्य भावः' 'तस्य कर्म्म' इन दोनों अर्थोंमें प्रातिपदिकोंके उत्तर यथासम्भव पूर्व्वोक्त प्रत्यय सब होते हैं । यथा,—ब्राह्मणस्य भावः कर्म्म वा ब्राह्मण्यम् (*the state, office, quality or duty of a Brahmin*), चोरस्य भावः कर्म्म वा चौर्य्यम् (*theft*), अलसस्य भावः कर्म्म वा आलस्यम् (*idleness*), सेनापतेर्भावः कर्म्म वा सैनापत्यम् (*the office or duty of a general*)

---

(१) गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः कर्म्मणि च (पा ५।१।१२४) ।

(१), अधिपतेर्भावः कर्म्म वा आधिपत्यम् (*supremacy*), सख्युर्भावः कर्म्म वा सख्यम् (*friendship*), शूरस्य भावः कर्म्म वा शौर्य्यम् (*valour, prowess*), वीरस्य भावः कर्म्म वा वीर्य्यम् (*vigour, strength*), दूतस्य भावः कर्म्म वा दूत्यम्, दौत्यम् (*the office or duty of a messenger*), पुरोहितस्य भावः कर्म्म वा पौरोहित्यम् (*the office or duty of a family-priest*), सुहितस्य भावः कर्म्म वा सौहित्यम् (*satiety, fullness, surfeit*), सारथेर्भावः कर्म्म वा सारथ्यम् (*the office or duty of a charioteer*), आस्तिकस्य भावः कर्म्म वा आस्तिक्यम् (*faith or belief in God*), नास्तिकस्य भावः कर्म्म वा नास्तिक्यम् (*Atheism, infidelity*), पण्डितस्य भावः कर्म्म वा पाण्डित्यम् (*scholorship, learning*), वणिजो भावः कर्म वा वाणिज्यम् (*trade, traffic*), शुचेर्भावः कर्म्म वा शौचम् (*purification*), अशुचेर्भावः कर्म्म वा अशौचम्, आशौचम् (*impurity*), मुनेर्भावः कर्म्म वा मौनम् (*silence*), अकुशलस्य भावः कर्म्म वा आकौशलम् (*want of skill*), अनुकूलस्य भावः कर्म्म वा आनुकूल्यम् (*help, favour, kindness*), प्रतिकूलस्य भावः कर्म्म वा प्रातिकूल्यम् (*opposition, contradiction*), पुरुषस्य भावः कर्म्म वा पौरुषम् (*manliness*), सुभ्रातुर्भावः कर्म्म वा सौभ्रात्रम्, दुर्भ्रातुर्भावः कर्म्म वा दौर्भ्रात्रम् सुहृदो

(१) पत्यन्तपुरोहितादिभ्यो यक् (पा ५।१।१२८)। सख्युर्यः (पा ५।१।१२६)।

भावः कर्म्म वा सौहार्द्दम् (*friendship*), दुर्हृदो भावः कर्म्म वा दौहार्द्दम्, अनृशंसस्य भावः कर्म्म वा आनृशंस्यम्. कुशलस्य भावः कर्म्म वा कौशलयम् कौशलम् (*cleverness, welfare*), चपलस्य भावः कर्म्म वा चापल्यम्. चापलम् (*unsteadiness*), निपुणस्य भावः कर्म्म वा नैपुण्यम् नैपुणम् (*skill, cleverness*). पिशुनस्य भावः कर्म्म वा पैशुन्यम् पैशुनम्, सहायस्य भावः कर्म्म वा साहाय्यम् साहायकम् (*assistance, help*), चतुरस्य भावः कर्म्म वा चातुर्य्यम् चातुरी (*dexterity, cleverness*)।

१०४। "इतरेष्वपि दृश्यन्ते"। षिग् आदि प्रत्यये अपत्य आदि जिन अर्थोंमें दिखाए गये हैं उनके अतिरिक्त और भी बहु अर्थोंमें व्यवहृत होते हैं। कईएकोंके उदाहरण दिखाए जाते हैं। यथा,—धर्म्मं चरति (१) धार्म्मिकः (*pious, virtuous*), वशं गतः (२) वश्यः (*dependent*), पृथिव्या ईश्वरः (३) पार्थिवः (*a king*), सर्व्वभूमेरीश्वरः विदितो सर्व्वभूमौ (४) वा सार्व्वभौमः (*an emperor*), चक्षुषा गृह्यते चाक्षुषं (*visible*) रूपम्, श्रवणेन गृह्यते श्रावणः (*audible*) शब्दः, रसनया गृह्यते रासनो (*palatable*) रसः, त्वचा गृह्यते त्वाचः (*tangible*) स्पर्शः, चक्षुषा निष्पन्नं चाक्षुषं प्रत्यक्षम्, श्रवणेन निष्पन्नं श्रावणम्, रसनया निष्पन्नं रासनम्, त्वचा निष्पन्नं त्वाचम्, पारं गतवान् पारीणः (५), पारावारं गतवान् पारावारीणः (५), अर्थेन क्रीतः आर्थः (६), विद्यया लब्धं वैद्यम्, विद्यायां कुशलः

(१) धर्म्मञ्चरति (पा ४।४।४१)। अधर्म्माच्चेति वक्तव्यम्—आधार्म्मिकः। (२) (पा ४।४।८६)। (३) तस्येश्वरः (पा ५।१।४२)। (४) तत्र विदित इति च (पा ५।१।४३)। (५) अवारपारात्यन्तानुकामं गामी (पा ५।२।११)। (६) तेन

वैद्यः, स्त्रिया जितः स्त्रैणः (*a henpecked husband*). द्वारे नियुक्तः दौवारिकः (१), भाण्डागारे नियुक्तः भाण्डागारिकः (२) हिमवतः प्रभवति (३) हैमवती गङ्गा, विदूरात् प्रभवति वैदूर्य्यो मणिः, रथेन सञ्चरते (४) रथिकः, अश्वेन सञ्चरते आश्विकः, शकुनीन् हन्ति शाकुनिकः, शकुन्तान् हन्ति शाकुन्तिकः (५), सहसा वर्त्तते साहसिकश्चौरः (६), जलेन वर्त्तते जलीयो मत्स्यः, अनुकूलं वर्त्तते आनुकूलिकः, प्रतिकूलं वर्त्तते प्रातिकूलिकः, नावा तार्य्या नाव्या नदी (७), वयसा तुल्यः वयस्यः, तुलया सम्मितं तुल्यम्, गृहपतिना संयुक्तः गार्हपत्योऽग्निः, समाने तीर्थे (गुरौ) वसति सतीर्थ्यः (८), समाने उदरे शयितः समानोदर्य्यः (९), अग्रे दीयते अग्रियम् अग्रीयम् (१०), लोके विदितः लौकिकः (११), सर्व्वलोके विदितः सार्व्वलौकिकः (१२), नित्यं क्रियते दीयते वा नैत्यम्.

क्रीतम् (५।१।३७)। (१) तत्र नियुक्तः (पा ४।४।६९); आकरे नियुक्तः आकरिकः। (२) अगारान्ताट्ठञ् (पा ४।४।७४); देवागारे नियुक्तः देवागारिकः। (३) प्रभवति (पा ४।३।८३) (४) चरति (पा ४।४।८); हस्तिना चरति हास्तिकः। (५) पक्षिमत्स्यमृगान् हन्ति (पा ४।४।३५)। (६) ओजः सहोऽम्भसा वर्त्तते (पा ४।४।२७)। (७) नौवयोधर्म्मविषमूलमूलसीतातुलाभ्यस्तार्य्यतुल्यप्राप्यवध्यानाम्यसमसमितसम्मितेषु (पा ४।४।९१)। (८) समाने तीर्थे वासी (४।४।१०७)। (९) समानोदरे शयित ओचोदात्तः (पा ४।४।१०८); सोदराद्यः (४।४।१०९)। (१०) अग्राद् यत् (पा ४।४।११६)। घच्छौ च (पा ४।४।११७)। (११) लोकसर्व्वलोकाट्ठञ् (पा ५।१।४४)। (१२) अनुशतिकादीनां च (पा ७।३।२०)। ञित्, णित् अथवा कित् प्रत्यय परे रहनेसे अनुशतिक आदि शब्दोंमें पूर्व्व तथा उत्तर पदके आदि अच् की वृद्धि होती है। यथा, अधिदेव आधिदैविकम्, अधिभूत आधिभौतिकम्, इहलोक ऐहलौकिकम्, परलोक पारलौकिकम्; ये सब ठक् प्रत्ययसे बने हैं।

नैत्यकम् नैत्यिकम्, निमित्तेन क्रियते दीयते वा नैमित्तिकम्, प्रवेशने दीयते प्रावेशनम् प्रावेशनिकम्, सर्व्वाङ्गाणि व्याप्नोति सर्व्वाङ्गीणस्तापः (१), आप्रपदं प्राप्नोति आप्रपदीनः पटः (२), अनुपदं बद्धा अनुपदीना उपानत् (३), अभ्यमित्रं (अलङ्गामी) सम्यक् गच्छति अभ्यमित्रीयः अभ्यमित्रीणः (४), सप्तभिः पदैरवाप्यते साप्तपदीनं सख्यम् (५), इन्द्रस्य आत्मनो लिङ्गम् इन्द्रियम्, कुशाग्रमिव कुशाग्रीया बुद्धिः (६), काकतालमिव (७) काकतालीयम्, प्राक् सम्भूतः प्राचीनः, अवाक् सम्भूतः अवाचीनः, सुस्नातं पृच्छति सौस्नातिकः (८), सुखशयनं पृच्छति सौखशायनिकः, परदारान् गच्छति पारदारिकः (९), याचितेन निवृत्तं याचितकम्, अर्थं गृह्णाति आर्थिकः, आपणस्य धर्म्यम् आपणिकम्, नरस्य धर्म्या नारी, वातस्य शमनं कोपनं वा वातिकम्, पित्तस्य शमनं कोपनं वा पैत्तिकम्, सन्निपातस्य शमनं कोपनं वा सान्निपातिकम्, अस्ति परलोक इति मतिर्यस्य आस्तिकः (१०), नास्ति परलोक इति मतिर्यस्य नास्तिकः, अस्ति दिष्टमिति मतिर्यस्य दैष्टिकः,

---

(१) तत् सर्व्वादेः पथ्यङ्गकर्म्मपत्रपात्रं व्याप्नोति (पा ५।२।७)। (२) आप्रपदं प्राप्नोति (पा ५।२।८)। (३) अनुपदसर्व्वान्नायानयं बद्धाभक्षयतिनेयेषु (पा ५।२।९)। (४) अभ्यमित्राच्छ च (पा ५।२।१७)। (५) साप्तपदीनं सख्यम् (पा ५।२।२२)। (६) कुशाग्राच्छः (पा ५।३।१०५)। (७) काकागमनमिव तालपतनमिव काकतालम्। (८) पृच्छतौ सुस्नातादिभ्यः (वा १९५३)। (९) गच्छतौ परदारादिभ्यः (वा १९५४)। (१०) अस्ति नास्ति दिष्टं मति

१०८। "पान्थसाक्षिवार्द्धुषिकाः" (१)। पान्थ, साक्षिन् और वार्द्धुषिक शब्द निपातनसे सिद्ध होते हैं। यथा, पन्थानं नित्यं गच्छति पान्थः, साक्षात् द्रष्टवान् साक्षी (*a witness*); वृद्ध्या जीवति वार्द्धुषिकः (*a usurer*)।

१०९। "आमुष्मिकामुष्यायणौ"। ष्णिकण् तथा ष्फायनण् प्रत्ययोंसे युक्त अदस् शब्दके स्थानमें 'आमुष्मिक' 'आमुष्यायण' ये दो शब्द निपातनसे सिद्ध होते हैं। यथा, अमुष्मिन् (परलोके) हितम् आमुष्मिकम् (*pertaining to the next world*), अमुष्य (मृतस्य) पुत्त्रः आमुष्यायणः।

११०। "पौनःपुन्यम्"। पौनःपुन्य शब्द निपातनसे सिद्ध होता है। यथा, पुनःपुनरनुष्ठानं सङ्घटनं वा पौनःपुन्यम् (*frequent repetition*)।

१११। "नस्य लोपोऽन्तस्य" (२)। तद्धित-प्रत्यय परे रहनेसे प्रातिपदिकके अन्तस्थित नकारका लोप होता है। यथा, अग्निशर्म्मणोऽपत्यम् आग्निशर्म्मिः उडुलोम्नोऽपत्यम् औडुलोमिः, राज्ञां समूहः राजकम् (*an assemblage of princes*), हस्तिनां समूहः हास्तिकम् (*a herd of elephants*),

---

५।२।१३)। अद्य श्वो वा विजायते अद्यश्वीना वड़वा, आसन्नप्रसवा इत्यर्थः। केचित्तु विजायते इति नानुवर्त्तयन्ति।—सिद्धान्तकौमुदी। (१) पन्थो ण नित्यम् (पा ५।१।७६)। पन्थानं नित्यं गच्छति पान्थः—काशिका। किन्तु नित्यं गच्छति न होकर केवल 'गच्छति' होनेसे पथिकः होता है। पथः ष्कन (पा ५।१।७४)। साक्षाद् द्रष्टरि संज्ञायाम् (पा ५।२।९१)। वृद्धेर्वृधुषिभावो वक्तव्यः (वा २९६५)। (२) नस्तद्धिते (पा ६।४।१४४)।

पथि कुशलः पन्थानं गच्छति वा पथिकः (*a traveller*), सर्व्वकर्म्मसु कुशलः सर्व्वकर्म्मीणः (*skilful in all business*), नामैव नामधेयम् (*name, appelation*), द्वयोरह्नोर्भवः द्व्यह्निः (*of two days*), साम वेत्ति अधीते वा सामकः, आत्मन इदम् आत्मीयम् (*one's own, a relation*)।

११२। "नानन्तस्य षणि" (१)। षण्-प्रत्यय होनेसे अन्-भागान्त प्रातिपदिकोंके न्-का लोप नहीं होता। यथा, यूनो भावः यौवनम् (*youth*), मघोन इदं माघवनम्, शुनां समूहः शौवनम्, पर्व्वणि क्रियते दीयते वा पार्व्वणम्, सामनि कुशलः सामनः, सुत्वन इदं सौत्वनम्, यज्वनोऽपत्यं याज्वनः, चर्म्मणा परिवृतः चार्म्मणः, कर्म्मास्य शीलं कार्म्मणः (*active*), भस्मनो विकारः भास्मनः (*made of ashes*)।

११३। "ये च भावकर्म्मवर्ज्जे" (२)। तद्धितका य परे रहनेसे अन्-भागान्त प्रातिपदिकोंके न्-का लोप नहीं होता। यथा, सामनि साधुः सामन्यः, ब्रह्मणि साधुः ब्रह्मण्यः, अध्वनि साधुः अध्वन्यः, राजनि साधुः राजन्यः (३), कर्म्मणे प्रभवति कर्म्मण्यः, मूर्द्ध्नि भवः मूर्द्धन्यः। कर्म्म तथा भाव अर्थोंमें न्-का लोप होता है। यथा, राज्ञो भावः कर्म्म वा राज्यम्।

११४। "नाध्वात्मनोर्णीने" (४)। णीन्-प्रत्यय होने पर अध्वन् और आत्मन् इन दोनों प्रातिपदिकोंके न् का लोप नहीं

(१) अन् (पा ६।४।१६७)। (२) ये चाभावकर्म्मणोः (पा ६।४।१६८)।
(३) राजश्वशुराद्यत् (पा ४।१।१३७)। (४) आत्माध्वानौ खे (पा ६।४।१६९)।

होता। यथा, अध्वनि साधुः अध्वनीनः (*a traveller*), आत्मने हितम् आत्मनीनम् (*beneficial to oneself*)।

११५। "मनन्तस्यापत्यषणि" (१)। अपत्य अर्थमें विहित षण्-प्रत्यय परे रहनेसे मन्-भागान्त प्रातिपदिकोंके न्-का लोप होता है। यथा, सुसाम्नोऽपत्यं सौसामः, दुर्नाम्नोऽपत्यं दौर्नामः, कृतनाम्नोऽपत्यं कार्त्तनामः।

११६। "वा हितनाम्नः" (२)। 'हितनामन्' इस प्रातिपदिकके न्-का विकल्पसे लोप होता है। यथा, हितनाम्नोऽपत्यं हैतनामः हैतनामनः।

११७। "हेमाश्मनोर्विकारे" (३)। विकार अर्थमें विहित षण् प्रत्यय परे रहनेसे हेमन् अश्मन् इन दोनों प्रातिपदिकोंके न्-का लोप होता है। यथा, हेम्नो विकारः हैमः (*made of gold, golden*), अश्मनो विकारः आश्मः (*made of stone*)।

११८। "चर्म्मणः कोषे" (४)। कोष अर्थमें चर्म्मन् शब्दके न्-का लोप होता है। यथा, चर्म्मणो विकारः चार्म्मः (*leathern*) कोषः (*sheath, case*)।

११९। "ब्रह्मणोऽजातौ" (५)। जाति भिन्न अर्थमें ब्रह्मन् शब्दके न्-का लोप होता है। यथा, ब्रह्मास्य देवता ब्राह्मम् अस्त्रम्

---

(१) न मपूर्व्वोऽपत्येऽवर्म्मणः (पा ६।४।१७०)। (२) मपूर्व्वप्रतिषेधे वा हितनाम्न इति व्यक्तव्यम् (वार्त्तिक)। (३) तस्य विकारः (पा ४।३।१३४); अश्मनो विकार उपसंख्यानम् (वा ४१८५)। (४) चर्म्मणः कोष उपसंख्यानम् (वा ४१८४)। (५) ब्राह्मोऽजातौ (पा ६।४।१७१)।

(*the missile presided over by Brahma*), ब्राह्मं हविः, ब्राह्मी ओषधिः (*a sort of pot-herb*). ब्रह्म उपास्ते ब्राह्मः. ब्रह्मण इयं ब्राह्मी तनुः। जाति अर्थमें (न्-का लोप) नहीं होता। यथा. ब्रह्मणोऽपत्यं ब्राह्मण: जातिविशेषः।

१२०। "नेनन्तस्य षणि" (१)। षण् प्रत्यय होनेसे इन्-भागान्त प्रातिपदिकोंके न्-का लोप नहीं होता। यथा,—बलिन इदं बालिनम्, हस्तिन इदं हास्तिनम्, मेधाविन इदं मैधाविनम्, स्रग्विण इदं स्राग्विणम्। अपत्य अर्थमें (न्‌का लोप) होता है। यथा, मेधाविनोऽपत्यं मैधावः, मायाविनोऽपत्यं मायावः। गाथिन् प्रभृतिका नहीं होता। यथा, गाथिनोऽपत्यं गाथिनः, केशिनोऽपत्यं कैशिनः। इन् संयुक्तवर्णमें मिले रहनेसे नहीं होता। यथा. स्रग्विणोऽपत्यं स्राग्विणः. तपस्विनोऽपत्यं तापस्विनः, चक्रिणः अपत्यं चाक्रिणः।

१२१। "तस्य भावस्त्वतलौ" (२)। 'तस्य भावः' इस अर्थमें प्रातिपदिकोंके उत्तर त्व और तल् प्रत्यय होते हैं; तल्‌का ल् इत् रहता है। त्व प्रत्ययान्त शब्द क्लीबलिङ्ग और तल्-प्रत्ययान्त शब्द स्त्रीलिङ्ग होते हैं। यथा. प्रभोर्भावः प्रभुत्वम्, प्रभुता (*lordship, mastery supremacy*) ; भीरोर्भावः भीरुत्वम्. भीरुता (*fearfullness, timidity*) ; मनुष्यस्य भावः मनुष्यत्वम्, मनुष्यता (*manliness, manhood, humanity*); अमरस्य भावः अमरत्वम्. अमरता (*immortality*) ; पशोर्भावः

---

(१) इनण्यनपत्ये (पा ६।४।१६४)। (२) पा ५।१।११९।

पशुत्वम्, पशुता (*beastliness, beastiality, brutality*); शूरस्य भाव: शूरत्वम्, शूरता (*heroism, bravery*); कातरस्य भावः कातरत्वम्, कातरता (*timidity, agitation*); चपलस्य भावः चपलत्वम्, चपलता (*fickleness*); नास्तिकस्य भाव: नास्तिकत्वम्, नास्तिकता (*atheism*); अलसस्य भाव: अलसत्वम्, अलसता (*idleness, laziness*); अन्धस्य भाव: अन्धत्वम्, अन्धता (*blindness*); मूर्खस्य भाव: मूर्खत्वम्, मूर्खता (*ignorance, stupidity*); मूकस्य भावः मूकत्वम्, मूकता (*dumbness*); राज्ञो भाव: राजत्वम्, राजता (*kingliness, sovereignty*); यूनो भावः युवत्वम्, युवता (*youth*); न्यूनस्य भाव: न्यूनत्वम्, न्यूनता (*defect, dificiency, inferiority*)।

१२२। "वा नीलादेरिमनिः" (१)। तस्य भावः इस अर्थमें नील आदि प्रातिपदिकोंके उत्तर विकल्पसे इमनि होता है; इ इत्, इमन् रहता है; पक्षमें त्व और तल् होते हैं। इमन् प्रत्ययान्त शब्द पुंलिङ्ग होता है। यथा, नीलस्य भावः नीलिमा, नीलत्वम्, नीलता (*bluishness*); पीतस्य भावः पीतिमा, पीतत्वम्, पीतता (*yellowness*); रक्तस्य भावः रक्तिमा, रक्तत्वम्, रक्तता (*redness*); शुक्लस्य भावः शुक्लिमा, शुक्लत्वम्, शुक्लता (*whiteness*); वक्रस्य भावः वक्रिमा, वक्रत्वम्, वक्रता (*crookedness curvature*); शीतस्य

(१) पृथ्वादिभ्य इमनिज् वा (पा ५।१।१२२); वर्णदृढ़ादिभ्यः ष्यञ् च

भावः शीतिमा, शीतत्वम्, शीतता (*coldness*); उष्णस्य भावः उष्णिमा, उष्णत्वम्, उष्णता (*warmth*); जडस्य भावः जड़िमा, जड़त्वम्, जड़ता (*dullness, ignorance, stupidity*); मधुरस्य भावः मधुरिमा, मधुरत्वम्, मधुरता (*sweetness*)।

१२३। "ओर्लोपोऽन्तस्य" (१)। इमनि प्रत्यय होनेपर शब्दके अन्तस्थित उ वर्णका लोप होता है (२)। यथा, लघोर्भावः लघिमा, लघुत्वम्, लघुता (*lightness*); अणोर्भावः अणिमा, अणुत्वम्, अणुता (*subtility, molecularity, moleculism*); तनोर्भावः तनिमा, तनुत्वम्, तनुता (*minuteness*); स्वादोर्भावः स्वादिमा, स्वादुत्वम्, स्वादुता (*sweetness*); पटोर्भावः पटिमा, पटुत्वम्, पटुता (*ability, cleverness*); ऋजोर्भावः ऋजिमा, ऋजुत्वम्, ऋजुता (*straightness, uprightness, sincerity*)।

१२४। "ऋतो रः पृथ्वादेः" (३)। इमनि प्रत्यय होनेसे पृथु, मृदु, दृढ़, कृश, भृश, परिवृढ़ इन सब शब्दोंके ऋ-के स्थानमें र होता है (२)। यथा, पृथोर्भावः प्रथिमा पृथुत्वम्, पृथुता (*largeness*); मृदोर्भावः म्रदिमा, मृदुत्वम्, मृदुता (*softness*); दृढ़स्य भावः द्रढ़िमा, दृढ़त्वम्, दृढ़ता (*firm-*

(पा ५।१।१२३)। (१) टेः (पा ६।४।१५५)। (२) इष्ठ तथा ईयसुके स्थानमें भी इस सूत्रका कार्य्य होता है। (३) र ऋतो हलादेर्लघोः (पा ६।४।१६१)।

ness, hardness); कृशस्य भावः क्रशिमा, कृशत्वम्, कृशता (*thinness leanness*); भृशस्य भावः भ्रशिमा, भृशत्वम्, भृशता (*vehemence*); परिवृढ़स्य भावः परिव्रढ़िमा, परिवृढ़त्वम्, परिवृढ़ता (*superiority*)।

१२५। "प्रिय-महतोः प्र-महौ" (१)। इमनि प्रत्यय होनेसे प्रियके स्थानमें प्र और महत् के स्थानमें मह होता है (२)। यथा, प्रियस्य भावः प्रेमा, प्रियत्वम्, प्रियता (*affection, love*); महतो भावः महिमा, महत्वम्, महत्ता (*greatness*)।

१२६। "गुरु ह्रस्व-दीर्घाणां गर-ह्रस द्राघाः" (३)। इमनि प्रत्यय होनेसे गुरु-शब्दके स्थानमें गर, ह्रस्व शब्दके स्थानमें ह्रस और दीर्घ-शब्दके स्थानमें द्राघ होता है (२)। यथा, गुरोर्भावः गरिमा, गुरुत्वम्, गुरुता (*greatness, respectability*); ह्रस्वस्य भावः ह्रसिमा, ह्रस्वत्वम् ह्रस्वता (*smallness, shortness*); दीर्घस्य भावः द्राघिमा, दीर्घत्वम्, दीर्घता (*length*)।

१२७। "भूमा" (४)। बहु-शब्दके उत्तर इमनि होनेसे भूमन् शब्द निपातनसे सिद्ध होता है। बहोर्भावः भूमा (*a great quantity, much, a large number, wealth*)।

---

(१) प्रियस्थिरस्फिरोरुबहुलगुरुवृद्धतृप्रदीर्घवृन्दारकाणां प्रस्थस्फवर्बंहिगर्वर्षित्रब्द्राघवृन्दाः (पा ६।४।१५७)। (२) इष्ठ तथा ईयसुके स्थानमें भी इस सूत्रका कार्य्य होता है। (३) प्रियस्थिर इत्यादि (पा ६।४।१५७); स्थूलदूरयुवह्रस्वक्षिप्रक्षुद्राणां यणादिपरं पूर्व्वस्य च गुणः (पा ६।४।१५६)। (४) बहोर्लोपो भू च बहोः (पा ६।४।१५८)। बहु + इमनि = भूमा; बहु + इष्ठ = भूयिष्ठः; बहु + ईयसु = भूयान्।

१२८। "औपम्ये वतिच्" (१)। सादृश्य बोध होनेसे प्रातिपदिकोंके उत्तर वतिच् होता है; इ च् इत्, वत् रहता है। यथा, चन्द्र इव मुखं चन्द्रवन्मुखम्, हिममिव शीतलम् हिमवत् शीतलम्, समुद्र इव गम्भीरः समुद्रवद् गम्भीरः, पर्व्वत इव उन्नतः पर्व्वतवदुन्नतः, ब्राह्मण इव अधीते ब्राह्मणवदधीते, क्षत्रिय इव युध्यते क्षत्रियवद्युध्यते, पितरमिव पूजयति पितृवत्पूजयत्युपाध्यायम्, पुत्त्रमिव स्निह्यति पुत्त्रवत् स्निह्यति शिष्यम्, गृहे इव वसति गृहवद्वसति वने, शय्यायामिव शेते शय्यावत् शेते भूतले, देवदत्तस्येव भवनम् देवदत्तवद्भवनं यज्ञदत्तस्य, रामस्येव पितृभक्तिः रामवत् पितृभक्तिर्भरतस्य, राजेव राजवत् आत्मेव आत्मवत् (*like one's own self*)।

१२९। "तेन वित्तश्चुञ्चुप्चणपौ" (२)। 'तेन वित्तः' इस अर्थमें प्रातिपदिकके उत्तर चुञ्चु और चण होते हैं। यथा, अर्थेन वित्तः अर्थचुञ्चुः, अर्थचणः (*famous for wealth*); विद्यया वित्तः विद्याचुञ्चुः, विद्याचणः (*famous for learning*); ज्ञानेन वित्तः ज्ञानचुञ्चुः, ज्ञानचणः (*famous for knowledge*); मायया वित्तः मायाचुञ्चुः मायाचणः; अस्त्रेण वित्तः अस्त्रचुञ्चुः, अस्त्रचणः; कर्म्मणा वित्तः कर्म्मचुञ्चुः, कर्म्मचणः (*diligent*)।

१३०। "तदस्यास्मिन् वा संजातं तारकादिभ्य इतः" (३)।

(१) तेन तुल्यं क्रिया चेद्वतिः (पा ५।१।११५)। (२) तेन वित्तश्चुञ्चुप्चणपौ (पा ५।२।२६)। (३) तदस्य सञ्जातं तारकादिभ्य इतच् (पा ५।२।३६)।

'तत् अस्य संजातम्', 'तत् अस्मिन् संजातम्' इन दोनों अर्थोंमें प्रातिपदिकके उत्तर इत होता है। यथा, तारका अस्मिन् संजाताः तारकितं (*starry, studded with stars*) नभः, पल्लवा अस्य संजाताः पल्लवितस्तरुः (*a tree having new sprouts*), फलानि अस्य संजातानि फलितो वृक्षः, पुष्पाण्यस्याः संजातानि पुष्पिता लता, तरङ्गा अस्याः संजाताः तरङ्गिता नदी, उत्कण्ठा अस्मिन् संजाता उत्कण्ठितं (*anxious*) मनः, अन्धकारमस्मिन् संजातम् अन्धकारितं जगत्, कलङ्कोऽस्य संजातः कलङ्कितश्चन्द्रः, कर्द्दमोऽस्मिन् संजातः कर्द्दमितः (*muddy*) पन्थाः, पुलकान्यस्मिन् संजातानि पुलकितं शरीरम् (*the body with hairs standing erect*), अङ्कुरमस्य संजातम् अङ्कुरितं धान्यम्, व्याधिरस्य संजातः व्याधितो मनुष्यः। ऐसे—मञ्जरी (*flower-stalk*) मञ्जरितः, कुड्मलः (*opening bud*) कुड्मलितः, स्तवकः (*bunch*) स्तवकितः, किसलयः किसलयितः, मुकुलः (*opening bud*) मुकुलितः, कुवलयं कुवलयितः, कोरकः (*bud, unblown flower*) कोरकितः, निद्रा निद्रितः, मुद्रा मुद्रितः, बुभुक्षा (*desire to eat, hunger*) बुभुक्षितः, पिपासा पिपासितः, सुखं सुखितः, दुःखं दुःखितः, व्रणं व्रणितः, तिलकं तिलकितः, गर्व्वं गर्व्वितः, हर्षं हर्षितः, क्षुध् क्षुधा क्षुधितः, सीमन्तः सीमन्तितः, ज्वरः ज्वरितः, रोगः रोगितः, रोमाञ्चः रोमाञ्चितः, पण्डा पण्डितः, कज्ज्वलः

(*collyrium*) कज्ज्वलितः, तृष् तृषा तृषितः, कल्लोलः (*surge, billow, pleasure*) कल्लोलितः, शैवलः (*water plant*) शैवलितः, कन्दलः (*censure*) कन्दलितः, विम्बः विम्बितः, प्रतिविम्बः (*shadow*) प्रतिविम्बितः, मूर्च्छा (*swoon*) मूर्च्छितः, दीक्षा दीक्षितः।

१३१। "प्रमाणे मात्र-दघ्न-द्वयसटः" (१)। परिमाण अर्थमें प्रातिपदिकके उत्तर मात्रट्, दघ्नट् और द्वयसट् प्रत्यय होते हैं; ट् इत्, मात्र, दघ्न, द्वयस रहते हैं। यथा, हस्तः प्रमाणमस्य हस्तमात्रम्, हस्तदघ्नम्, हस्तद्वयसम्; जानुः प्रमाणमस्य, जानुमात्रम्, जानुदघ्नम्, जानुद्वयसम्; ऊरुः प्रमाणमस्य ऊरुमात्रम्, ऊरुदघ्नम्, ऊरुद्वयसम्; वितस्तिः प्रमाणमस्य वितस्तिमात्रम्, वितस्तिदघ्नम्, वितस्तिद्वयसम्; तालः प्रमाणमस्य तालमात्रम्, तालदघ्नम्, तालद्वयसम्; गजः प्रमाणमस्य गजमात्रम्, गजदघ्नम्, गजद्वयसम्।

१३२। "यत्तदेतेभ्यः परिमाणे वतुप्" (२)। परिमाण अर्थमें यद्, तद्, एतद् इन तीनों प्रातिपदिकोंके उत्तर वतुप् होता है; उ प् इत्, वत् रहता है।

१३३। "आ दः" (३)। वतुप् होनेपर यद्, तद्, एतद् इनके द्के स्थानमें आ होता है। यथा, यत् परिमाणमस्य यावान् (*as much, as great, as large*), तत् परिमाण-

---

(१) प्रमाणे द्वयसज्-दघ्नञ्-मात्रचः (पा ५।२।३७)। (२) पा ५।२।३९।
(३) आ सर्व्वनाम्नः (पा ६।३।९१)।

मस्य तावान् (*so much, so great, so large*), एतत् परिमाणमस्य एतावान् (*this much, so much*)।

१३४। "कियदियतौ" (१)। किम् और इदम् शब्दोंके उत्तर वतुप् होनेपर निपातनसे किम्के स्थानमें कियत् और इदम्के स्थानमें इयत् होता है। यथा, किं परिमाणमस्य कियान् (*how much*), इदं परिमाणमस्य इयान् (*so much*)।

१३५। "किमः संख्यापरिमाणे डतिः" (२)। संख्या-परिमाण बोध होनेसे किम् शब्दके उत्तर डति होता है; ड् इत्, अति रहता है। यथा, का संख्या परिमाणमेषां कति (*how much*)। कतिशब्द बहुवचनान्त।

१३६। "अवयवे तयट् संख्यायाः" (३)। अवयव अर्थमें संख्यावाचक प्रातिपदिकके उत्तर तयट् होता है; ट् इत्, तय रहता है। यथा, चत्वारोऽवयवा अस्य चतुष्टयम् (*four-fold, four*), पञ्च अवयवा अस्य पञ्चतयम्, शतमवयवा अस्य शततयम् (*hundred-fold*), सहस्रमवयवा अस्य सहस्रतयम्।

१३७। "द्वयट् वा द्वित्रिभ्याम्" (४)। अवयव अर्थमें द्वि, त्रि इन दोनों प्रातिपदिकोंके उत्तर विकल्पसे डयट् होता है; ड् ट् इत्, अय रहता है। यथा, द्वौ अवयवौ अस्य द्वयं, द्वितयम्; त्रयोऽवयवा अस्य त्रय, त्रितयम् (*three-fold*)।

---

(१) किमिदम्भ्यां वा घः (पा ५।२।४०)। (२) किमः संख्यापरिमाणे डति च (पा ५।२।४१); चाद्वतुप्—कियन्तः। (३) संख्याया अवयवे तयप् (पा ५।२।४२)। (४) द्वित्रिभ्यां तयस्यायज् वा (पा ५।२।४३)।

१३८। "उभादु यः" (१)। अवयव अर्थमें उभ इस प्रातिपदिकके उत्तर य होता है। यथा, उभौ अवयवौ अस्य उभयम् (*both*)।

१३९। "तदस्मिन्नधिकमिति दशान्ताड्डः" (२)। 'तत् अस्मिन् अधिकम्' इस अर्थमें दशन्-भागान्त प्रातिपदिकके उत्तर ड होता है; ड् इत्, अ रहता है। यथा, एकादश अधिका अस्मिन् एकादशं शतम्, द्वादशं शतम्, त्रयोदशं शतम्, चतुर्दशं शतम्।

१४०। "शदन्त-विंशतेश्च" (३)। 'तत् अस्मिन् अधिकम्' इस अर्थमें शत् भागान्त तथा विंशति शब्दके उत्तर ड होता है। यथा, त्रिंशत् अधिका अस्मिन् त्रिंशं शतम्, चत्वारिंशं शतम्, पञ्चाशं शतम्, एकत्रिंशं शतम्, चतुश्चत्वारिंशं शतम्, पञ्चपञ्चाशं शतम्, विंशतिरधिका अस्मिन् विंशं शतम्, एकविंशं शतम्, द्वाविंशं शतम्।

१४१। "संख्यायाः पूरणे डट्" (४)। पूरण अर्थमें संख्यावाचक प्रातिपदिकके उत्तर डट् होता है; ड् ट् इत्, अ रहता है। यथा, एकादशानां पूरणः एकादशः (*eleventh*)। ऐसे—द्वादशः, त्रयोदशः, चतुर्दशः, पञ्चदशः, षोड़शः, सप्तदशः, अष्टादशः (*eighteenth*)।

---

(१) उभादुदात्तो नित्यम् (पा ५।२।४४); उभशब्दात्तयपोऽयच् स्यात्, स चाद्युदात्तः। उभशब्दके उत्तर तयप् प्रत्ययके स्थानमें उदात्त अयच् आदेश नित्य होता है। (२) पा ५।२।४५। (३) पा ५।२।४६। (४) तस्य पूरणे डट् (पा ५।२।४८)।

१४२। नान्तादसंख्यादेर्मट्" (१)। पूरण अर्थमें न्-कारान्त संख्यावाचक प्रातिपदिकके उत्तर मट् होता है, ट् इत्, म रहता है। यथा, पञ्चानां पूरणः पञ्चमः (*fifth*), सप्तानां पूरणः सप्तमः, अष्टानां पूरणः अष्टमः, नवानां पूरणः नवमः, दशानां पूरणः दशमः। अन्य संख्यावाचक शब्द पूर्व्वमें रहनेसे नहीं होता। यथा, एकादशानां पूरणः एकादशः। ऐसे — द्वादशः, त्रयोदशः।

१४३। "थट् चतुर-षष्-कतिभ्यः" (२)। पूरण अर्थमें चतुर्, षष्, कति इन तीन प्रातिपदिकोंके उत्तर थट् होता है; ट् इत्, थ रहता है। यथा, चतुर्णां पूरणः चतुर्थः षण्णां पूरणः षष्ठः, कतीनां पूरणः कतिथः (३)।

१४४। "द्वेस्तीयः" (४)। पूरण अर्थमें द्वि-शब्दके उत्तर तीय होता है। यथा, द्वयोः पूरणः द्वितीयः (*second*)।

१४५। "तृतीय-तुर्य्य-तुरीयाः" (५)। पूरण अर्थमें तृतीय, तुर्य्य, तुरीय ये तीन शब्द निपातनसे सिद्ध होते हैं। यथा, त्रयाणां पूरणः तृतीयः; चतुर्णां पूरणः तुर्य्यः, तुरीयः (*fourth*)।

---

(१) पा ५।२।४९। (२) षट्-कति-कतिपय-चतुरां थुक् (पा ५।२।५१)। (३) कतिपय शब्दके उत्तर भी होता है। यथा, कतिपयानां पूरणः कतिपयथः। कतिपयशब्दस्यासंख्यात्वेऽप्यतएव ज्ञापकाड् डट्। कतिपय शब्द संख्यावाचक नहीं है, तोभी इसके उत्तर डट् होता है और डट् होनेके निमित्त ही इसके उत्तर थुक् होता है। (४) पा ५।२।५४। (५) तेः सम्प्रसारणं च (पा ५।२।५५)।

१४६। "विंशत्यादेस्तमट् वा" (१)। पूरण अर्थमें विंशति आदि संख्यावाचक प्रातिपदिकोंके उत्तर विकल्पसे तमट् होता है; ट् इत् तम रहता है; पक्षमें डट् होता है। यथा, विंशतेः पूरणः विंशतितमः, विंशः (*twentieth*)। ऐसे—एकविंशतितमः, एकविंशः (*twenty-first*); द्वाविंशतितमः, द्वाविंशः (*twenty second*); त्रयोविंशतितमः, त्रयोविंशः (*twenty-third*); त्रिंशत्तमः, त्रिंशः (*thirtieth*); चत्वारिंशत्तमः चत्वारिंशः (*fortieth*); पञ्चाशत्तमः, पञ्चाशः (*fiftieth*)।

१४७। "नित्य शतादेः" (२)। शत आदि प्रातिपदिकोंके उत्तर नित्य तमट् होता है। यथा, शतस्य पूरणः शततमः (*hundredth*), सहस्रस्य पूरणः सहस्रतमः, अयुतस्य पूरणः अयुततमः (३)।

१४८। "षष्ठ्यादेश्चासंख्यादेः" (४)। षष्ठि आदि संख्यावाचक प्रातिपदिकोंके उत्तर नित्य तमट् होता है। यथा, षष्टेः पूरणः षष्टितमः। ऐसे—सप्ततितमः, अशीतितमः, नवतितमः। अन्य संख्यावाचक शब्द पूर्व्वमें रहनेसे नहीं होता; तब १४६ सूत्रके अनुसार कार्य्य होता है। यथा, एकषष्टेः पूरणः एकषष्टितमः, एकषष्टः; द्विषष्टितमः, द्विषष्टः।

---

(१) विंशत्यादिभ्यस्तमडन्यतरस्याम् (पा ५।२।५६)। (२) नित्यं शतादिमासार्द्धमाससंवत्सराच्च (पा ५।२।५७)। (३) मास, अर्द्धमास, संवत्सर इन तीनोंके उत्तर भी होता है। यथा, मासस्य पूरणः मासतमः, अर्द्धमासस्य पूरणः अर्द्धमासतमः, संवत्सरस्य पूरणः संवत्सरतमः। (४) पा ५।२।५८।

१४९। "बहु-गण पूग संघेभ्यस्तिथक्" (१)। पूरण अर्थमें बहु, गण, पूग, संघ इन कईएक प्रातिपदिकोंके उत्तर तिथक् होता है; क् इत्, तिथ रहता है। यथा, बहूनां पूरणः बहुतिथः, गणानां पूरणः गणतिथः, पूगानां पूरणः पूगतिथः, संघानां पूरणः संघतिथः।

१५०। "वत्वन्तादिथक" (२)। पूरण अर्थमें वतु-प्रत्ययान्त प्रातिपदिकके उत्तर इथक् होता है; क् इत्, इथ रहता है। यथा, यावतां पूरणः यावतिथः (*what is as far as*)। ऐसे—तावतिथः, एतावतिथः, कियतिथः, इयतिथः।

१५१। "तदस्यास्मिन् वास्ति मतुप्" (३)। 'तत् अस्य अस्ति', 'तत् अस्मिन् अस्ति' इन दोनों अर्थोंमें प्रातिपदिकके उत्तर मतुप् होता है; उ प् इत्, मत् रहता है। मतिरस्यास्ति मतिमान् (*intelligent, sensible*), बुद्धिरस्यास्ति बुद्धिमान् (*wise*), धीरस्यास्ति धीमान् (*wise, intelligent*), श्रीरस्यास्ति श्रीमान् (*beautifnl, prosperous*), अंशवोऽस्य सन्ति अंशुमान् (*luminous, the sun*), पिता अस्यास्ति पितृमान्, धनुरस्यास्ति धनुष्मान् (*having a bow, archer*), वपुरस्यास्ति वपुष्मान् (*corporeal, having body*); अग्निरस्मिन्नस्ति अग्निमान् (*having fire*), वायुरस्मिन्नस्ति वायुमान् (*haviug air,*

(१) बहुपूगगणसङ्घस्य तिथुक (पा ५।२।५२)। (२) वतोरिथुक् (पा ५।२।५३)। (३) तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप् (पा ५।२।९४)।

airy). नद्योऽस्मिन् सन्ति नदीमान् देशः (*a country abounding in rivers*). गावोऽस्यां सन्ति गोमती शाला (*a house containing cows or cattle*)।

१५२। "अवर्णान्तान्मो वः" (१)। अवर्णान्त प्रातिपदिकके उत्तर विहित मतुप्के म-के स्थानमें व होता है। यथा, ज्ञानमस्यास्ति ज्ञानवान् (*wise*), धनमस्यास्ति धनवान् (*rich, wealthy*), बलमस्यास्ति बलवान् (*strong*), विद्या अस्यास्ति विद्यावान् (*learned*), दया अस्यास्ति दयावान् (*kind, merciful*), क्षमा अस्यास्ति क्षमावान् (*patient, enduring*)।

१५३। "अङ-ञ-ण-न स्पर्शान्तात्" (२)। जिन प्रातिपदिकोंके अन्तमें ङ, ञ, ण, न भिन्न स्पर्शवर्ण रहते हैं उनके उत्तर विहित मतुप्के मके स्थानमें व होता है। यथा, तड़ित् अस्मिन्नस्ति तडित्वान् (*cloud*), विद्युत् अस्मिन्नस्ति विद्युत्वान् (*cloud*)। (३)

---

(१) मादुपधायाश्च मतोर्वोऽयवादिभ्यः (पा ८।२।९)। यवादिको छोड़कर शेष शब्दोंका अन्तावयव अथवा उपधामें मकार अथवा अवर्ण हो तो उनसे परे मतुप्के मके स्थानमें व होता है। यवादिमें—यव, दल्मि, ऊर्म्मि, भूमि, कृमि, क्रुञ्चा, वशा (सा), द्राचा, ध्राचा, ध्रजि (व्रजि), ध्वजि, निजि, सिजि, सञ्जि, हरित्, ककुत्, मरुत्, गरुत्, इक्षु, द्रु, मधु ये सब शब्द हैं। (२) झयः (पा ८।२।१०); संज्ञायाम् (पा ८।२।११)। (३) *other examples* :—सम्पदस्यास्ति सम्पद्वान्, दृषदः सन्ति अस्यां दृषद्वती (*a river of this name*), किमस्यास्ति किंवान्, इदमस्यास्ति इदंवान्, शम् अस्यास्ति शंवान् (*happy, prosperous, healthy*)।

१५४। "अवर्णोपधात्" (१)। जिन प्रातिपदिकोंके उपधास्थलमें अ-वर्ण रहता है उनके उत्तर विहित मतुप्‌के म-के स्थानमें व होता है। यथा आत्मा अस्यास्ति आत्मवान् (*considerate, self-possessed*) द्वाः अस्यास्ति द्वार्वान् (*a door-keeper*), भासोऽस्य सन्ति भास्वान् (*bright, luminous*)।

१५५। "मकारोपधाच्च" (१)। जिन प्रातिपदिकोंके उपधास्थलमें म रहता है उनके उत्तर विहित मतुप्‌के म-के स्थानमें व होता है। यथा, लक्ष्मीरस्यास्ति लक्ष्मीवान् (*possessed of good fortune, fortunate*). शमी अस्मिन्नस्ति शमीवान्, दाड़िमी अस्यास्ति दाड़िमीवान्।

१५६। "न यवादेः" (१)। यव आदि प्रातिपदिकोंके उत्तर विहित मतुप्‌के म के स्थानमें व नहीं होता। यथा, यवमान्, कुञ्चामान्, वसा(शा)मान्, द्राक्षामान्, गरुत्मान्, हरित्मान्, ककुद्मान्, ऊर्म्मिमान्, भूमिमान्, कृमिमान्।

१५७। "उदन्वदादयः संज्ञायाम्" (२)। मतुप्-प्रत्यय होनेपर संज्ञा बोध होनेसे उदन्वत् आदि शब्द निपातनसे सिद्ध होते हैं। यथा, उदकमस्मिन्नस्ति उदन्वान् समुद्रः (*ocean*) ऋषिश्च, अन्यत्र उदकवान्; राजा अस्मिन्नस्ति राजन्वान्

---

(१) मादुपधायाश्च मतोर्वोऽयवादिभ्यः (पा ८।२।९)। पृष्ठ १२०, पाद-टीप्पनी (१) देखो। (२) उदन्वानुदधौ च (पा ८।२।१३)। राजन्वान् सौराज्ये (पा ८।२।१४)। आसन्दीवदष्ठीवच्चक्रीवत्कक्षीवद्रुमण्वच्चर्म्मण्वती (पा ८।२।१२)।

शोभनराजयुक्तो देशः, अन्यत्र राजवान्; चर्म्म अस्यामस्ति चर्म्मण्वती नाम नदी. अन्यत्र चर्म्मवती; अस्थि अस्मिन्नस्ति अष्ठीवान् जानूरुसन्धिः, अन्यत्र अस्थिमान्; चक्रमस्यास्ति चक्रीवान् नाम राजा, अन्यत्र चक्रवान्; कक्ष्या अस्यास्ति कक्षीवान् नाम ऋषिः, अन्यत्र कक्ष्यावान्; लवणमस्मिन्नस्ति रुमण्वान् नाम पर्व्वतः, अन्यत्र लवणवान्।

१५८। "कुमुद-नड़-वेतस-महिषेभ्यो ड्वतुप्" (१)। कुमुद, नड़, वेतस, महिष इन चार प्रातिपदिकोंके उत्तर ड्वतुप् होता है; ड्, उ, प् इत्, वत् रहता है। यथा, कुमुदान्यस्मिन् सन्ति कुमुद्वान्, नड़ान्यस्मिन् सन्ति नड्वान्, वेतसान्यस्मिन् सन्ति वेतस्वान्, (*overgrown with cane plants*) महिषा अस्मिन् सन्ति महिष्वान्।

१५९। "अस्-माया-मेधा-स्रजो विनिर्वा" (२)। अस्-भागान्त प्रातिपदिकोंके उत्तर तथा माया, मेधा, और स्रज् इन तीनों प्रातिपदिकोंके उत्तर विकल्पसे विनि होता है; इ इत्, विन् रहता है; पक्षमें मतुप् होता है। यथा, यशोऽस्यास्ति यशस्वी, यशस्वान् (*renowned, celebrated, famous*); तेजोऽस्यास्ति तेजस्वी, तेजस्वान् (*vigorous, strong*); पयोऽस्या अस्ति पयस्विनी, पयस्वती धेनुः (*a milch cow*); माया अस्यास्ति मायावी, मायावान् (*gifted with charming or magical power*); मेधा अस्यास्ति मेधावी,

(१) कुमुदनड़वेतसेभ्यो ड्मतुप् (पा ४।२।८७)। महिषाच्चेति वक्तव्यम् (वा १७६१)। (२) अस्-माया-मेधा-स्रजो विनिः (पा ५।२।१२१)।

मेधावान् (*intelligent*); स्रक् अस्यास्ति स्रग्वी, स्रग्वान् (*bearing a chaplet or a garland or a wreath of flowers*) ।

१६० । "नित्यं तपसः" (१) । तपस्-शब्दके उत्तर नित्य विनि होता है । यथा, तपोऽस्यास्ति तपस्वी (*an ascetic practising penance*), तपस्विनी (*a female ascetic*) ।

१६१ । "इनिर्वा नैकस्वरादवर्णात्" (२) । एकाधिकस्वर-विशिष्ट अवर्णान्त प्रातिपदिकके उत्तर विकल्पसे इनि होता है ; इ इत्, इन्, रहता है ; पक्षमें यथासम्भव मतुप् और विनि होते हैं । यथा, ज्ञानमस्यास्ति ज्ञानी, ज्ञानवान् (*wise*) ; बल-मस्यास्ति बली, बलवान् (*strong*) ; धनमस्यास्ति धनी, धनवान् (*rich, wealthy*) ; शिखा अस्यास्ति शिखी, शिखावान् (*fire, peacock*) ; चूड़ा अस्यास्ति चूड़ी, चूड़ावान् ; माया अस्यास्ति मायी, मायावी ; साहसम् अस्यास्ति साहसी, साहसवान् (*brave*) ; विवेकोऽस्यास्ति विवेकी, विवेकवान् (*conscientious*) ; उत्साहः अस्यास्ति उत्साही, उत्साहवान् (*active, energetic*) ।

१६२ । "नित्यं सुखादेः" (३) । सुख आदि प्रातिपदिकोंके उत्तर नित्य इनि होता है । यथा, सुखम् अस्यास्ति सुखी,

---

(१) तपःसहस्राभ्यां विनीनी (पा ५।१।१०२) । सहस्रमस्यास्ति सहस्री (*having a thousand*) । (२) अत इनिठनौ (पा ५।२।११५) ; एकाक्षरात् कृतो जातेः सप्तम्यां च न तौ स्मृतौ—काशिका । (३) सुखादिभ्यश्च (पा ५।२।१३१) ।

दुःखमस्यास्ति दुःखी, प्रणयोऽस्यास्ति प्रणयी (*affectionate, beloved*), कृच्छ्रमस्यास्ति कृच्छ्री (*suffering trouble*)।

१६३। "हस्तकराभ्यां जातौ" (१)। 'जाति' बोध होनेपर हस्त और कर इन दोनों प्रातिपदिकोंके उत्तर नित्य इनि होता है। यथा हस्तोऽस्यास्ति हस्ती गजः, करोऽस्यास्ति करी गजः। अन्यत्र हस्तोऽस्यास्ति हस्तवान् पुरुषः।

१६४। "वर्णाद् ब्रह्मचारिणि" (२)। 'ब्रह्मचारी' इस अर्थमें वर्णशब्दके उत्तर नित्य इनि होता है। यथा, वर्णः अस्यास्ति वर्णी ब्रह्मचारी। अन्यत्र वर्णवान्।

१६५। "पुष्करादिभ्यो देशे" (३)। 'स्थान' बोध होनेसे पुष्कर आदि प्रातिपदिकोंके उत्तर नित्य इनि होता है। यथा, पुष्कराण्यस्यां सन्ति पुष्करिणी दीर्घिका (*a large tank or pond*), पद्मान्यस्यां सन्ति पद्मिनी (*a place abounding in lotuses, a multitude of lotuses*)। ऐसे—उत्पलिनी, पङ्कजिनी, सरोजिनी, सरोरुहिणी, अरविन्दिनी, अम्भोजिनी, अब्जिनी, कमलिनी, कुमुदिनी, कैरविणी, बिसिनी, मृणालिनी, तमालिनी, नलिनी, तरङ्गिणी (*river*), कल्लोलिनी, तटिनी, प्रवाहिणी।

१६६। "अर्थाद् याचके" (४)। 'याचक' बोध होनेसे

---

(१) हस्ताज्जातौ (पा ५।२।१३३)। (२) पा ५।२।१३४। (३) पा ५।२।१३५। (४) अर्थाच्चासन्निहिते (वा ३२२७)।

अर्थ इस प्रातिपदिकके उत्तर नित्य इनि होता है। यथा, अर्थोऽस्यास्ति अर्थी याचकः (*a beggar*) ; अन्यत्र—अर्थवान्।

१६७। "अर्थान्तेभ्यश्च (१)। 'अर्थान्त' (अर्थ अन्तमें है ऐसे) प्रातिपदिकोंके उत्तर नित्य इनि होता है। यथा, विद्या-रूपोऽर्थः प्रयोजनमस्यास्ति विद्यार्थी (*a pupil*)। ऐसे—धनार्थी, धान्यार्थी, हिरण्यार्थी, गुरुदक्षिणार्थी।

१६८। "मांसादेर्लो विभाषा" (२)। 'मांस' आदि प्रातिपदिकोंके उत्तर विकल्पसे ल होता है ; पक्षमें मतुप्। यथा, मांसमस्यास्ति मांसलः (*fleshy, plump, lusty*), श्रीरस्यास्ति श्रीलः, पक्ष्म अस्यास्ति पक्ष्मलः, स्नेहोऽस्यास्ति स्नेहलः, शीतो गुणोऽस्यास्ति शीतलः, श्यामो गुणोऽस्यास्ति श्यामलः, पिङ्गो गुणोऽस्यास्ति पिङ्गलः। ऐसे—पित्तलः, पुष्कलः, पृथुलः, मृदुलः, मञ्जुलः, मण्डलः, चटुलः, कपिलः, ग्रन्थिलः, कुशलः, पांशुलः, श्लेष्मलः, पेशलः, कुण्डलः, अंशलः, वत्सलः,। पक्षमें—मांसवान् इत्यादि।

१६९। "फेनादिलश्च" (३)। 'फेन' इस प्रातिपदिकके उत्तर विकल्पसे ल और इल होते हैं। यथा, फेनोऽस्मिन्नस्ति फेनलः, फेनिलः (*frothy, foamy*)। पक्षमें—फेनवान्।

१७०। "लोमादेः शः" (४)। 'लोमन्' आदि प्रातिपदिकोंके

---

(१) तदन्ताच्च (वा ३२२८)। (२) सिध्मादिभ्यश्च (पा ५।२।९७)। (३) फेनादिलच्च (पा ५।२।९९)। (४) लोमादि-पामादि-पिच्छादिभ्यः शनेलचः (पा ५।२।१०१)।

उत्तर श होता है। यथा, लोमान्यस्य सन्ति लोमशः (*hairy, a monkey*)। ऐसे—रोमशः (*hairy*), गिरिशः (*Siva*), कर्कशः (*hard, rough*), कपिशः (*tawny*)।

१७१। "पिच्छा-पङ्काभ्यामिलः" (१)। पिच्छा तथा पङ्क इन दोनों प्रातिपदिकोंके उत्तर इल होता है। यथा, पिच्छा अस्यास्ति पिच्छिलः (*slippery*); ऐसे—पङ्किलः (*muddy*)।

१७२। "दन्तादुरः (२)। 'दन्त' इस प्रातिपदिकके उत्तर उर होता है। यथा, उन्नता दन्ताः सन्ति दन्तुरः (*having long or projecting teeth*)।

१७३। "ऊष-सुषि-मुष्क-मधुभ्यो रः" (३)। ऊष, सुषि, मुष्क, मधु इन चार प्रातिपदिकोंके उत्तर र होता है। यथा, उषरः (*sterile*) सुषिरः (*full of holes*), मुष्करः (*having large testicles*), मधुरः (*sweet*)।

१७४। "मुखादेश्च" (४)। 'मुख' आदि प्रातिपदिकोंके उत्तर र होता है। यथा, मुखमस्यास्ति मुखरः (*talkative, garrulous*); ऐसे - कुञ्जरः (*elephant*), नगरम्, पाण्डुरः (*pale*)।

१७५। "नड़शादाभ्यां ड्वलप्" (५)। नड़ और शाद इन दोनों प्रातिपदिकोंके उत्तर ड्वलप् होता है; ड् प् इत्, वल

---

(१) लोमादि-पामादि-पिच्छादिभ्यः शनेलचः (पा ५।२।१०१)। (२) दन्त उन्नत उरच् (पा ५।२।१०६)। (३) ऊष्मुषमुष्कमधो रः (पा ५।२।१०७)। (४) रप्रकरणे खमुखकुञ्जभ्य उपसंख्यानम् (वा ३१९८)। (५) नड़शादाड् ड्वलच् (पा ४।२।८८)।

रहता है। यथा, नड़ा अस्मिन् सन्ति नड्वलः (*abounding in reeds*), शादा अस्मिन् सन्ति शाद्वलः (*grassy, green*)।

१७६। "कृष्यादेर्वलः" (१)। 'कृषि' आदि प्रातिपदिकोंके उत्तर वल होता है।

१७७। "दीर्घोन्त्यः" (२)। वल प्रत्यय होनेसे अन्त्य स्वर दीर्घ होता है। यथा, कृषिरस्यास्ति कृषीवलः (*one who lives by husbandry, peasantry*)। ऐसे—परिषद्वलः (*a king*), पर्षद्वलः (*a spectator*), रजस्वला (*a woman during menstruation*), ऊर्ज्जस्वलः (*powerful*), दन्तावलो हस्ती (*an elephant*), शिखावलो (*crested*, hence, *a peacock*) मयूरः।

१७८। "केशादेर्वः संज्ञायाम्" (३)। 'संज्ञा' बोध होनेसे केश आदि प्रातिपदिकोंके उत्तर व होता है। यथा, केशाः सन्त्यस्य केशवः विष्णुः (*one who has beautiful hair — i. e. Vishnu*), मणिरस्यास्ति मणिवः नागविशेषः (*a kind of serpent*), अजगः अस्यास्ति अजगवं पिनाकः (शिवधनुः, *the bow of Siva*), गाण्डिरस्यास्ति गाण्डिवम् अर्ज्जुनस्य धनुः। इकार दीर्घ भी होता है—गाण्डीवम्।

१७९। "स्वादामिन्नैश्वर्य्ये" (४)। 'ऐश्वर्य्य' बोध होनेसे

---

(१) रजःकृष्यासुतिपरिषदो वलच् (पा ५।२।११२)। (२) वले (पा ६।३।११८)। (३) केशाद्वोऽन्यतरस्याम् (पा ५।२।१०९)। 'अन्येभ्योऽपि दृश्यते (वा ३२१०)। गाण्ड्यजगात् संज्ञायाम् (पा ५।२।११०)। (४) स्वामिन्नैश्वर्य्ये (पा ५।२।१२६)।

स्व इस प्रातिपदिकके उत्तर आमिन् होता है। यथा, स्वम् ऐश्वर्य्यम् अस्यास्ति स्वामी (*one who has proprietory rights, proprietor, owner*)।

१८०। "शीतोष्णाभ्यामालुरसहने"। 'असहन' अर्थमें शीत और उष्ण इन दोनों प्रातिपदिकोंके उत्तर 'आलु' होता है। यथा, शीतं न सहते शीतालुः (*unable to bear the cold, shrinking from cold*), उष्णं न सहते उष्णालुः (*unable to bear the heat, suffring from heat*)।

१८१। "वातातीसाराभ्यां रोगे किन्" (१)। रोग (*disease*) बोध होनेसे वात और अतीसार इन दोनों प्रातिपदिकोंके उत्तर 'किन्' होता है। यथा, वातोऽस्यास्ति वातकी (*rheumatic*), अतीसारोऽस्यास्ति अतीसारकी (*afflicted with dysentery*)।

१८२। "वल्यादेर्भः" (२)। 'वलि' आदि प्रातिपदिकोंके उत्तर भ होता है। यथा, वलयोऽस्मिन् सन्ति वलिभं (*shrivelled*) मध्यम्। ऐसे—तुन्दिभः (*having a protuberant belly*), वटिभः।

१८३। "अर्श-आदेरत्" (३)। अर्शस् आदि प्रातिपदिकोंके उत्तर अत् होता है; त् इत्, अ रहता है। यथा, अर्शांसि

(१) वातातीसाराभ्यां कुक् च (पा ५।२।१२९); "रोगेचायमिष्यते"। (२) तुन्दिवलिवटेर्भः (पा ५।२।१३९)। (३) अर्श आदिभ्योऽच् (पा ५।२।१२७)।

अस्य सन्ति अर्शसः (*affected with piles*), उरोऽस्यास्ति उरसः (*having a prominent breast*), पलितम् अस्यास्ति पलितः, जटा अस्य सन्ति जटः, अम्लो गुणोऽस्यास्ति अम्लः, अघमस्यास्ति अघः, लवणो रसोऽस्यास्ति लवणः।

१८४। "अहं-शुभमम्भ्यां युः" (१)। 'अहम्', 'शुभम्' इन दोनों प्रातिपदिकोंके उत्तर 'यु' होता है। यथा, अहम् अस्यास्ति अहयुः अहङ्कारवान् (*speaking or writing much of one's self, egotistic, proud*), शुभम् अस्यास्ति शुभंयुः शुभान्वितः (*lucky, fortunate*)।

१८५। "ज्योत्स्नादयः" (२)। ज्योत्स्ना आदि शब्द निपातनसे सिद्ध होते हैं। यथा, ज्योतिरस्या अस्ति ज्योत्स्ना (३), तमोऽस्या अस्ति तमिस्रा (४), शृङ्गमस्यास्ति शृङ्गिणः (५), मलमस्यास्ति मलिनः (६) मलीमसः (*dirty*), अर्णांसि अस्मिन् सन्ति अर्णवः समुद्रः।

१८६। "वाग्मिन्-वाचाल-वाचाटाः" (७)। वाग्मिन्, वाचाल, वाचाट निपातनसे सिद्ध होते हैं। यथा, वाचोऽस्य सन्ति वाग्मी (*eloquent speaker*) ; यः कुत्सितं बहु भाषते स वाचालः, वाचाटः (*talkative*)।

---

(१) अहंशुभमोर्युस् (पा ५।२।१४०)। (२) ज्योत्स्नातमिस्राशृङ्गिणोर्जस्विन्नूर्जस्वलगोमिन्मलिनमलीमसाः (पा ५।२।११४)। (३) ज्योतिष उपधालोपो नश्च प्रत्ययः। (४) तमस उपधाया इत्वं रश्च। (५) शृङ्गादिनच्। (६) मलशब्दादिनच्, ईमसश्च। (७) वाचो ग्मिनिः (पा ५।२।१२४); आलजाटचौ बहुभाषिणि (पा ५।२।१२५)।

१८७। "मूले जाहः कर्णादेः" (१)। 'मूल' (*root*) अर्थमें कर्ण आदि प्रातिपदिकोंके उत्तर 'जाह' होता है। यथा, कर्णस्य मूलं कर्णजाहम् (*the root of the ear*), अक्ष्णो मूलम् अक्षिजाहम्। ऐसे—भ्रूजाहम्, नखजाहम्, केशजाहम्, पादजाहम्, शृङ्गजाहम्, दन्तजाहम्।

१८८। "पक्षात्तिः" (२)। मूल अर्थमें पक्ष इस प्रातिपदिकके उत्तर 'ति' होता है। यथा, पक्षस्य मूलं पक्षतिः (*root of the wing*)।

१८९। "मातृपितृभ्यां डुलव्यौ भ्रातरि" (३)। 'भ्रातृ' अर्थमें मातृ इस प्रातिपदिकके उत्तर 'डुल' और पितृ इस प्रातिपदिकके उत्तर 'व्य' होता है। 'डुल'में से ड् इत्, उल रहता है। यथा, मातुर्भ्राता मातुलः (*mother's brother, maternal uncle*), पितुर्भ्राता पितृव्यः (*father's brother, paternal uncle*)।

१९०। "डामहः पित्रोः" (४)। पितृ और मातृ अर्थोंमें मातृ, पितृ इन दोनों प्रातिपदिकोंके उत्तर 'डामह' होता है; ड् इत्, आमह रहता है। यथा, मातुः पिता मातामहः (*mother's*

---

(१) तस्य पाकमूले पील्वादिकर्णादिभ्यः कुणब्जाहचौ (पा ५।२।२४)। पाक अर्थमें पीलु आदिके उत्तर कुणप् और मूल अर्थमें कर्णादिके उत्तर जाहच् होता है। पीलूनां पाकः पीलुकुणः। (२) पा ५।२।२५। (३) पितृव्यमातुलमातामहपितामहाः (पा ४।२।३६)। एते निपात्यन्ते। पितुर्भ्रातरि व्यत् मातुर्डुलच् (वा २७०८)। (४) मातृपितृभ्यां पितरि डामहच् (वा २७०९)।

father, maternal grand-father), पितुः पिता पितामहः (*father's father, paternal grand-father*), मातुर्माता मातामही (*mother's mother, maternal grand-mother*), पितुर्माता पितामही (*father's mother, paternal grand-mother*) ।

१६१ । "ठः कर्म्मणः कुशले" (१) । 'कुशल' अर्थमें कर्म्मन् इस प्रातिपदिकके उत्तर 'ठ' होता है । यथा, कर्म्मणि कुशलः कर्म्मठः (*active, diligent*) ।

१६२ । "पूर्व्वादिनिस्तृतीयार्थे" (२) । तृतीयाके अर्थमें पूर्व्व इस प्रातिपदिकके उत्तर इनि होता है ; इ इत् , इन् रहता है । यथा, पूर्व्वमनेन कृतं भुक्तं पीतं गतं वा पूर्व्वी, कृतं पूर्व्वमनेन कृतपूर्व्वी कटम् , भुक्तं पूर्व्वमनेन भुक्तपूर्व्वी ओदनम् , पीतं पूर्व्वमनेन पीतपूर्व्वी पयः, गतं पूर्व्वमनेन गतपूर्व्वी गृहम् ।

१६३ । "इष्टादिभ्यश्च" (३) । तृतीयाके अर्थमें इष्ट आदि प्रातिपदिकोंके उत्तर इनि होता है । यथा, इष्टमनेन इष्टी (*wishing*) यज्ञे, अधीतमनेन अधीती शास्त्रे, श्रुतमनेन श्रुती वेदे, गृहीतमनेन गृहीती उपदेशे, आम्नातमनेन आम्नाती इतिहासे, आसेवितमनेन आसेविती गुरौ, निराकृतमनेन निरा-

(१) कर्म्मणि घटोऽठच् (पा ५।२।३५) । 'कर्म्मणि घटते' इस अर्थमें भी कर्म्मठः होता है । (२) पूर्व्वादिनिः (पा ५।२।८६) । सपूर्व्वाच्च (पा ५।२।८७) । (३) पा ५।२।८८

कृती शत्रौ. उपकृतमनेन उपकृतो मित्र. अवकीर्णमनेन अवकीर्णौ (*violating the vow of continence*) व्रते।

१६४। 'अतिशायने तमबिष्ठनौ" (१)। बहुतोंमेंसे एकका उत्कर्ष बोध होनेपर प्रातिपदिकके उत्तर तमप् और इष्ठन् होते हैं; तमप्का प् इत्, तम रहता है; इष्ठन्का न् ईत्, इष्ठ रहता है। यथा, अयमेषामतिशयेन पटुः पटुतमः, पटिष्ठः (*ablest, cleverest*); अयमेषामतिशयेन लघुः लघुतमः, लघिष्ठः (*lightest*); अयमेषामतिशयेन गुरुः गुरुतमः, गरिष्ठः (*heaviest, most venerable*)। ऐसे—प्रियतमः, प्रेष्ठः (*dearest*); दीर्घतमः, द्राघिष्ठः (*longest*); दृढ़तमः, द्रढ़िष्ठः (*hardest, strongest*); मृदुतमः, म्रदिष्ठः (*mildest, softest*); कृशतमः, क्रशिष्ठः (*leanest, thinnest*)।

१६५। "द्वयोस्तरबीयसुनौ" (२)। दोमेंसे एकका उत्कर्ष बोध होनेपर प्रातिपदिकके उत्तर तरप् और ईयसुन् होते हैं; तरप्का प् इत्, तर रहता है; ईयसुन्का उ न् इत्, ईयस् रहता है। हथा, अयमनयोरतिशयेन पटुः पटुतरः, पटीयान् (*more clever*); अयमनयोरतिशयेन लघुः लघुतरः, लघीयान् (*lighter*)। ऐसे—गुरुतरः, गरीयान् (*heavier, more venerable*); प्रियतरः, प्रेयान् (*dearer*); दीर्घतरः, द्राघीयान् (*longer*); दृढ़तरः, द्रढ़ीयान् (*harder,*

---

(१) पां ५।३।५५। (२) द्विवचनविभज्योपपदे तरबीयसुनौ (पा ५।३।५७)।

stronger); मृदुतरः, म्रदीयान् (*milder, softer*); कृशतरः, क्रशीयान् (*leaner, thinner*)।

१९६। "श्र-ज्यौ प्रशस्यस्य" (१)। इष्ठन् और ईयसुन् प्रत्यय होनेपर प्रशस्य-शब्दके स्थानमें श्र और ज्य होते हैं। यथा, अयमेषामतिशयेन प्रशस्यः श्रेष्ठः, ज्येष्ठः (*best, eldest*); अयमनयोरतिशयेन प्रशस्यः श्रेयान् (*better*)।

१९७। "आ ज्यादीयसुनः" (२)। 'ज्य' इस आदेशके परवर्त्ती ईयसुन्के ई-के स्थानमें आ होता है। यथा, ज्यायान् (*elder*)।

१९८। "वर्ष-ज्यौ वृद्धस्य" (३)। इष्ठन् और ईयसुन् परे रहनेसे वृद्ध-शब्दके स्थानमें वर्ष और ज्य होते हैं। यथा, अयमेषामनयोर्वा अतिशयेन वृद्धः वर्षिष्ठः, वर्षीयान्; ज्येष्ठः, ज्यायान्।

१९९। "अन्तिक-वाढ़योर्नेद-साधौ" (४)। अन्तिक-शब्दके स्थानमें नेद और वाढ़-शब्दके स्थानमें साध होता है। यथा, नेदिष्ठः (*nearest, next*), नेदीयान् (*nearer*); साधिष्ठः (*heaviest*), साधीयान् (*heavier*)।

२००। "अल्पस्य कन् विभाषा" (५)। अल्प-शब्दके

---

(१) प्रशस्यस्य श्रः (पा ५।३।६०); ज्यच (पा ५।३।६१)। (२) ज्यादादीयसः (पा ६।४।१६०)। (३) वृद्धस्य च (पा ५।३।६२)। "वृद्धः स्यात् सप्ततेरूर्द्ध्वं वर्षीयान् नवतेः परम्"। (४) पा ५।३।६३। (५) युवाल्पयोः कनन्यतरस्याम् (पा ५।३।६४)।

स्थानमें विकल्पसे कन् होता है। यथा, कनिष्ठः, कनीयान्; अल्पिष्ठः (*least*), अल्पीयान् (*less*)।

२०१। "यूनः कन्-यवौ" (१)। युवन्-शब्दके स्थानमें कन् और यव् होते हैं। यथा, कनिष्ठः (*youngest*), कनीयान् (*younger*); यविष्ठः (*youngest*), यवीयान् (*younger*)।

२०२। "स्थूल-दूरयोः स्थव-दवौ" (१)। स्थूल-शब्दके स्थानमें स्थव और दूर-शब्दके स्थानमें दव होता है। यथा, स्थविष्ठः (*fattest*), स्थवीयान् (*fatter*); दविष्ठः (*remotest*), दवीयान् (*remoter*)।

२०३। "उरु-क्षुद्रयोर्वरक्षोदौ" (२)। उरु-शब्दके स्थानमें वर और क्षुद्र-शब्दके स्थानमें क्षोद् होता है। यथा, वरिष्ठः (*largest*), वरीयान् (*larger*); क्षोदिष्ठः (*smallest*), क्षोदीयान् (*smaller*)।

२०४। "क्षिप्र-बहुलयोः क्षेप-बंहौ" (२)। क्षिप्र-शब्दके स्थानमें क्षेप और बहुल-शब्दके स्थानमें बंह होता है। यथा, क्षेपिष्ठः (*quickest, swiftest*), क्षेपीयान् (*quicker, swifter*); बंहिष्ठः (*most*), बंहीयान् (*more*)।

२०५। "स्थिरस्य स्थः" (२)। स्थिर-शब्दके स्थानमें

---

(१) स्थूलदूरयुवह्रस्वक्षिप्रक्षुद्राणां यणादिपरं पूर्व्वस्य च गुणः (पा ६।४।१५६)। (२) प्रियस्थिरस्फिरोरुबहुलगुरुवृद्धतृप्रदीर्घवृन्दारकाणां प्रस्थस्फवर्बंहिगर्वर्षित्रब्द्राघिवृन्दाः (पा ६।४।१५७)।

स्थ होता है । यथा, स्थेष्ठः (*firmest*), स्थेयान् (*firmer*) ।

२०६ । "विन्मतुपोर्लुक्" (१) । इष्ठन् और ईयसुन् प्रत्यय परे रहनेसे विन् और मतुप् प्रत्ययोंका लोप होता है। यथा, अयमेषामतिशयेन मायावी मायिष्ठः, मायीयान् ; अयमेषामतिशयेन बलवान् बलिष्ठः, बलीयान् ।

२०७ । "भूयोभूयिष्ठौ" (२) । बहु-शब्दके उत्तर ईयसुन् होनेसे भूयस्, और इष्ठन् होनेसे भूयिष्ठ शब्द निपातनसे सिद्ध होते हैं। यथा, अयमनयोरतिशयेन बहुः भूयान् (*more*), अयमेषामतिशयेन बहुः भूयिष्ठः (*most*) ।

२०८ । "किंयत्तदां द्वयोरेकस्य निर्द्धारणे डतरः" (३) । दोमेंसे एकका निर्द्धारण बाध होनेपर किम्, यत्, तद् इन तीनों प्रातिपदिकोंके उत्तर डतर होता है, ड् इत्, अतर रहता है। यथा, अनयोः कतरो वैष्णवः, अनयोर्यतरो ब्राह्मणः ततर आगच्छतु ।

२०९ । "बहूनां डतमः" (४) । अनेकोंमेंसे एकका निर्द्धारण बोध होनेसे डतम होता है ; ड् इत्, अतम रहता है। यथा, एषां कतमः शैवः (*Among these who is a votary of Siva*) ? एषां यतमः क्षत्रियः ततमः प्रयातु (*Let him go who is a Kshatriya by caste among these men*) ।

---

(१) पा ५।३।६५। (२) बहोर्लोपो भू च बहोः (पा ६।४।१५८) ; इष्ठस्य यिट् च (पा ६।४।१५९)। (३) किंयत्तदो निर्द्धारणे द्वयोरेकस्य डतरच् (पा ५।३।९२)। (४) वा बहूनां जातिपरिप्रश्ने डतमच् (पा ५।३।९३)।

२१०। "एकान्याभ्याञ्च" (१)। एक और अन्य इन दोनों प्रातिपदिकोंके उत्तर डतर और डतम होते हैं। यथा, भवतोरेकतरः पठतु, भवतामेकतमः शृणोतु ; तयोरन्यतरो यातु, तेषामन्यतमो मृतः।

२११। "किमेदव्ययेभ्योऽद्रव्ये चतरां चतमामेकोत्कर्षे" (२)। दोमेंसे और अनेकोंमेंसे एकका उत्कर्ष बोध होनेपर किम्, एकारान्त तथा अव्यय शब्दोंके उत्तर चतराम् और चतमाम् प्रत्यय होते हैं ; च इत्, तराम् और तमाम् रह जाते हैं। यथा, किन्तराम्, किन्तमाम् ; प्राह्णेतराम्, प्राह्णेतमाम् ; उच्चैस्तराम्, उच्चैस्तमाम्। द्रव्य बोध होनेसे नहीं होता। यथा, उच्चैस्तरस्तरुः (*a tree higher than another*)।

२१२। "प्रशंसायां रूपः" (३)। प्रशंसा बोध होनेसे प्रातिपदिकके उत्तर रूप प्रत्यय होता है। यथा, प्रशस्तो वैयाकरणः वैयाकरणरूपः (*an excellent or good grammarian*) ऐसे—नैयायिकरूपः (*an excellent logician*), आलङ्कारिकरूपः (*an excellent rhetorician*), मीमांसकरूपः।

---

(१) एकाच्च प्राचाम् (पा ५।२।९४)। (२) किमेत्तिङव्ययघादाम्वद्रव्यप्रकर्षे (पा ५।४।११)। किम एतदन्तात्तिङोऽव्ययाच्च यो घस्तदन्तादामुः स्यान्न तु द्रव्यप्रकर्षे। तरप्तमपौ घः (पा १।१।२२)। किम्, एकारान्त शब्द, तिङन्त तथा अव्यय शब्दोंसे परे घ-संज्ञक (अर्थात् तरप्, तमप्) प्रत्यय होनेसे अतिशय अर्थमें उन प्रत्ययान्त शब्दोंके परे आमु (आम्) होता है। द्रव्य प्रकर्ष बोध होनेसे नहीं होता। (३) प्रशंसायां रूपप् (पा ५।३।६६)।

२१३। "ईषदूने कल्प-देश्य-देशीयाः" (१)। 'ईषत् न्यून' इस अर्थका बोध होनेसे प्रातिपदिकके उत्तर कल्प, देश्य और देशीय प्रत्यय होते हैं। यथा, ईषदूनो विद्वान् विद्वत्कल्पः, विद्वद्देश्यः, विद्वद्देशीयः (*not fully learned*)।

२१४। "तिङन्ताच्च" (२)। पूर्व्व तीन सूत्रोंमें विहित सब प्रत्यय तिङन्त पदके उत्तर भी होते हैं। यथा, पठतितराम्, पठतितमाम्, पठतिरूपम्, पठतिकल्पम्, पठतिदेशीयम्।

२१५। "वा सुपो बहुः पुरस्तात्" (३)। 'ईषदून' अर्थमें सुबन्त पदके उत्तर विकल्पसे बहु (बहुच्) प्रत्यय होता है; और यह प्रत्यय सुबन्त पदके पूर्व्वमें जाता है। यथा ईषदूनः पटुः बहुपटुः, पटुकल्पः, पटुदेश्यः, पटुदेशीयः (*not fully able or skilful*)।

२१६। "तेन तुल्यः स्थाम-स्थानीयौ" (४)। 'तेन तुल्यः' इस अर्थमें प्रातिपदिकके उत्तर स्थान और स्थानीय प्रत्यय होते हैं। यथा, पित्रा तुल्यः पितृस्थानः, पितृस्थानीयः (*one who is in the place of a father*)। ऐसे—मातृस्थानः, मातृस्थानीयः; मातृस्थाना, मातृस्थानीया मातृष्वसा (*mother's sister*)।

---

(१) ईषदसमाप्तौ कल्पब्देश्यदेशीयरः (पा ५।३।६७)। (२) तिङश्च (पा ५।३।५६)। (३) विभाषा सुपो बहुच् पुरस्तात्तु (पा ५।३।६८)। (४) स्थानान्ताद्विभाषा सस्थानेनेति चेत् (पा ५।४ १०)। सस्थान (सादृश्य) बोध नहीं होनेसे—गोस्थानम्।

२१७। "जातौ जातीयः" (१)। 'जाति' (प्रकार अर्थात् सादृश्य) अर्थमें प्रातिपदिकके उत्तर जातीय प्रत्यय होता है। यथा, ब्राह्मणजातीयः (*pertaining to or like the Brahmanical race*), क्षत्रियजातीयः, पुरुषजातीयः, स्त्रीजातीयः, वणिग्‌जातीयः, रजकजातीयः, तार्किकजातीयः, वैयाकरणजातीयः (*like a grammarian*)।

२१८। संख्यायाः क्रियाभ्यावृत्तिगणने कृत्वसुच्" (२)। 'क्रियाकी अभ्यावृत्तिका गणन' अर्थात् क्रिया कै वार अनुष्ठित हुई इसकी गिनतीका बोध होनेपर संख्यावाचक प्रातिपदिकके उत्तर कृत्वसुच् (प्रत्यय) होता है ; उ च् इत्, कृत्वस् रहता है। यथा, पञ्च वारान् भुङ्क्ते पञ्चकृत्वो भुङ्क्ते (*eats five times*), सप्त वारान् स्वपिति सप्तकृत्वः स्वपिति (*sleeps seven times*), शतं वारान् पठति शतकृत्वः पठति (*reads a hundred times*)। संख्यावाचक शब्द न रहनेसे नहीं होता। यथा, भूरि वारान् भुङ्क्ते।

२१९। "द्वि-त्रि-चतुर्भ्यः सुच्" (३)। 'क्रियाकी अभ्यावृत्तिका गणन' बोध होनेसे द्वि, त्रि, चतुर् इन तीन प्रातिपदिकोंके उत्तर सुच् होता है ; उ च् इत्, स् रहता है। यथा, द्वौ वारौ भुङ्क्ते द्विर्भुङ्क्ते, त्रीन् वारान् भुङ्क्ते त्रिर्भुङ्क्ते।

२२०। "लोपोऽन्त्यस्य चतुरः" (४)। सुच् प्रत्यय

---

(१) जात्यन्ताच्छ बन्धुनि (पा ५।४।९)। जातेर्व्यञ्जकान्द्रव्यबन्धु। (२) पा ५।४।१७। (३) पा ५।४।१८। (४) रात्सस्य (पा ८।२।२४)।

होनेसे चतुर् इस प्रातिपदिकके अन्त्य वर्णका लोप होता है। यथा, चतुरो वारान् भुङ्क्ते चतुर्भुङ्क्ते (*eats four times*)।

२२१, "एकस्य सकृच्च" (१)। 'एक' इस प्रातिपदिकके उत्तर सुच् होता है और उसके साथ एक-शब्दके स्थानमें सकृत् होता है। यथा, एकं वारं भुङ्क्ते सकृद्भुङ्क्ते (*eats once*), एकं वारं अधीते सकृदधीते (*reads once*)। यहाँ अभ्यावृत्तिकी सम्भावना नहीं है, केवल गिनती समझी जाती है।

२२२। "विभाषा बहोर्विप्रकृष्टकाले धाच्" (२)। क्रियाकी अभ्यावृत्तिका गणन और क्रियाके अनुष्ठानकालकी परस्पर निकटता बोध होनेपर बहु इस प्रातिपदिकके उत्तर विकल्पसे धाच् होता है; च् इत्, धा रहता है; पक्षमें कृत्वसुच् होता है। यथा बहुधा (*many times*) दिवसस्य भुङ्क्ते, बहुकृत्वो दिवसस्य भुङ्क्ते (*eats many times a day*)। नैकट्य (निकटता) बोध नहीं होनेसे धाच् नहीं होता। यथा, बहुकृत्वो मासस्यागच्छति (*comes many times a month*)।

२२३। "बह्वल्पार्थाद्वा चशस्" (३)। बह्वर्थक और अल्पार्थक प्रातिपदिकोंके उत्तर विकल्पसे चशस् होता है; च् इत्, शस् रहता है। यथा, बहु ददाति बहुशो (*abundantly*) ददाति, भूरि ददाति भूरिशो (*much*) ददाति; अल्पं ददाति अल्पशो (*a little*) ददाति, स्तोक ददाति स्तोकशो

(१) पा ५।४।१९। (२) विभाषा बहोर्धाऽविप्रकृष्टकाले (पा ५।४।२०)। (३) बह्वल्पार्थाच्छस् कारकादन्यतरस्याम् (पा ५।४।४२)।

(*sparingly*) ददाति। कारकके ही उत्तर होता है, अन्यत्र नहीं होता। यथा, बहूनां स्वामी 'बहुशः स्वामी' नहीं होगा।

२२४। "संख्यैकदेशवचनाच्च वीप्सायाम्" (१)। वीप्सा बोध होनसे संख्यावाचक और एकदेशवाचक प्रातिपदिकोंके उत्तर विकल्पसे चशस् होता है। यथा, संख्यावाचक—द्वौ द्वौ ददाति द्विशो ददाति (*gives two at a time*), पञ्च पञ्च ददाति पञ्चशो ददाति। एकदेशवाचक—पादं पादं ददाति पादशो ददाति (*gives one-fourth at a time*), अर्द्धमर्द्धं ददाति अर्द्धशो ददाति (*gives half at a time*)।

२२५। "विकारे मयट्" (२)। 'विकार'-अर्थ बोध होनेसे प्रातिपदिकके उत्तर मयट् होता है; ट् इत्, मय रहता है। यथा, स्वर्णस्य विकारः स्वर्णमयो (*made of gold*) घटः, स्वर्णमयी प्रतिमा; मृदो विकारः मृन्मयो (*made of clay*) घटः, मृन्मयी प्रतिमा।

२२६। "हिरण्मयः" (३)। 'हिरण्मय' शब्द निपातनसे सिद्ध होता है। यथा, हिरण्यस्य विकारः हिरण्मयः (*made of gold or silver*)।

---

(१) संख्यैकवचनाच्च वीप्सायाम् (पा ५।४।४३)। (२) मयड्वैतयोर्भाषायामभक्ष्याच्छादनयोः (पा ४।३।१४३)। प्रकृतिमात्रान्मयड् वा स्यात् विकारावयवयोः। अभक्ष्येत्यादि किम्? मौद्गः सूपः, कार्पासमाच्छादनम। (३) दाण्डिनायनहास्तिनायनाथर्वणिकजैह्माशिनेयवासिनायनिभ्रौणहत्यधैवत्यसारवैक्ष्वाकमैत्रेयहिरण्मयानि (पा ६।४।१७४)।

२२७। "अवयवे" (१)। 'अवयव' बोध होनेसे प्रातिपदिकके उत्तर मयट् प्रत्यय होता है। यथा, दारूण्यस्यावयवाः दारुमयमासनम् (*seat made of wood*), दर्भा अस्यावयवाः दर्भमयो (२) ब्राह्मणः, काष्ठान्यस्यावयवाः काष्ठमयो हस्तो, ऊर्णा अस्यावयवाः ऊर्णामयं वासः, अन्नान्यस्यावयवाः अन्नमयो (३) यज्ञः, अपूपा अस्य अवयवाः अपूपमयं (३) श्राद्धम्।

२२८। "व्याप्तौ" (४)। 'व्याप्ति' अर्थ बोध होनेसे प्रातिपदिकके उत्तर मयट् होता है। यथा, जलेन व्याप्तं जलमयं जगत् प्रलये, रोगेण व्याप्तं रोगमयं शरीरम् (*body full of diseases*), धूमेन व्याप्तं धूममयं (*full of smoke*) गृहम्।

२२९। "संसर्गे" (४)। 'संसर्ग' बोध होनेसे प्रातिपदिकके उत्तर मयट् प्रत्यय होता है। यथा, तिलेन संसृष्टं तिलमयं तर्पणम्, घृतेन संसृष्टं घृतमयं व्यञ्जनम्, पापेन संसृष्टं पापमयं शरीरम् (*sinful body*)।

२३०। "अपृथग्भावे च" (४)। 'अपृथग्भाव' बोध होनेसे प्रातिपदिकके उत्तर मयट् प्रत्यय होता है। यथा, विष्णोरपृथग्भूतं विष्णुमयं जगत्, वाग्भ्योऽपृथग्भूत वाङ्मयं

---

(१) मयड्वैतयोर्भाषायामभक्ष्याच्छादनयोः (पा ४।३।१४३)। प्रकृतिमात्रान्मयड् वा स्यात् विकारावयवयोः। (२) नित्यं वृद्धशरादिभ्यः (पा ४।३।१४४)। आम्रमयम्, शरमयम्, कुटीमयम्, तृणमयम्, सोममयम्, बल्वजमयम्। (३) तत्प्रकृतवचने मयट् (पा ५।४।२१)। प्राचुर्य्येण प्रस्तुतं 'प्रकृत' तस्य वचनं प्रतिपादनम्। आद्ये प्रकृतम् अन्नम् अन्नमयम्; अथवा प्राचुर्य्येण अन्नं यस्मिन् सः अन्नमयः यज्ञः। ऐसे—अपूपमयं पर्व्व।
(४) तत्प्रकृतवचने मयट् (पा ५।४।२१); समूहवच्च बहुषु (पा ५।४।२२)।

२३५। "ऐकध्यादयो वा" (१)। ऐकध्य आदि शब्द विकल्पसे निपातनमें सिद्ध होते हैं। यथा एका विधा ऐकध्यम्; द्वे विधे द्वैधम्, द्वेधा; तिस्रो विधाः त्रैधम्, त्रेधा; षड् विधाः षोढ़ा। पक्षमें, एकधा, द्विधा, त्रिधा षड्धा इत्यादि।

२३६। "पाशः कुत्सिते" (२)। 'कुत्सित' बोध होनेपर प्रातिपदिकके उत्तर पाश प्रत्यय होता। यथा, कुत्सितो वैयाकरणः वैयाकरणपाशः (*a bad grammarian*)। ऐसे—मीमांसकपाशः, भिषक्पाशः (*a bad physician*), वैदिकपाशः, लेखकपाशः (*a bad writer*), पाचकपाशः (*a bad cook*)।

२३७। "भूतपूर्व्वे चरट्" (३)। 'भूतपूर्व्व' अर्थमें प्रातिपदिकके उत्तर चरट् प्रत्यय होता है; ट् इत्, चर रहता है। यथा, आढ्यो भूतपूर्व्वः आढ्यचरः (*rich before*), दृष्टो भूतपूर्व्वः दृष्टचरः (*seen before*), अर्पितो भूतपूर्व्वः अर्पितचरः (*given before*), अधीतो भूतपूर्व्वः अधीतचरः (*read before*)।

२३८। "सम्बन्धे रूप्यश्च" (४)। 'सम्बन्ध' बोध होनेसे भूतपूर्व्व अर्थमें चरट् और रूप्य प्रत्यय होते हैं। यथा, देवदत्तस्य भूतपूर्व्वं देवदत्तरूप्यं देवदत्तचरं वा भवनम् (*a house that formerly belonged to Devadatta*)।

---

(१) एकाद्धो ध्यमुञन्यतरस्याम् (पा ५।३।४४); द्वित्र्योश्च धमुञ् (पा ५।३।४५); एधाच्च (पा ५।३।४६)। (२) याप्ये पाशप् (पा ५।३।४७)। (३) पा ५।३।५३। (४) षष्ठ्या रूप्य च (पा ५।३।५४)।

२३९। "एकादाकिनिरसहाये" (१)। (असहाय) 'सहाय-रहित' बोध होनेसे एक-शब्दके उत्तर आकिनि प्रत्यय होता है; इ इत्, आकिन् रहता है। यथा, एक एव एकाकी (*alone, solitary*)।

२४०। "प्राक् टेरक् स्वार्थे" (२)। 'स्वार्थ' (वही अर्थ) बोध होनेपर प्रातिपदिकके टि-के पूर्व्वमें अक् होता है। यथा, कन्या एव कन्यका (*a daughter*), तारा एव तारका (*a star*)।

२४१। "बालादेरिक्" (३)। 'स्वार्थ' बोध होनेसे बाला आदि प्रातिपदिकोंके टि-के पूर्व्वमें इक् होता है। यथा, बाला एव बालिका, तरला एव तरलिका, निपुणा एव निपुणिका, चतुरा एव चतुरिका, चपला एव चपलिका, लता एव लतिका (*a creeper*), गोधा एव गोधिका (*an iguana*)।

२४२। "अज्ञाते कन्" (४)। 'अज्ञात' (*unknown*) अर्थमें प्रातिपदिकके उत्तर स्वार्थमें कन्-प्रत्यय होता है; न् इत्, क रहता है। यथा, कस्यायमश्वः अश्वकः (*an unknown horse*)। ऐसे — उष्ट्रकः (*an unknown camel*), महिषकः (*an unknown buffalo*), गर्द्दभकः (*an unknown ass*)।

---

(१) एकादाकिनिच्चासहाये (पा ५।३।५२)। (२) अव्ययसर्व्वनाम्नामकच् प्राक् टेः (पा ५।३।७१)। "कुत्सायां निन्दने ज्ञाने नीतौ दानेन ग्लानिते। प्रायोऽन्त्यस्वरात् पूर्व्वं सर्व्वनामतिङव्ययात्।" (३) प्रत्ययस्थात् कात् पूर्व्वस्यात इदाप्यसुपः (पा ७।३।४४)। (४) अज्ञाते (पा ५।३।७३)।

२४३। "कुत्सिते" (१)। 'कुत्सित' अर्थमें प्रातिपदिकके उत्तर स्वार्थमें कन्-प्रत्यय होता है। यथा, कुत्सितोऽश्वः अश्वकः (*a bad horse*), कुत्सितो महिषः महिषकः।

२४४। "अल्पे" (२)। 'अल्प' अर्थमें प्रातिपदिकके उत्तर स्वार्थमें कन्-प्रत्यय होता है। यथा, अल्पं तैलं तैलकम् (*a small quantity of oil*)। ऐसे—क्षीरकम्, सलिलकम् (*a small quantity of water*)।

२४५। "ह्रस्वे" (३)। 'ह्रस्व' अर्थमें प्रातिपदिकके उत्तर स्वार्थमें कन्-प्रत्यय होता है। यथा, ह्रस्वो वृक्षः वृक्षकः (*a small tree*), ह्रस्वः पटः पटकः, ह्रस्वः स्तम्भः स्तम्भकः (*a small pillar*), ह्रस्वो दण्डः दण्डकः (*a small rod*)।

२४६। "अनुकम्पायाम्" (४)। 'अनुकम्पा' (*favour, pity, mercy*) अर्थमें प्रातिपदिकके उत्तर स्वार्थमें कन्-प्रत्यय होता है। यथा, अनुकम्पितः पुत्त्रः पुत्त्रकः। ऐसे—वत्सकः, दुर्बलकः।

२४७। "संज्ञायाम्" (५)। 'संज्ञा' अर्थमें प्रातिपदिकके उत्तर स्वार्थमें कन्-प्रत्यय होता है। यथा, करभकः (*a young elephant*), रोहितकः, शर्व्विलकः।

२४८। "स्त्रियामन्त्यो ह्रस्वः" (६)। स्त्रीलिङ्ग प्राति-

(१) पा ५।३।७४। (२) पा ५।३।८५। (३) पा ५।३।८६। (४) पा ५।३।७६। (५) संज्ञायां कन् (पा ५।३।७५); जातिनाम्नः कन् (पा ५।३।८१)। (६) केऽणः (पा ७।४।१३)।

पदिकके उत्तर कन् हो तो अन्त्य स्वर ह्रस्व होता है। यथा, मालवी मालविका, सागरी सागरिका, लवङ्गी लवङ्गिका, माधवी माधविका, चण्डी चण्डिका, कुशण्डी कुशण्डिका, शेफाली शेफालिका, मृणाली मृणालिका, यूथी यूथिका, वदरी वदरिका, दूती दूतिका, काली कालिका, शारी शारिका (*she-parrot*), सूची सूचिका (*needle*)।

२४९। "ह्रस्वे कुटी-शमी-शुण्डाभ्यो रः (१)। ह्रस्व अर्थमें कुटी, शमी, शुण्ड इन तीनों प्रातिपदिकोंके उत्तर र होता है। यथा, ह्रस्वा कुटी कुटीरः (*cottage*), ह्रस्वा शमी शमीरः, ह्रस्वा शुण्डा शुण्डारः (*the small trunk of an elephant*)।

२५०। "अश्वोक्षवत्सर्षभेभ्यस्तरट्" (२)। 'ह्रस्व' अर्थमें अश्व, उक्षन्, वत्स, ऋषभ इन चार प्रातिपदिकोंके उत्तर तरट्-प्रत्यय होता है; ट् इत्, तर रहता है। यथा, ह्रस्वोऽश्वः अश्वतरः (*a small horse, mule*)। ऐसे—उक्षतरः, वत्सतरः (*a weaned calf, a young ox*), ऋषभतरः (*a small or young bull*)।

२५१। "पञ्चम्यास्तसिल् वा" (३)। पञ्चमी-विभक्तिके स्थानमें विकल्पसे तसिल् होता है; इ, ल् इत्, तस् रहता है। यथा, गृहात् गृहतः (*from the house*), ग्रामात् ग्रामतः, नगरात् नगरतः, सर्व्वस्मात् सर्व्वतः, विश्वस्मात् विश्वतः,

---

(१) कुटीशमीशुण्डाभ्यो रः (पा ५।३।८८)। (२) वत्सोक्षाश्वर्षभेभ्यश्च तनुत्वे (पा ५।३।९१)। (३) पञ्चम्यास्तसिल् (पा ५।३।७)।

उभयस्मात् उभयतः, भवतः भवत्तः, एकस्मात् एकतः, अन्यस्मात् अन्यतः, पूर्व्वस्मात् पूर्व्वतः, परस्मात् परतः, दक्षिणस्मात् दक्षिणतः, उत्तरस्मात् उत्तरतः, हस्तात् हस्ततः, वृक्षात् वृक्षतः, मेघात् मेघतः, जलात् जलतः।

२५२। "सप्तम्याश्च"। सप्तमीके स्थानमें विकल्पसे तसिल् होता है। यथा, पूर्व्वस्मिन् पूर्व्वतः (*in the east*), दक्षिणस्मिन् दक्षिणतः, उत्तरस्मिन् उत्तरतः, प्रथमे प्रथमतः, परस्मिन् परतः, अग्रे अग्रतः, आदौ आदितः (१), मध्ये मध्यतः, अन्ते अन्ततः, पृष्ठे पृष्ठतः, पार्श्वयोः पार्श्वतः, सर्व्वस्मिन् सर्व्वतः।

२५३। "नित्यं पर्य्यभिभ्याम्" (२)। परि और अभि उपसर्गों के उत्तर नित्य तसिल् होता है। यथा, परितः (*all around*), अभितः (*near, before, on both sides*)।

२५४। "न हाकरुहोः" (३)। हाक् और रुह् धातुओंके प्रयोगमें तसिल् नहीं होता। यथा, स्वर्गात् हीयते, पर्व्वतादवरोहति (*descends or comes down from a mountain*)।

२५५। "सप्तम्यास्त्रल् वा सर्व्वनाम्नः" (४)। सर्व्वनाम (५) शब्दोंके सप्तमीके स्थानमें विकल्पसे त्रल् होता है ; ल् इत्,

---

(१) आद्यादिभ्यस्तसेरुपसंख्यानम्। इस सूत्रसे स्वरतः, वर्णतः भी सिद्ध होते हैं। (२) पर्य्यभिभ्याञ्च (पा ५।३।९)। (३) अपादाने चाहीयरुहोः (पा ५।४।४५)। (४) सप्तम्यास्त्रल् (पा ५।३।१०)। (५) किंसर्व्वनामबहुभ्यो-

त्र रहता है। यथा, सर्व्वस्मिन् सर्व्वत्र (*everywhere*), उभयस्मिन् उभयत्र (*in both the places*), **एकस्मिन् एकत्र**, अन्यस्मिन् अन्यत्र, इतरस्मिन् इतरत्र, पूर्व्वस्मिन् पूर्व्वत्र, परस्मिन् परत्र, अपरस्मिन् अपरत्र (*in another place*)।

२५६। "अ-य-ता एतद्-यद्-तदाम्" (१)। तसिल् और त्रल् होनेसे एतद्के स्थानमें अ, यद्के स्थानमें य और तद्के स्थानमें त होता है। यथा, एतस्मात् अतः, एतस्मिन् अत्र ; यस्मात् यतः, यस्मिन् यत्र ; तस्मात् ततः, तस्मिन् तत्र।

२५७। "किमः कुः" (२)। किम्के स्थानमें कु होता है। यथा, कस्मात् कुतः (*wherefrom*), कस्मिन् कुत्र (*where*)।

२५८। "क-कुहौ" (२)। क और कुह शब्द निपातनसे सिद्ध होते हैं। कस्मिन् क, कुह।

२५९। "इरिदमः" (३)। इदम्के स्थानमें इ होता है (४)। यथा, अस्मात् इतः (*from here*)।

२६०। "सप्तम्या हः" (५)। सप्तमी विभक्तिके स्थानमें ह होता है। यथा, अस्मिन् इह (*here*)।

२६१। "इतरासामपि दृश्यन्ते" (६)। पञ्चमी, सप्तमी

ऽद्व्यादिभ्यः (पा ५।३।२)। द्वि, अस्मद्, युष्मद्, (भवत्) भिन्न। (१) एतदोऽन् (पा ५।३।५) ; त्यदादीनामः (पा ७।२।१०२)। (२) कु तिहोः (पा ७।२।१०४) ; किमोऽत् (पा ५।३।१२) ; क्वाति (पा ७।२।१०५) ; था ह च छन्दसि (पा ५।३।१६)। (३) इदम इश् (पा ५।३।३)। (४) दानीम् होनेसे भी होता है। (५) इदमो हः (पा ५।३।११)। (६) इतराभ्योऽपि दृश्यन्ते (पा ५।३।१४)।

भिन्न दूसरी विभक्तियोंके स्थानमें भी तसिल् और त्रल् प्रत्यय पाये जाते हैं। यथा, स भवान्, ततोभवान्, तत्रभवान् (*His Honour, Reverence or Excellency*); तं भवन्तम्, ततोभवन्तम्, तत्रभवन्तम्; तेन भवता, ततोभवता, तत्रभवता; तस्मै भवते, ततोभवते, तत्रभवते; तस्य भवतः, ततोभवतः, तत्रभवतः। (१)

२६२। "एक-सर्व्वयोः काले दा" (२)। 'काल' बोध होनेसे एक तथा सर्व्व इन दोनों सर्व्वनाम-शब्दोंको सप्तमीके स्थानमें दा होता है। यथा, एकस्मिन् काले एकदा (*once upon a time*)।

२६३। "सो वा सर्व्वस्य" (३)। दा होनेसे सर्व्व-शब्दके स्थानमें विकल्पसे स होता है। यथा, सर्व्वस्मिन् काले सदा, सर्व्वदा (*always, at all times*)।

२६४। "अन्य-किं-यदां र्हिल् च" (४)। अन्य, किम्, यद्, इन तीनों सर्व्वनाम शब्दोंको सप्तमीके स्थानमें दा और र्हिल् होते हैं; (र्हिल् में से) ल् इत्, र्हि रहता है। यथा, अन्यस्मिन् काले अन्यर्हि, अन्यदा (*at another time, on another occasion*)।

---

(१) ऐसे—स दीर्घायुः, ततोदीर्घायुः, तत्रदीर्घायुः; स देवानां प्रियः, ततो देवानां प्रियः, तत्र देवानां प्रियः, (मूर्खः *a fool*)। (२) सर्व्वैकान्यकिंयत्तदः काले दा (पा ५।३।१५)। काल बोध नहीं होनेसे—सर्व्वत्र देशे। (३) सर्व्वस्य सोऽन्यतरस्यां दि (पा ५।३।६)। (४) अनद्यतने र्हिलन्यतरस्याम् (पा ५।३।२१)।

२६५ । "किं-यदोः क-यौ" (१) । दा और र्हिल होनेपर किम्के स्थानमें क और यद्के स्थानमें य होता है । यथा, कस्मिन् काले कर्हि, कदा (*when*) ; यस्मिन् काले यर्हि, यदा (*when*) ।

२६६ । "तदो दानीं च" (२) । तद्-शब्दकी सप्तमीके स्थानमें दा, र्हिल् और दानीम् होते हैं ।

२६७ । "तस्तदः" (१) । दा, र्हिल् और दानीम् होनेसे तद्-शब्दके स्थानमें त होता है । यथा, तस्मिन् काले तदा, तर्हि, तदानीम् (*then, at that time*) ।

२६८ । "इदमो दानीम्" (३) । इदम्-शब्दकी सप्तमीके स्थानमें दानीम् होता है । यथा, अस्मिन् काले इदानीम् (*at this moment, in this case*) ।

२६९ । "अधुनैतर्हीं" (४) । अधुना, एतर्हि, ये दो पद निपातनसे सिद्ध होते हैं । यथा, अस्मिन् काके अधुना (*now-a-dxys*), अस्मिन् एतस्मिन् वा काले एतर्हि (*at this time*) ।

२७० । "पद्युस् पूर्व्वादेरहनि" (५) । 'दिन' बोध होनेसे पूर्व्व आदि प्रातिपदिकोंके उत्तर एद्युस् होता है । यथा,

---

(१) त्यदादीनामः (पा ७।२।१०२) । (२) तदो दा च (पा ५।३।१९) । (३) दानीं च (पा ५।३।१८) ।

(४) अधुना (पा ५।३।१७) ; इदमो र्हिल् (पा ५।३।१६) ; एतेतौ रथोः (पा ५।३।४) ; एतदः (पा ५।३।५) । (५) सद्यःपरुत्परार्य्यैषमःपरेद्यव्यद्य-

पूर्व्वस्मिन्नहनि पूर्व्वेद्युः (*yesterday*), अन्यस्मिन्नहनि अन्येद्युः (*on another day*), अपरस्मिन्नहनि अपरेद्युः (*on the other day*)। ऐसे—इतरेद्युः, अन्यतरेद्युः, अधरेद्युः, उत्तरेद्युः, उभयेद्युः (*on both days*) (१)।

२७१। "ह्यः सद्योऽद्यश्वःपरेद्यवयः" (२)। 'दिन' बोध होनेसे विभक्ति-युक्त पूर्व्व-शब्दके स्थानमें ह्यस्, समान शब्दके स्थानमें सद्यस्, इदम्के स्थानमें अद्य और पर-शब्दके स्थानमें श्वस् और परेद्यवि होते हैं। यथा, पूर्व्वस्मिन्नहनि ह्यः (*yesterday*); समानेऽहनि सद्यः (*the same day*); अस्मिन्नहनि अद्य (*to-day*); परस्मिन्नहनि श्वः (*to-morrow*), परेद्यवि (*on the other day*)।

२७२। "ऐषमः-परुत्-परारयोः वर्षे" (२)। 'वर्ष' बोध होनेसे विभक्ति-युक्त इदम्-शब्दके स्थानमें ऐषमस्, पूर्व्व-शब्दके स्थानमें परुत् और पूर्व्वतर-शब्दके स्थानमें परारि होता है। यथा, अस्मिन् वर्षे ऐषमः (*this year*), पूर्व्वस्मिन् वर्षे परुत् (*last year*), पूर्व्वतरे वर्षे परारि (*the year before last*)।

२७३। "थाल् प्रकारे तृतीयायाः" (३)। 'प्रकार'-अर्थमें तृतीयाके स्थानमें थाल् होता है; ल् इत्, था रहता है। यथा,

---

पूर्व्वेद्युरन्येद्युरन्यतरेद्युरितरेद्युरपरेद्युरधरेद्युरुभयेद्युरुत्तरेद्युः (पा ५।३।२२)। (१) द्युस्चोभयात् (वा० ३२५१)। उभय-शब्दके उत्तर द्युस् प्रत्यय भी होता है। यथा, उभयस्मिन् अहनि उभयद्युः (*on both days*)। (२) सद्यःपरुत्परार्य्यैषमः इत्यादि (पा ५।३।२२)। (३) प्रकारवचने थाल् (पा ५।३।२३)।

सर्व्वैः प्रकारैः सर्व्वथा, अन्येन प्रकारेण अन्यथा, इतरेण प्रकारेण इतरथा, उभयेन प्रकारेण उभयथा, अपरेण प्रकारेण अपरथा।

२७४। "य-तौ यत्तदोः" (१)। थाल प्रत्यय होनेसे यद्-शब्दके स्थानमें य और तद्-शब्दके स्थानमें त होता है। यथा, येन प्रकारेण यथा, तेन प्रकारेण तथा (*so, thus*)।

२७५। "कथमित्थमौ" (२)। कथम् और इत्थम् ये दोनों पद निपातनसे सिद्ध होते हैं। यथा, केन प्रकारेण कथम्, अनेन एतेन वा प्रकारेण इत्थम् (*thus*)।

२७६। "परादेरस्तात् सप्तमीपञ्चमीप्रथमानाम्" (३)। पर आदि प्रातिपदिकोंको सप्तमी, पञ्चमी और प्रथमा विभक्तियोंके स्थानमें अस्तात् होता है। यथा, परस्मिन्, परस्मात् परो वा परस्तात्।

२७७। "पश्चात्" (४)। अस्तात्-युक्त अपर-शब्दके स्थानमें पश्चात् निपातनसे सिद्ध होता है। यथा, अपरस्मिन् अपरस्मात् अपरो वा पश्चात्।

२७८। "उपर्य्युपरिष्टात्" (५)। अस्तात्-युक्त ऊर्द्ध-शब्दके स्थानमें उपरि और उपरिष्टात् निपातनसे सिद्ध होते हैं। यथा, ऊर्द्धे ऊर्द्धात् ऊर्द्धो वा उपरि, उपरिष्टात्।

---

(१) त्यदादीनामः (पा ७।२।१०२)। (२) इदमस्थमुः (पा ५।३।२४); किमश्च (पा ५।३।२५); एतदोऽपि वाच्यः। (३) दिक्छब्देभ्यः सप्तमीपञ्चमीप्रथमाभ्यो दिग्देशकालेष्वस्तातिः (पा ५।३।२७)। (४) पा ५।३।३२। (५) पा ५।३।३१।

२७९। "पूर्व्वाधरावराणामसिश्च" (१)। पूर्व्व, अधर, अवर, इन तीन प्रातिपदिकोंकी सप्तमी, पञ्चमी तथा प्रथमा विभक्तियोंके स्थानमें अस्तात् और असि प्रत्यय होते हैं; (असिमें से) इ इत्, अस् रहता है।

२८०। "पुराधौ पूर्व्वाधरयोः" (१)। अस्तात् और असि होनेसे पूर्व्व-शब्दके स्थानमें पुर् और अधर-शब्दके स्थानमें अध् होता है। यथा, पूर्व्वस्मिन् पूर्व्वस्मात् पूर्व्वो वा पुरस्तात्, पुरः; अधरस्मिन् अधरस्मात् अधरो वा अधस्तात्, अधः।

२८१। "अवो विभाषावरस्य" (१)। अस्तात् और असि होनेसे अवर-शब्दके स्थानमें विकल्पसे अव् होता है। यथा, अवरस्मिन् अवरस्मात् अवरो वा अवस्तात् अवरस्तात्, अवः, अवरः।

२८२। "दिग्देशयोर्दक्षिणोत्तरयोरतसुः" (२)। दिग्वाचक और देश-वाचक दक्षिण तथा उत्तर शब्दोंकी सप्तमी, पञ्चमी और प्रथमा विभक्तियोंके स्थानमें अतसु होता है; उ इत्, अतस् रहता है। यथा, दक्षिणस्मिन् दक्षिणस्मात् दक्षिणो वा दक्षिणतः, उत्तरस्मिन् उत्तरस्मात् उत्तरो वा उत्तरतः।

---

(१) पूर्व्वाधरावराणामसि पुरधवश्चैषाम् (पा ५।३।३९)। एभ्योऽस्तात्यर्थेऽसि प्रत्ययः स्यात् तद्योगे चैषां क्रमात् पुर्, अध्, अव्, इत्यादेशाः स्युः; अस्ताति च (पा ५।३।४०); विभाषा परावराभ्याम् (पा ५।३।२९); परतः, परस्तात्; अवरतः, अवरस्तात्। (२) दक्षिणोत्तराभ्यामतसुच् (पा ५।३।२८)।

२८३। "उत्तराधरदक्षिणानामातिः" (१)। उत्तर, अधर, दक्षिण इन तीन प्रातिपदिकोंको सप्तमी, पञ्चमी और प्रथमा विभक्तियोंके स्थानमें आति होता है; इ इत्, आत् रहता है। यथा, उत्तरस्मिन् उत्तरस्मात् उत्तरो वा उत्तरात् (*in the north, from the north, nothward*)। ऐसे—अधरात्, दक्षिणात् (*in the south or on the right, from the south, southward*)।

२८४। "एनप् चादूरेऽपञ्चम्याः" (२)। 'अदूर' अर्थमें एनप् होता है; प् इत्, एन रहता है। यथा, उत्तरस्मिन् उत्तरो वा उत्तरेण। ऐसे—अधरेण, दक्षिणेन (*on the right side of*)। पञ्चमीके स्थानमें नहीं होता।

२८५। "दक्षिणोत्तरयोराद्राही च" (३)। दक्षिण तथा उत्तर शब्दोंकी सप्तमी और प्रथमा विभक्तियोंके स्थानमें आत् और आहि होते हैं; (आत्‌मेंसे) त् इत्, आ रहता है। यथा दक्षिणा, दक्षिणाहि (*to the south of*); उत्तरा, उत्तराहि।

२८६। "भवे कालाव्ययेभ्यस्तनष्" (४)। 'भव' अर्थमें कालवाचक अव्यय-शब्दके उत्तर तनष् प्रत्यय होता है; ष् इत्, तन रहता है। यथा, अद्य भवम् अद्यतनम् (*of to-day*),

---

(१) उत्तराधरदक्षिणादातिः (पा ५।३।३४)। (२) एनबन्यतरस्यामदूरेऽपञ्चम्याः (पा ५।३।३५)। (३) दक्षिणादाच् (पा ५।३।३६); आहि च दूरे (पा ५।३।३७); उत्तराच्च (पा ५।३।३८)। आहि-प्रत्यय दूरार्थमें ही होता है। (४) सायंचिरंप्राह्णेप्रगेऽव्ययेभ्यष्ट्युट्युलौ तुट् च (पा ४।३।२३)।

प्रातर्भवं प्रातस्तनम्, सायं भवं सायन्तनम्। ऐसे—दोषातनम्, दिवातनम्, पुरातनम्, चिरन्तनम्, सदातनम्, अधुनातनम्, इदानीन्तनम्, तदानीन्तनम् (*of or pertaining to that time*)।

२८७। "प्राह्णे-प्रगेभ्याञ्च" (१)। प्राह्णे (*in the forenoon*), प्रगे (*in the morning*), इन दोनों सप्तम्यन्त अव्यय शब्दोंके उत्तर भी (तनप्) होता है। यथा, प्राह्णेतनम् (*to be performed in or belonging to the forenoon*), प्रगेतनम् (२)।

२८८। "विभाषा पूर्व्वाह्णापराह्णाभ्यां सप्तम्याम्" (३)। सप्तमी विभक्तिमें पूर्व्वाह्ण तथा अपराह्ण शब्दोंके उत्तर विकल्पसे तनप् होता है। यथा, पूर्व्वाह्णे भवं पूर्व्वाह्णेतनम् (४), पौर्व्वाह्णिकम्; अपराह्णे भवं अपराह्णेतनम्, आपराह्णिकम्।

२८९। "नित्यमूर्द्ध्वादेः"। ऊर्द्ध्व आदि प्रातिपदिकोंके उत्तर नित्य तनप् होता है। यथा ऊर्द्ध्वं भवः ऊर्द्ध्वतनः, उपरि भवः उपरितनः, अधः भवः अधस्तनः (*lower, previous*), प्राक् भवः प्राक्तनः (*relating to the former life, prior, former*), पूर्व्वं भवः पूर्व्वतनः।

२९०। "आदिमध्याभ्यां मन्" (५)। सप्तमी विभक्तिमें

---

(१) सायञ्चिरं प्राह्णेप्रगेऽव्ययेभ्यष्ट्युट्युलौ तुट् च (पा ४।३।२३)। (२) प्राह्णप्रगयोरेदन्तत्वं निपात्यते (वार्त्तिक)। (३) विभाषा पूर्व्वाह्णापराह्णाभ्याम् (पा ४।३।२४)। (४) पूर्व्वाह्णः सोढोऽस्येति विग्रहे तु पूर्व्वाह्णतनम्, अपराह्णतनम्। (५) मध्यान्मः (पा ४।३।८); आद्यादिभ्य उपसंख्यानम् (वा० ५२३९)।

आदि, मध्य, इन दोनों प्रातिपदिकोंके उत्तर मन् होता है; न् इत्, म रहता है। यथा, आदौ भवः आदिमः (*placed first or prior*), मध्ये भवः मध्यमः (*lying in the middle*)।

२६१। "अग्रान्तपश्चाद्भ्यो डिमः" (१)। अग्र, अन्त, पश्चात् इन तीन प्रातिपदिकोंके उत्तर डिम होता है; ड् इत्, इम रहता है। यथा, अग्रे भवः अग्रिमः, अन्ते भवः अन्तिमः (*final, last*), पश्चात् भवः पश्चिमः (*west, behind*)।

२६२। "चिर-परुत्-परारिभ्यस्त्नः" (२)। चिर, परुत्, परारि, इन तीनों प्रातिपदिकोंके उत्तर त्न प्रत्यय होता है। यथा चिरत्नः (*ancient*), परुत्नः, परारित्नः।

२६३। "दक्षिणा-पश्चात्-पुरोभ्यस्त्यण्" (३)। दक्षिणा, पश्चात्, पुरस्, इन तीन प्रातिपदिकोंके उत्तर त्यण् होता है; ण् इत्, त्य रहता है। यथा, दाक्षिणात्यः (*southern*), पाश्चात्त्यः (*western*), पौरस्त्यः (*eastern*)। (४)

२६४। "अमेह-क-तसिल्-त्रल्भ्यस्त्यः" (५)। अमा,

(१) अग्रादिपश्चाड्डिमच् (वा० २८४४); अन्ताच्चेति वक्तव्यम् (वा० २८४५)। (२) चिरपरुत्परारिभ्यस्त्नो वक्तव्यः (वा० २८४२)। (३) दक्षिणापश्चात्पुरसस्त्यक् (पा ४।२।९८)। दक्षिणा इति आजन्तमव्ययम्। (४) द्युप्रागपागुदक्प्रतीचो यत् (पा ४।२।१०१); दिव् (*sky or heaven*), प्राच् (*east*), अपाच् (*south*), उदच् (*north*), प्रतीच् (*west*), इन शब्दोंके उत्तर यत् प्रत्यय होता है। यथा, दिव्यम् (*heavenly*), प्राच्यम् (*eastern*), अपाच्यम् (*southern*), उदीच्यम् (*northern*), प्रतीच्यम् (*western*)। (५) अव्ययात्त्यप् (४।२।१०४); अमेहक्वतसित्रेभ्य एव (वा० २७७९); अमान्तिकसहायार्थयोः (अमा = अन्तिक, सहाय)।

इह, क्व, और तसिल् तथा त्रल् प्रत्ययान्त प्रातिपदिकोंके उत्तर त्य होता है। यथा, अमात्यः (*one who remains near or who is helpful-i. e-a minister or councillor*), इहत्यः, क्वत्यः; तसिल्-प्रत्ययान्त—ततस्त्यः, अतस्त्यः, कुतस्त्यः; त्रल् प्रत्ययान्त—तत्रत्यः, अत्रत्यः, कुत्रत्यः। (१)

२६५। "किमश्चिच्चनौ विभक्त्यन्तात्"। विभक्त्यन्त किम् शब्दके उत्तर चित् और चन प्रत्यय होते हैं। यथा, कश्चित्, कञ्चित्, केनचित्, कस्मैचित्, कस्माच्चित्, कस्यचित्, कस्मिंश्चित्, कुतश्चित्, क्वचित्, कुत्रचित्; कश्चन, किञ्चन, कञ्चन, कुतश्चन, क्वचन, कुत्रचन।

२६६। "कृभ्वस्तियोगेऽभूततद्भावे च्विः" (२)। कृ, भू तथा अस् धातुओंके योगसे 'अभूततद्भाव' (३) अर्थमें प्रातिपदिकोंके उत्तर च्वि प्रत्यय होता है; च्वि प्रत्ययका सब ही इत्, कुछ भी नहीं रहता।

२६७। "दीर्घोऽन्त्यः" (४)। 'अभूततद्भाव' अर्थमें प्रत्यय होनेपर प्रातिपदिकके अन्तस्थित ह्रस्वस्वर दीर्घ होता है। यथा, अलघुं लघुं करोति लघूकरोति, अलघुर्लघुः भवति लघूभवति, अलघुर्लघुः स्यात् लघूस्यात्।

२६८। "ईत्वर्णस्य" (५)। 'अभूततद्भाव' अर्थमें प्रत्यय

---

(१) त्यब् नेध्रुव इति व्यक्तव्यम् (वा०)। यथा, नित्यः। (२) कृभ्वस्तियोगे सम्पद्यकर्त्तरि च्विः (पा ५।४।५०); अभूततद्भाव इति वक्तव्यम् (वार्त्तिक)। (३) अभूतका तद्भाव, अर्थात् जो जैसा न था वह वैसा हुआ। जैसा—जो वस्तु शुक्ल न थी वह शुक्ल हुई। (४) च्वौ च (पा ७।४।२६)। (च्वौ परे पूर्व्वस्य दीर्घः स्यात्)। (५) अस्य च्वौ (पा ७।४।३२)।

होनेपर प्रातिपदिकके अन्तस्थित अवर्णके स्थानमें ई होता है। यथा, अशुक्लं शुक्लं करोति शुक्लीकरोति, अशुक्लः शुक्लो भवति शुक्लीभवति, अशुक्लः शुक्लः स्यात् शुक्लीस्यात्। (१)

२९९। "ऋतो रीः" (२)। 'अभूततद्भाव' अर्थमें प्रत्यय होनेसे प्रातिपदिकके अन्तस्थित ऋकारके स्थानमें री होता है। यथा, अश्रोतारं श्रोतारं करोति श्रोत्रीकरोति, अश्रोता श्रोता भवति श्रोत्रीभवति, अश्रोता श्रोता स्यात् श्रोत्रीस्यात्। ऐसे—मात्री-करोति, मात्रीभवति, मात्रीस्यात्।

३००। "लोपोऽरुसादेरन्त्यस्य" (३)। 'अभूततद्भाव' अर्थमें प्रत्यय होनेसे अरुस्, मनस्, चक्षुस्, चतस्, रहस्, रजस्, इन शब्दोंके अन्त्य वर्णका लोप होता है। यथा, अरू-करोति, अरूभवति, अरूस्यात्; विमनीकरोति, विमनीभवति, विमनीस्यात्; उच्चक्षूकरोति, उच्चक्षूभवति, उच्चक्षूस्यात्; सुचेती-करोति, सुचेतीभवति, सुचेतीस्यात्; विरहीकरोति, विरही-भवति, विरहीस्यात्; विरजीकरोति, विरजीभवति, विरजी-स्यात्।

३०१। "विभाषा सातिच् कात्स्न्र्ये" (४)। 'कात्स्न्र्य

---

(१) ऐसे—कृष्णीकरोति, ब्रह्मीभवति, गङ्गीस्यात्। अव्ययस्य च्वावीत्वं (च्वि+ईत्व) नेति वाच्यम्। यथा, दोषाभूतमहः (*the day has become night*), दिवाभूता रात्रिः (*the night has become day*)। (२) रीङ् ऋतः (पा ७।४।२७)। (३) अरुर्मनश्चक्षुश्चेतोरहोरजसां लोपश्च (पा ५।४।५१)। (४) विभाषा साति कार्त्स्न्ये (पा ५।४।५२)।

(१) बोध होनेपर अभूततद्भाव-अर्थमें कृ, भू तथा अस् धातुओंके योगमें विकल्पसे सातिच् होता है ; इ च् इत्, सात् रहता है। यथा, कृत्स्नं लवणं जलं करोति जलसात् करोति, कृत्स्नं लवणं जलं भवति जलसाद्भवति, कृत्स्नं लवणं जलं स्यात् जलसात् स्यात् ; भस्मसात् करोति, भस्मसाद्भवति, भस्मसात् स्यात्। पक्षमें च्वि होता है। यथा, जलीकरोति, जलीभवति, जलीस्यात् ; भस्मीकरोति, भस्मीभवति, भस्मीस्यात्।

३०२। "अभिविधौ सम्पदा च" (२)। अभिविधि (३) बोध होनेपर अभूततद्भाव अर्थमें कृ, भू, अस् धातुओंके तथा सम्-पूर्व्वक पद् धातुके योगमें विकल्पसे सातिच् होता है। यथा, अग्निसात् करोति, अग्निसाद्भवति, अग्निसात् स्यात्, अग्निसात् सम्पद्यते। पक्षमें च्वि होता है। यथा, अग्नीकरोति, अग्नीभवति, अग्नीस्यात्, अग्नीसम्पद्यते।

३०३। "अधीनतायाञ्च" (४)। अधीनता-अर्थमें भी होता है। यथा, राज्ञोऽधीनं करोति राजसात् करोति, राज्ञोऽधीनं भवति राजसाद्भवति, राज्ञोऽधीनं स्यात् राजसात् स्यात्, राज्ञोऽधीनं सम्पद्यते राजसात् सम्पद्यते। पक्षमें च्वि होता है। यथा, राजीकरोति, राजीभवति, राजीस्यात्, राजीसम्पद्यते।

---

(१) एकस्याव्यक्तेः सर्व्वावयवावच्छेदेनान्यथाभावः कार्त्स्न्यम्। कृत्स्नं सकलं तस्य भावः कार्त्स्न्यम् (साकल्यम्)। (२) पा ५।४।५३। (३) बहूनां व्यक्तीनां किञ्चिदवयवावच्छेदेनान्यथाभावः अभिविधिः (व्याप्तिरित्यर्थः)। (४) तदधीनवचने (पा ५।४।५४): सातिः स्यात् कृभ्वस्तिभिः सम्पदा च योगे।

होनेपर प्रातिपदिकके अन्तस्थित अवर्णके स्थानमें ई होता है। यथा, अशुक्लं शुक्लं करोति शुक्लीकरोति, अशुक्लः शुक्लो भवति शुक्लीभवति, अशुक्लः शुक्लः स्यात् शुक्लीस्यात्। (१)

२९९। "ऋतो रीः" (२)। 'अभूततद्भाव' अर्थमें प्रत्यय होनेसे प्रातिपदिकके अन्तस्थित ऋकारके स्थानमें री होता है। यथा, अश्रोतारं श्रोतारं करोति श्रोत्रीकरोति, अश्रोता श्रोता भवति श्रोत्रीभवति, अश्रोता श्रोता स्यात् श्रोत्रीस्यात्। ऐसे—मात्री-करोति, मात्रीभवति, मात्रीस्यात्।

३००। "लोपोऽरुसादेरन्त्यस्य" (३)। 'अभूततद्भाव' अर्थमें प्रत्यय होनेसे अरुस्, मनस्, चक्षुस्, चतस्, रहस्, रजस्, इन शब्दोंके अन्त्य वर्णका लोप होता है। यथा, अरू-करोति, अरूभवति, अरूस्यात्; विमनीकरोति, विमनीभवति, विमनीस्यात; उच्चक्षूकरोति, उच्चक्षूभवति, उच्चक्षूस्यात्; सुचेती-करोति, सुचेतीभवति, सुचेतीस्यात्; विरहीकरोति, विरही-भवति, विरहीस्यात्; विरजीकरोति, विरजीभवति, विरजी-स्यात्।

३०१। "विभाषा सातिच् कात्स्न्र्ये" (४)। 'कात्स्न्र्य

---

(१) ऐसे—कृष्णीकरोति, ब्रह्मीभवति, गङ्गीस्यात्। अव्ययस्य च्वावीत्वं (च्वि + ईत्व) नेति वाच्यम्। यथा, दोषाभूतमहः (*the day has become night*), दिवाभूता रात्रिः (*the night has become day*) (२) रीङ् ऋतः (पा ७।४।२७)। (३) अरुर्मनश्चक्षुश्चेतोरहोरजसां लोपश्च (पा ५।४।५१)। (४) विभाषा साति: कार्त्स्न्ये (पा ५।४।५२)।

(१) बोध होनेपर अभूततद्भाव-अर्थमें कृ, भू तथा अस् धातुओंके योगमें विकल्पसे सातिच् होता है ; इ च् इत्, सात् रहता है। यथा, कृत्स्नं लवणं जलं करोति जलसात् करोति, कृत्स्नं लवणं जलं भवति जलसाद्भवति, कृत्स्नं लवणं जलं स्यात् जलसात् स्यात् ; भस्मसात् करोति, भस्मसाद्भवति, भस्मसात् स्यात्। पक्षमें च्वि होता है। यथा, जलीकरोति, जलीभवति, जलीस्यात् ; भस्मीकरोति, भस्मीभवति, भस्मीस्यात्।

३०२। "अभिविधौ सम्पदा च" (२)। अभिविधि (३) बोध होनेपर अभूततद्भाव अर्थमें कृ, भू, अस् धातुओंके तथा सम्-पूर्व्वक पद् धातुके योगमें विकल्पसे सातिच् होता है। यथा, अग्निसात् करोति, अग्निसाद्भवति, अग्निसात् स्यात्, अग्निसात् सम्पद्यते। पक्षमें च्वि होता है। यथा, अग्नीकरोति, अग्नीभवति, अग्नीस्यात्, अग्नीसम्पद्यते।

३०३। "अधीनतायाञ्च" (४)। अधीनता-अर्थमें भी होता है। यथा, राज्ञोऽधीनं करोति राजसात् करोति, राज्ञोऽधीनं भवति राजसाद्भवति, राज्ञोऽधीनं स्यात् राजसात् स्यात्, राज्ञोऽधीनं सम्पद्यते राजसात् सम्पद्यते। पक्षमें च्वि होता है। यथा, राजीकरोति, राजीभवति, राजीस्यात्, राजीसम्पद्यते।

---

(१) एकस्याव्यक्तेः सर्व्वावयवावच्छेदेनान्यथाभावः कार्त्स्न्यम्। कृत्स्नं सकलं तस्य भावः कार्त्स्न्यम् (साकल्यम्)। (२) पा ५।४।५३। (३) बह्वीनां व्यक्तीनां किञ्चिदवयवावच्छेदेनान्यथाभावः अभिविधिः (व्याप्तिरित्यर्थः)। (४) तदधीनवचने (पा ५।४।५४); सातिः स्यात् कृभ्वस्तिभिः सम्पदा च योगे।

३०४। "देये त्राच् च" (१)। देय बोध होनेपर कृ, भू, अस् धातुओंके तथा सम् पूर्व्वक पद् धातुके योगमें सातिच् और त्राच् होते हैं; (त्राच्मेंसे) च् इत्, त्रा रहता है। यथा ब्राह्मणाय देयं करोति ब्राह्मणसात् करोति, ब्राह्मणत्रा करोति; ब्राह्मणसाद्भवति, ब्राह्मणत्रा भवति; ब्राह्मणसात् स्यात्, ब्राह्मणत्रा स्यात्; ब्राह्मणसात् सम्पद्यते, ब्राह्मणत्रा सम्पद्यते।

३०५। "कृञो द्वितीयादेः कृषौ डाच्" (२)। कृ-धातुके योगमें द्वितीय, तृतीय, शम्ब, बीज, इन सब प्रातिपदिकोंके उत्तर कर्षण-अर्थमें डाच् होता है; ड् च् इत्, आ रहता है। यथा, द्वितीयाकरोति, तृतीयाकरोति, द्वितीयं तृतीयं कर्षणं करोति इत्यर्थः; शम्बाकरोति अनुलोमकृष्टं क्षेत्रं प्रतिलोमं कर्षतीत्यर्थः; बीजाकरोति बीजेन सह कर्षतीत्यर्थः।

३०६। "संख्यायाश्च गुणान्तायाः" (३)। गुण-शब्द अन्तमें रहनेपर संख्यावाचक शब्दके उत्तर कृ-धातुके योगसे कर्षण-अर्थमें डाच् होता है। यथा, द्विगुणाकरोति त्रिगुणाकरोति क्षेत्रम्, द्विगुणं त्रिगुणं कर्षतीत्यर्थः।

३०७। "समयाच्च यापनायाम्" (४)। 'यापन' बोध

---

(१) देये त्रा च (पा ५।४।५५)। तदधीने देये त्रा स्यात् सातिश्च क्रादि योगे। यथा, विप्राधीनन्देयं करोति विप्रत्रा करोति, विप्रत्रा सपद्यते। पक्षमें विप्रसात् करोति। देय बोध न होनेसे—राजसाद्भवति राष्ट्रम्। (२) कृञो द्वितीयतृतीयशम्बबीजात् कृषौ (पा ५।४।५८)। शम्बशब्दः प्रतिलोमे। (३) पा ५।४।५९। (४) पा ५।४।६०।

होनेसे समय शब्दके उत्तर डाच् होता है। यथा, समयाकरोति, समयं यापयतीत्यर्थः।

३०८। "सपत्र-निष्पत्राभ्यां व्यथने" (१)। 'व्यथन' अर्थमें सपत्र, निष्पत्र, इन दोनों प्रातिपदिकोंके उत्तर डाच् होता है। यथा, सपत्राकरोति मृगं व्याधः, सपत्रं शरम् अस्य शरीरे प्रवेशयन् व्यथयतीत्यर्थः; निष्पत्राकरोति, शरीरात् शरम् अपरपार्श्वे निष्कामयन् व्यथयतीत्यर्थः।

३०९। "निष्कुलान्निष्कोषणे" (२)। 'निष्कोषण' (३) अर्थमें निष्कुल इस प्रातिपदिकके उत्तर डाच् होता है। यथा, निष्कुलाकरोति दाड़िमम्, दाड़िमस्य अन्तरवयवान् बहिर्निःसारयतीत्यर्थः।

३१०। "सुखप्रियाभ्यामानुलोम्ये" (४)। 'आनुलोम्य' (आनुकूल्य) अर्थमें सुख, प्रिय, इन दोनों प्रातिपदिकोंके उत्तर डाच् होता है। यथा, सुखाकरोति प्रियाकरोति (*pleases, satisfies*) मित्रम्, अनुकूलाचरणेन आनन्दयतीत्यर्थः।

३११। "दुःखात् प्रातिलोम्ये" (५)। 'प्रातिलोम्य' (प्रातिकूल्य) बोध होनेपर दुःख इस प्रातिपदिकके उत्तर डाच् होता है। यथा, दुःखाकरोति भृत्यः, स्वामिनं पीड़यतीत्यर्थः (*the servant troubles his master*)।

---

(१) सपत्रनिष्पत्रादतिव्यथने (पा० ५।४।६१)। अतिव्यथन बोध नहीं होनेसे—सपत्रं निष्पत्रं वा करोति भूतलम्। (२) पा ५।४।६२। (३) कोषसे वहिष्करण। (४) सुखप्रियादानुलोम्ये (पा ५।४।६३)। (५) पा ५।४।६४।

३१२। "शूलात् पाके" (१)। पाक-अर्थमें 'शूल' इस प्रातिपदिकके उत्तर डाच् होता है। यथा, शूलाकरोति मांसम्, शूलेन पचतीत्यर्थः (*roasts the meat upon a spit*)।

३१३। "सत्यादशपथे" (२)। 'शपथ' भिन्न अन्य अर्थमें सत्य इस प्रातिपदिकके उत्तर डाच् होता है। यथा, सत्याकरोति भाण्डं वणिक्, क्रेतव्यमिति प्रतिजानीते (तथ्यं करोति) इत्यर्थः; सत्याकरोति मुनिः, सत्यं कथयतीत्यर्थः। शपथ अर्थमें—सत्यं करोति विप्रः।

३१४। "मद्रात् परिवापणे" (३)। 'परिवापण' अर्थात् मुण्डन अर्थमें मद्र-शब्दके उत्तर डाच् होता है। यथा, मद्राकरोति, माङ्गल्यं मुण्डनं करोति (*shaves ceremoniously*) माङ्गल्यमुण्डनेन संस्करोतीत्यर्थः। (भद्राच्चेति वक्तव्यम्—भद्राकरोति)। मुण्डन अर्थ न होनेसे—मद्रङ्करोति। (४)

तद्धित-परिशिष्ट।

१। "पुंवत्तसिलादिषु भाषितपुंस्कस्य" (५)। तसिल्, तल्, चरट्, जातीय, देशीय और पाश प्रत्यय परे रहनेसे भाषित-

---

(१) पा ५।४।६५। (२) पा ५।४।६६। (३) पा ५।४।६७। (४) अव्यक्तानुकरणाद् द्व्यजवरार्द्धादनितौ डाच् (पा ५।४।५७)। जिसके आधेमें दो अचोंसे कम न हो ऐसे अव्यक्तशब्दके अनुकरण अर्थमें डाच् होता है; 'डाचि बहुलं द्वे भवतः' डाच् परे अव्यक्त शब्दका द्वित्व होता है। यथा, पटत् करोति पटपटाकरोति; खरटत् करोति खरटखरटाकरोति। दो अचोंसे कम होनेसे डाच् नहीं होता। यथा, श्रत् करोति। इति शब्दके योगमें भी नहीं होता। यथा, पटत् इति करोति पटिति करोति। (५) बहुव्रीहिः समानाधिकरणानामिति वक्तव्यम् (काशिका)।

पुंस्क स्त्रीलिङ्ग शब्दका पुंवद्भाव होता है। यथा, उत्तरस्या दिशः उत्तरतः, उत्तरस्यां दिशि उत्तरतः, सर्व्वस्यां दिशि सर्व्वत्र, अर्पिता भूतपूर्व्वा अर्पितचरी, जात्या ब्राह्मणी ब्राह्मणजातीया, ईषदूना पण्डिता पण्डितदेशीया, कुत्सिता पाचिका पाचकपाशा।

२। "कल्पादिषु च"। कल्प, रूप, तर और तम प्रत्यय परे रहनेसे भाषितपुंस्क स्त्रीलिङ्ग शब्दका पुंवद्भाव होता है। यथा, ईषदूना पण्डिता पण्डितकल्पा, प्रशस्ता गायिका गायिकरूपा, इयमनयोरतिशयेन निपुणा निपुणतरा इयमासामतिशयेन चपला चपलतमा।

३। "ईवूपोर्विभाषा"। कल्प आदि प्रत्यय परे रहनेसे भाषितपुंस्क ईबन्त तथा ऊबन्त स्त्रीलिङ्ग शब्दका विकल्पसे पुंवद्भाव होता है। यथा ईषदूना विदुषी विदुषीकल्पा, विद्वत्कल्पा ; प्रशस्ता मेधाविनी मेधाविनीरूपा, मेधाविरूपा ; इयमनयोरतिशयेन मायाविनी मायाविनीतरा, मायावितरा ; इयमासामतिशयेन मनोहारिणी मनोहारिणीतमा, मनोहारितमा। ऐसे—वामोरूकल्पा, वामोरुकल्पा ; वामोरूरूपा, वामोरुरूपा ; वामोरूतरा, वामोरुतरा ; वामोरूतमा, वामोरुतमा। (१)।

४। "शसि बह्वल्पार्थस्य" (२)। शस् प्रत्यय परे रहनेसे

---

(१) वैयाकरणलोग ऊबन्तका पुंवद्भाव निषेध करके विकल्पसे ऊप्का ह्रस्वविधान करते हैं, और पुंवद्भावके अभावपक्षमें, स्थलविशेषमें विकल्पसे और स्थलविशेषमें नित्य ईप्का ह्रस्वविधान करते हैं ; तदनुसार—विदुषिकल्पा, विदुषीकल्पा, विद्वत्कल्पा और ब्राह्मणिकल्पा, ब्राह्मणकल्पा ऐसे हो सकते हैं। (२) शसि बह्वल्पार्थस्य पुंवद्भावो वक्तव्यः (वा० ३९२६)।

बह्वर्थक तथा अल्पार्थक भाषितपुंस्क स्त्रीलिङ्ग शब्दोंका पुंवद्भाव होता है। यथा, बह्वीभ्यो देहि, बहुशो देहि ; अल्पाभ्यो देहि, अल्पशो देहि।

५। "त्वतलोर्गुणवचनस्य" (१)। त्व और तल् प्रत्यय परे रहनेसे गुणवाचक भाषितपुंस्क स्त्रीलिङ्गका पुंवद्भाव होता है। यथा, निपुणाया भावः निपुणत्वम्, निपुणता ; चपलाया भावः चपलत्वम्, चपलता ; मेधाविन्या भावः मेधावित्वम्, मेधाविता ; प्रियवादिन्या भावः प्रियवादित्वम्, प्रियवादिता।

EXERCISE.

1. Define प्रत्यय (*suffix*, *affix* or *post-fix*). What do you mean by तद्धित-प्रत्यय (*secondary* or *nominal suffix*)? Distinguish in meaning between a तद्धित-प्रत्यय and a कृत्-प्रत्यय (*primary suffix*).

2. Derive :—शान्तनवः, आधिपत्यम्, औपम्यम, पाशुपतम्, पार्व्वती, नैयायिकः, शाक्तः, शात्तीकः, सौहार्दम्, क्षुधितः, हिरण्मयः, वाल्मीकीयम्, दौर्भ्रात्रम्, चातुर्म्मास्यम्, राजन्यकम्, वायव्यम्, तैलम्, तिलमात्रम्, आतिथ्यम्, पैत्रिकम्, सार्व्व-जनीनम्, कर्म्मठः, दण्ड्यः, जालिकः, तरस्वी, पक्षिणः, हैमनः, वार्षिकः, रथिकः, धार्म्मिकः, सैनिकः, कुलीनः, क्षत्रियः, पुत्रकः, स्त्रैणः, वातुलः, अंसलः, वाचालः, पङ्किलः, पिच्छिलः, श्रीलः, अर्णवः, मूर्द्धन्यः, पथ्यम्, सौख्यम्, मौनम्, मलिनम्, कर्म्मण्यः, राजत्वम्, भागिनेयः, मातुलः, पाण्डुरः, मघवः, ग्रामिणः, ब्राह्मः, वंहिष्ठः, शालीयः, माहिशीम्, म्रदिमा, रथ्या, वैयासकिः, नौका, प्रथिमा, हारिद्रम्, बहुतिथः, ज्यायान्, भास्वान्, कियान्, मृतकल्पः, निकटः, स्रग्वी, दृढीकृतः, आत्मवत्, कुटीरः, कुतः, कुत्र, तदा, सदा।

---

(१) वा ३९२७।

3. Form patronymics from :—पाण्डु, दक्ष, कश्यप, मनु, व्यास, द्रोण, रावण, भरद्वाज, वसुदेव, अर्जुन, यदु, पुरु, मरुत, धृतराष्ट्र. विनता, अदिति, सरमा, त्वष्ट, कुरु, दशरथ, दुहितृ, शकुनि, कुन्ती, सुमित्रा, रेवती, कन्या, गोधा, गङ्गा, सुभगा, कुलटा, सकण्डु, शण्डिल, पराशर, राधा, परस्त्री, मातृष्वसृ, पितृष्वसृ।

4. State the circumstances under which कन् is added. What is its influence on feminine bases? Give examples.

(See rule 72 of Seconndary or Nominal suffixes as well as rules 242-247 (अज्ञातकुत्सिताल्पह्रस्वानुकम्पासंज्ञासु कन्) and rule 248.

5. Substitute one word formed by the addition of a secondary suffix for each of the following :—कृपणस्य भावः ; शिवो देवता अस्य ; शतम् अवयवा अस्य ; शमी अस्ति अस्मिन् ; तृष्णा यस्या अस्ति तस्याम् ; भगिन्याः अपत्यं स्त्री ; विद्युत् अस्मिन्नस्ति ; रजतस्य विकारः ; ऋजोः भावः ; भूमौ भवः ; बलमस्यास्ति ; अयमनयोरतिशयेन प्रशस्यः ; पतिरस्या अस्ति ; अशुक्लः शुक्लो भवति ; ह्रस्वः पटः ; पश्चात् भवः ; दारु अवयवः यस्या सा ; षोडश वर्षाणि अस्य वयः ; अयमेषामतिशयेन वृद्धः ; तैलं पण्यं यस्य सः ; मांसेन जीवति ; कुत्सितोऽश्वः ; तारा एव ; बहूनां पूरणः ; वपुर्यस्य अस्ति सः ; तड़ित् यस्मिन्नस्ति तत् ; ईषदूना विदुषी ; उत्तरस्यां दिशि ; प्रशस्ता गायिका ; मेधाविन्या भावः ; संवत्सरेण निर्वृत्तम् ; चितः अपृथग्भूत ; पुरोहितस्य भावः ; तृषा अस्य संजाता।

6. Substitute a single Sanskrit word for each of the following :—One who drives in a carriage ; A woman having a little less retentive memory ; Lying in the middle ; Relating to the former life ; Pertaining to that time ; The year before last ; The small trunk of an elephant ; A bad grammarian ; One who lives by husbandry ; A warrior armed with a club ; Lasting till tomorrow ; The female descendants of Raghu ; A son of a rival wife ; Relating to one's own property.

7. Is it correct to say 'वैवार्षिक'? Distinguish in meaning between वैवर्षिको ग्रन्थः and विवार्षिको ग्रन्थः. Derive पिपासितः and बुभुक्षितः. बुभुक्षितः बालकः, पिपासिता नारी, बुभुक्षितम् अन्नम्, पिपासितं जलम्—are these expressions grammatically correct? Fully discuss the question.

8. Is there any grammatical anomaly in the expressions पर्व्वतीयो वृक्षः, पार्व्वतो राजा and पार्व्वतीया नारी?

9. Impugn or justify the words तरुणज्वरी and नवज्वरी.

10. Give the comparatives and superlatives of :—अन्तिक, स्थूल, वृद्ध, युवन्, दूर, दृढ़, उरु, स्थिर, प्रिय, दीर्घ, क्षुद्र, क्षिप्र, कृश, अल्प, पटु पृथु, प्रशस्य and बहु।

11. Translate into Sanskrit :—Idleness is the root of many evils. I have given Ram a wooden elephant. The starry firmament fills his heart with joy. With great sorrow I found the mango trees in my garden almost ruined. Health is dearer to all than wealth. You are the dearest and nearest friend of mine. God loves pious and virtuous men. Gold is the heaviest of all metals. No one likes a bad female cook. Year before last, I saw a flock of pigeons in this house. Another day they went to a place abounding in lotuses. The kindhearted woman nursed the patient like his mother. Tomorrow morning I shall rise early and bathe in the Ganges. His path lay through a forest infested with wild boars and tigers. My soul *is my own* (स्वतन्त्रः). You have no command over my soul. The soul *acknowledges* (अङ्गीकरोति) only one lord. *If she goes astray* (सा चेत् उन्मार्गगामिनी स्यात्), the king *must punish* (दण्डयेत्) her. Don't you believe that *the way of knowledge* (ज्ञानमार्ग) is better than *the way of devotion* (भक्तिमार्ग)?

स्त्री-प्रत्यय ।

१ । "स्त्रियाम्" (१) । इस प्रकरणमें विहित प्रत्यय सब स्त्री-प्रत्यय हैं और जो सब कार्य्य विहित होते हैं वे स्त्रीलिङ्गमें ही होते हैं ऐसा समझना चाहिये ।

२ । "अदन्ताट्टाप्" (२) । अकारान्त प्रातिपदिकके उत्तर आप् होता है ; प् इत्, आ रहता है । यथा, कृश् (*lean*) कृशा, दीन (*poor*) दीना, मलिन (*dirty*) मलिना, कृपण (*miserly*) कृपणा, क्रूर (*cruel*) क्रूरा, सरल (*sincere*) सरला, प्रबल (*strong*) प्रबला, अचल अचला, निपुण (*clever*) निपुणा, चतुर (*dexterous*) चतुरा, तरल तरला, चपल (*fickle*) चपला, दक्षिण दक्षिणा, उत्तर उत्तरा, पूर्व्व पूर्व्वा, पश्चिम पश्चिमा. प्रथम प्रथमा, द्वितीय द्वितीया, तृतीय तृतीया, अनुकूल (*favourable*) अनुकूला, प्रतिकूल (*unfavourable*) प्रतिकूला, मनोहर (*lovely*) मनोहरा ।

३ । "आपि प्रत्ययकात् पूर्व्वस्यात इत्" (३) । आप् होनेपर ककारके पूर्व्ववर्त्ती अकारके स्थानमें इकार होता है। यथा, नायक (*hero*) नायिका (*heroine, mistress*), पाचक पाचिका (*a female cook*), नाटक नाटिका, पालक

---

(१) पा ४।१।३ । (२) अजाद्यतष्टाप् (पा ४।१।४) । अजादि यथा, अज अजा (*she-goat*), एडक (*ram*) एडका (*ewe*), अश्व अश्वा, मूषिक मूषिका, बाल बाला, वत्स (*calf*) वत्सा, होड (*beau*) होडा (*belle*) इत्यादि । (३) प्रत्ययस्थात्

पालिका, कारक कारिका, बोधक बोधिका, साधक साधिका, बालक बालिका।

४। "नाष्टकादेः" (१)। अष्टका आदिके ककारके पूर्व्ववर्त्ती अकारके स्थानमें इकार नहीं होता। यथा, अष्टका (२), इष्टका, कन्यका (*daughter*), करका (*hail*), चटका (*hen-sparrow*), तारका (*star*), अधित्यका (३), उपत्यका (३), क्षिपका (४)।

५। "ईप् गौरादिभ्यः" (५)। गौर आदि अकारान्त प्रातिपदिकोंके उत्तर ईप् होता है; प् इत, ई रहता है।

६। "ईपि लोपोऽवर्णस्य" (६)। ईप् होनेपर प्रातिपदिकके अन्तस्थित अ-वर्णका लोप होता है। यथा, गौर गौरी (*a young girl of eight years old*), कुमार कुमारी (*virgin, a young unmarried girl*), किशोर किशोरी, सुन्दर, सुन्दरी, तरुण तरुणी (*a young woman*), पितामह पितामही, मातामह मातामही, नद नदी, तट तटी, नट नटी (*actress*), पट पटी, कदल कदली, स्थल स्थली (*place*), काल काली,

---

कात् पूर्व्वस्यात इदाप्यसुपः (पा ७।३।४४)। (१) त्यकनश्च निषेधः (वा० ४५२६)। (२) अष्टका पितृदैवत्ये (*worship of the manes on certain days*)—वा० ४५२४। (३) उपत्यकाद्रेरासन्ना भूमिरूर्द्ध्वमधित्यका इत्यमरः। पर्व्वतस्य आरूढ़स्थलम् अधित्यका (*a table-land*); पर्व्वतस्य आसन्नं स्थलम् उपत्यका (*land at the foot of a mountain*)। (४) क्षिपकादीनां च न (वा० ४५३०) क्षिपका, सेवका (*a female servant or sewer*)। (५) षिद्गौरादिभ्यश्च (पा ४।१।४१)। (६) यस्येति च (पा ६।४।१४८)।

नाग नागी, मण्डल मण्डली, सल्लुक सल्लुकी, वेतस वेतसी, अतस अतसी, आमलक आमलकी, तूण तूणी, द्रोण द्रोणी, वदर वदरी, कवर कवरी (*a braid of hair*)। (१)

७। "जातौ जातेरदन्ताद्दीप्" (२)। जाति बोध होनेसे जातिवाचक अकारान्त प्रातिपदिकके उत्तर ईप् होता है। यथा, सिंह सिंही, व्याघ्र व्याघ्री, भल्लूक भल्लूकी, मृग मृगी, हरिण हरिणी, कुरङ्ग (*buck*) कुरङ्गी (*doe*), गर्द्दभ गर्द्दभी, शूकर शूकरी (*sow*), कुक्कुर कुक्कुरी (*bitch*), जम्बुक (*jackal*) जम्बुकी, शृगाल शृगाली, विडाल विड़ाली, घोटक घोटकी (*mare*), महिष महिषी, हंस हंसी, सारस (*crane*) सारसी, चक्रवाक चक्रवाकी (*ruddy goose*), मानुष मानुषी (*woman*), ब्राह्मण ब्राह्मणी (*a female of the Brahmin caste*), गोप (*cowherd*) गोपी, चण्डाल चण्डाली, पिशाच पिशाची, राक्षस राक्षसी, निशाचर निशाचरी (*she-devil, a harlot*)।

८। "नाजादेः" (३)। जातिवाचीमें अज आदि प्रातिपदिकोंके उत्तर ईप् नहीं होता। यथा, अज अजा (*she-goat*) कोकिल कोकिला, चटक चटका (*hen-sparrow*), अश्व अश्वा, मूषिक मूषिका, पुत्रक पुत्रिका, बाल बाला, वत्स वत्सा, ज्येष्ठ ज्येष्ठा, कनिष्ठ कनिष्ठा, शूद्र शूद्रा (*wife of a*

(१) अनडुह+ईप्=अनडुही, अनड्वाही (आमनडुहः स्त्रियां वा)।
(२) जातेरस्त्रीविषयादयोपधात् (पा ४।१।६३)। (३) अजाद्यतष्टाप् (पा ४।१।४)।

Sudra)। महत्-शब्द पूर्व्व में रहनेसे शूद्र-शब्दके उत्तर ईप् होता है। यथा, महाशूद्री (*the wife of a cowherd*)। शूद्र-जातिकी स्त्रीका बोध होनेसे भी होता है। यथा, शूद्री (*a female of the Sudra caste*)।

९। "न योपधाद्गवयादिवर्ज्जात्" (१)। जिन जातिवाची प्रातिपदिकोंके उपधास्थलमें य रहता है उनके उत्तर ईप् नहीं होता। यथा, वैश्य वैश्या। गवय (नीलगाय, *Gayal*), हय (*horse*), मुकय (*a kind of animal*), मत्स्य, मनुष्य इनके उत्तर (ईप्) होता है। यथा, गवयी, हयी, मुकयी।

N. B.—सूर्य्याद्देवतायां चाप् वाच्यः। सूर्य्यागस्त्ययोश्छे च ङ्यां च (छ = ईय, ङि = ईप्)। इन दोनों वार्त्तिकोंके अनुसार सूर्य्यस्य स्त्री (देवता, *the goddess wife*) सूर्य्या (*the goddess wife of the Sun*), (मनुष्यदेहधारिणी, *the human wife*) सूरी (कुन्ती, *Kunti, the mother of the Pandavas*)।

१०। "लोपो मत्स्यमनुष्ययोर्यस्य" (२)। ईप् होनेपर मत्स्य और मनुष्य शब्दोंके 'य' का लोप होता है। यथा, मत्सी, मनुषी (३)।

११। "ऋदन्तादीप" (४)। ऋकारान्त प्रातिपदिकके उत्तर

---

(१) जातेरस्त्रीविषयादयोपधात् (पा ४।१।६३) ; योपधप्रतिषेधे हयगवयमुकयमत्स्यमनुष्याणामप्रतिषेधः (वा० २४९५)। (२) सूर्य्यतिष्यागस्त्यमत्स्यानां य उपधायाः (पा ६।४।१४९) ; हलस्तद्धितस्य (पा ६ ४।१५०)। (३) सुपद्मके अनुसार यत् अव्ययका लोप नहीं होता। यथा मनुष्यी। (४) ऋन्नेभ्यो ङीप् (पा ४।१।५)।

ईप् होता है। यथा, दातृ दात्री, धातृ धात्री, कर्त्तृ कर्त्री, जनयितृ जनयित्री, प्रसवितृ प्रसवित्री ।

१२। "न स्वस्रादेः" (१)। ऋकारान्तमें स्वसृ आदि प्रातिपदिकोंके उत्तर ईप् नहीं होता। यथा, स्वसा, माता, दुहिता, याता, ननान्दा, तिस्रः, चतस्रः ।

१३। "नान्तादीप्" (२)। नकारान्त प्रातिपदिकके उत्तर ईप् होता है। यथा, कामिन् कामिनी (*woman*), मानिन् मानिनी, मायाविन् मायाविनी, मेधाविन् मेधाविनी, तपस्विन् तपस्विनी, विलासिन् विलासिनी, अधिकारिन् अधिकारिणी, अनुगामिन् अनुगामिनी, उपकारिन् उपकारिणी, अनुरागिन् अनुरागिणी, प्रियवादिन् प्रियवादिनी, मनोहारिन् मनोहारिणी ।

१४। "उपधाया लोपोऽनः" (३)। ईप् होनेसे अन्-भागान्त प्रातिपदिकके उपधाका लोप होता है। यथा, राजन् राज्ञी। उपधा म-संयुक्त अथवा व-संयुक्त वर्णमें मिला रहनेसे नहीं होता।

१५। "न संख्यायाः" (४)। नकारान्तमें संख्यावाचक प्रातिपदिकके उत्तर ईप् नहीं होता। यथा, पञ्च, सप्त, अष्ट, नव, दश।

१६। "न मनन्तात्" (४)। नकारान्तमें मन्-भागान्त

---

(१) न षट्स्वस्रादिभ्यः (पा ४।१।१०)। स्वसा तिस्रश्चतस्रश्च ननान्दा दुहिता तथा। याता मातेति सप्तैते स्वस्रादय उदाहृताः ॥ (२) ऋन्नेभ्यो ङीप् (पा ४।१।५) (३) अल्लोपोऽनः (पा ६।४।१३४)। न संयोगाद्वमन्तात् (पा ६।४।१३७)। (४) न षट्स्वस्रादिभ्यः (पा ४।१।१०)। मनः (पा ४।१।११)।

प्रातिपदिकके उत्तर ईप् नहीं होता। यथा, सीमा, पामा, सुदामा, अतिमहिमा।

१७। "नानन्ताद् बहुव्रीहौ" (१)। बहुव्रीहि-समास होनेसे अन्-भागान्त प्रातिपदिकके उत्तर ईप् नहीं होता। यथा, बहूनि सन्त्यस्यां पर्व्वाणि बहुपर्व्वा वेणुयष्टिः (*a bamboo stick having many knots*)।

१८। "विभाषा डाप्" (२)। बहुव्रीहि-समास होनेसे अन्-भागान्त प्रातिपदिकके उत्तर विकल्पसे डाप् होता है; ड् प् इत्, आ रहता है। यथा, बहुपर्व्वा, बहुपर्व्वे, बहुपर्व्वाः; पक्षमें—बहुपर्व्वा, बहुपर्व्वाणौ, बहुपर्व्वाणः।

१९। "ईप् चोपधालोपिनो वा" (३)। जिन अन्-भागान्त प्रातिपदिकोंके उपधाका लोप हो सकता है, बहुव्रीहिसमास होनेसे उनके उत्तर विकल्पसे डाप् और ईप् होते हैं। यथा, बहवः सन्त्यत्र राजानः बहुराजा, बहुराजे, बहुराजाः; बहुराज्ञी, बहुराज्ञ्यौ, बहुराज्ञ्यः; पक्षमें बहुराजा, बहुराजानौ बहुराजानः।

२०। "युवत्यादयः" (४)। युवति आदि शब्द निपातनसे सिद्ध होते हैं। यथा, युवन् युवतिः, युवती (४), यूनी; श्वन्, शुनी; मघवन् मघोनी, मघवती।

२१। "उद्दृद्भ्यामीप्"। उकारेत् और ऋकारेत् प्रत्ययोंके

(१) अनो बहुव्रीहेः (पा ४।१।१२)। (२) डाबुभाभ्यामन्यतरस्याम् (पा ४।१।१३)। (३) अन उपधालोपिनोऽन्यतरस्याम् (पा ४।१।२८)। (४) यूनस्तिः (पा ४।१।७७)। युवती इति तु यौतेः शत्रन्तात् ङीपि बोध्यम्। भट्टोजि। श्वयुवमघोनामतद्धिते (प ६।४।१३३)।

योगसे निष्पन्न प्रातिपदिकोंके उत्तर ईप् होता है। यथा, उकारेत्—भवत् भवती। ऐसे, यावत् यावती, कियत् कियती, श्रीमत् श्रीमती, बुद्धिमत् बुद्धिमती, पुत्त्रवत् पुत्त्रवती, लज्जावत् लज्जावती, बलवत् बलवती, प्रभावत् प्रभावती, कृतवत् कृतवती, प्रेयस् प्रेयसी, श्रेयस् श्रेयसी, गरीयस् गरीयसी, लघीयस् लघीयसी, कनीयस् कनीयसी। ऋकारेत्—सत् सती, रुदत् रुदती, शृण्वत् शृण्वती, द्विषत् द्विषती, बिभ्रत् बिभ्रती, कुर्व्वत् कुर्व्वती, गृह्णत् गृह्णती, जानत् जानती।

२२। "शतुर्नुन् भू-दिवादिभ्याम्"। ईप् होनेसे भ्वादि और दिवादि गणीय धातुओंके उत्तर विहित शतृप्रत्ययके स्थानमें नुन् होता है; उ न् इत्, न् रहता है, न् पूर्व्ववर्त्ती होकर तकारमें मिल जाता है। यथा, भ्वादिगणीय—धावत् धावन्ती, गच्छत् गच्छन्ती, पतत् पतन्ती, तिष्ठत् तिष्ठन्ती, चलत् चलन्ती, पश्यत् पश्यन्ती, कारयत् कारयन्ती (१), स्मारयत् स्मारयन्ती, स्थापयत् स्थापयन्ती, पालयत् पालयन्ती। दिवादि-गणीय—दीव्यत् दीव्यन्ती, नश्यत् नश्यन्ती, नृत्यत् नृत्यन्ती, जीर्य्यत् जीर्य्यन्ती, मुह्यत् मुह्यन्ती।

२३। "वा तुदादेः" (२)। ईप् होनेसे तुदादिगणीय धातुके उत्तर विहित शतृ-प्रत्ययके स्थानमें विकल्पसे नुन् होता है। यथा, तुदत् तुदन्ती, तुदती; इच्छत् इच्छन्ती, इच्छती;

---

(१) णिच् आदि प्रत्ययान्त धातु भी भ्वादि गणीय माने जाते हैं।

(२) आच्छीनद्योर्नुम् (पा ७।१।८०)।

पृच्छत् पृच्छन्ती, पृच्छती ; स्पृशत् स्पृशन्ती, स्पृशती ; सिञ्चत् सिञ्चन्ती, सिञ्चती।

२४। "अदादेराद्न्तात्" (१)। ईप् होनेसे आकारान्त अदादिगणीय (२) धातुके उत्तर विहित शतृ-प्रत्ययके स्थानमें विकल्पसे नुन् होता है। यथा, यात् यान्ती, याती ; मात् मान्ती, माती ; भात् भान्ती, भाती ; स्नात् स्नान्ती, स्नाती।

२५। "विभाषा स्यतुः" (१)। ईप् होनेसे स्यतृ-प्रत्ययके स्थानमें विकल्पसे नुन् होता है। यथा, भविष्यत् भविष्यन्ती, भविष्यती ; करिष्यत् करिष्यन्ती, करिष्यती ; दास्यत् दास्यन्ती, दास्यती ; यास्यत् यास्यन्ती, यास्यती।

२६। "टित्षिद्भ्यामीप्" (३)। टकारेत् और षकारेत् प्रत्ययोंके योगसे निष्पन्न प्रातिपदिकोंके उत्तर ईप् होता है। यथा, टकारेत्-प्रत्यय-निष्पन्न —गायन गायनी, कर्म्मकर कर्म्मकरी, अर्थकर अर्थकरी, यशस्कर यशस्करी, निशाचर निशाचरी, चतुर्थ चतुर्थी, पञ्चम पञ्चमी, षष्ठ षष्ठी, सप्तम सप्तमी, अष्टम अष्टमी, नवम नवमी, दशम दशमी, एकादश एकादशी, द्वादश द्वादशी, त्रयोदश त्रयोदशी, चतुर्द्दश चतुर्द्दशी, षोड़श षोड़शी, द्वय द्वयी, त्रय त्रयी, चतुष्टय चतुष्टयी, दयामय दयामयी, स्वर्णमय स्वर्णमयी, मृन्मय मृन्मयी, हिरण्मय हिरण्मयी। षकारेत्-प्रत्यय-

---

(१) आच्छीनद्योर्नुम् (पा ७।१।८०)। (२) दरिद्रा भिन्न। (३) षिद्गौरादिभ्यश्च (पा ४।१।४१)। ङीष् स्यात्। टिड्ढाणञ्द्वयसज्दघ्नञ्मात्रच्तयप्ठक्ठञ्कञ्क्वरपः (पा ४।१।१५)। (टित् + ढ + अण् + अञ् + द्वयसच् + दघ्नच् + मात्रच् + तयप् + ठक् + ठञ् + कञ् + क्वरप्)।

निष्पन्न--नर्त्तक नर्त्तकी, रजक रजकी, मानव मानवी, वैष्णव वैष्णवी, द्रौपद द्रौपदी, पाञ्चाल पाञ्चाली, मागध मागधी, मैथिल मैथिली, पार्व्वत पार्व्वती, चातुर चातुरी, माधुर माधुरी, भागिनेय भागिनेयी, पौत्त्र पौत्त्री, दौहित्र दौहित्री, ईदृश ईदृशी, तादृश तादृशी, यादृश, यादृशी, कीदृश कीदृशी, सदृश सदृशी, एतादृश एतादृशी, अन्यादृश अन्यादृशी।

२७। "ईपि लोपः ष्यणो हलः" (१)। ईप् होने पर हल् (व्यञ्जन)-वर्णके परवर्त्ती ष्यण् प्रत्ययका लोप होता है। यथा, गार्ग्य गार्गी, वात्स्य वात्सी, आगस्त्य आगस्ती, बाभ्रव्य बाभ्रवी, माण्डव्य माण्डवी, मौद्गल्य मौद्गली, कौण्डिन्य कौण्डिनी (२)।

२८। "प्रागादेरीप्" (३)। प्राच् आदि प्रातिपदिकोंके उत्तर ईप् होता है। यथा, प्राच् प्राची, अवाच् अवाची।

२९। "प्रतीच्यादयः" (३)। प्रतीची आदि शब्द निपातनसे सिद्ध होते हैं। यथा, प्रत्यच् प्रतीची, प्रत्यञ्ची; उदच् उदीची, उदञ्ची; तिर्य्यंच् तिरश्ची, तिर्य्यञ्ची।

३०। "जातेरदन्ताज्जायायाम्" (४)। जाया (*wife*) अर्थमें जातिवाचक अकारान्त प्रातिपदिकके उत्तर ईप् होता है। यथा ब्राह्मणस्य जाया ब्राह्मणी, शूद्रस्य जाया शूद्री, गोपस्य

---

(१) हलस्तद्धितस्य (पा ४।१।१५०)। (२) ऐसे ही—चातुर्य्य चातुरी, माधुर्य्य माधुरी, औचित्य औचिती, मैत्र्य मैत्री इत्यादि। (३) अञ्चतेश्चोपसंख्यानम्। (४) पुंयोगादाख्यायाम् (पा ४।१।४८)।

जाया घोपी, गणकस्य जाया गणकी, नापितस्य जाया नापिती, निषादस्य जाया निषादी।

३१। "न पालकान्तात्" (१)। पालक शब्द अन्तमें रहनेसे ऐसे जाति-वाचक प्रातिपदिकोंके उत्तर ईप् नहीं होता। यथा, गोपालकस्य जाया गोपालिका, पशुपालकस्य जाया पशुपालिका, अश्वपालकस्य जाया अश्वपालिका।

३२। "भवादेरानीपौ" (२)। जाया-अर्थमें भव आदि (३) प्रातिपदिकोंके उत्तर आन् और ईप् होते हैं। यथा, भवस्य जाया भवानी, सर्व्वस्य जाया सर्व्वाणी, रुद्रस्य जाया रुद्राणी, मृड़स्य जाया मृड़ानी, इन्द्रस्य जाया इन्द्राणी, वरुणस्य जाया वरुणानी।

३३। "नलोपो ब्रह्मणः" (४)। आन् होने पर ब्रह्मन्-शब्दके न् का लोप होता है। यथा, ब्रह्मणो जाया ब्रह्माणी।

३४। "मातुलादान् विभाषा" (५)। मातुल-शब्दके उत्तर विकल्पसे आन् होता है। यथा, मातुलस्य जाया मातुलानी, मातुली (६)। ऐसे—उपाध्यायानी, उपाध्यायी।

---

(१) पालकान्तान्न (वार्त्तिक २४६१)। (२) इन्द्रवरुणभवशर्व्वरुद्रमृड़हिमारण्य-यवयवनमातुलाचार्य्याणामानुक (पा ४।१।४९)। मातुलोपाध्याययोरानुग्वा। आचार्य्यादणत्वञ्च (वार्त्तिक २४७७)। अर्य्यक्षत्रियाभ्यां वा स्वार्थे (वार्त्तिक २४७८)। (३) भव, सर्व्व (शर्व्व), रुद्र, मृड़, इन्द्र, वरुण, ब्रह्मन्, मातुल, क्षत्रिय, अर्य्य, उपाध्याय, आचार्य्य। (४) ब्रह्माणमानयति जीवयतीति कर्म्मण्यन्; ब्रह्मन्+अन्+णिच्+अण्+ईप्=ब्रह्माणी (सिद्धान्तकौमुदी)। (५) मातुलोपाध्याययोरानुग्वा। (६) आचार्य्यादणत्वञ्च (वार्त्तिक २४७७)। न ण नहीं होता। यथा, आचार्य्यानी।

३५। "वा क्षत्रियादेरानीपौ"। क्षत्रिय आदि प्रातिपदिकों के उत्तर विकल्पसे आन् और ईप् होते हैं। यथा, क्षत्रिय क्षत्रियाणी, क्षत्रिया (क्षत्रियजातीया स्त्री, *a woman of the Kshatriya caste*), क्षत्रियस्य जाया क्षत्रियी (क्षत्रियपत्नी, *the wife of a Kshatriya*); अर्य्य अर्य्यानी, अर्य्या (वैश्य-जातीया स्त्री, स्वामिनी वैश्या वा, *a woman or a mistress of the Vaishya caste*), अर्य्यस्य जाया अर्य्यी (*the wife of a Vaishya*); उपाध्याय उपाध्यायानी, उपाध्यायी (उपाध्यायपत्नी, *the wife of a preceptor, preceptress*), उपाध्यायी, उपाध्याया (स्वयमध्यापिका, *a female preceptor*); आचार्य्य आचार्य्यानी (१) (आचार्य्यपत्नी, *the wife of a holy preceptor*), आचार्य्या (स्वयमध्यापिका, *a spiritual preceptress*)।

३६। "अर्थविशेषे हिमादेः" (२)। अर्थविशेषमें हिम, अरण्य, यव, यवन, इन चारों प्रातिपदिकोंके उत्तर नित्य आन् और ईप् होते हैं। यथा, महत् हिमं हिमानी (*a mass of ice, snow or hoar-frost*), महत् अरण्यम् अरण्यानी (*a large or extensive forest*), दुष्टो यवः यवानी (*a class of inferior barley*), यवनानां लिपिः यवनानी (*a form of script used by the Yavans, the writing of the Yavans*)।

---

(१) न ण नहीं होता। मातुलस्य जाया मतान्तरसे मातुला भी होता है।
(२) हिमारण्ययोर्महत्त्वे ; यवाद्दोषे ; यवनाल्लिप्याम् ; (वार्त्तिक १४७२-७३-७४)।

३७। "वा शोणादेरीप्" (१)। शोण आदि प्रातिपदिकोंके उत्तर विकल्पसे ईप् होता है। यथा, शोणी शोणा, चण्डी चण्डा (*a wrathful woman*), अराली अराला (*crooked, bent*), कृपणी कृपणा, कल्याणी कल्याणा, पुराणी पुराणा, उदारी उदारा, विकटी विकटा, विशाली विशाला, विशङ्कटी विशङ्कटा (*great, big*)।

३८। "अवयवादबहुव्रीहौ" (२)। बहुव्रीहि-समास होनेसे अवयव-वाचक प्रातिपदिकोंके उत्तर विकल्पसे ईप् होता है। यथा, चन्द्रमुखी चन्द्रमुखा, विधुमुखी विधुमुखा, सुकेशी सुकेशा, अतिकेशी अतिकेशा, ताम्रनखी ताम्रनखा। उपधामें संयुक्त वर्ण रहनेसे केवल आप् होता है। यथा, सुगुल्फा (*a female having pretty ankles*)।

३९। "न संज्ञायां नखमुखाभ्याम्" (३)। संज्ञा बोध होनेसे नख और मुख इन दोनों अवयव-वाचक प्रातिपदिकोंके उत्तर ईप् नहीं होता। यथा, शूर्पणखा (*Ravan's sister who had finger-nails as wide as winnowing pans*), गौरमुखा (*a fair-faced woman*)। संज्ञा बोध नहीं होनेसे ईप् होता है। यथा, शूर्पनखी (४) राक्षसी (*a Rakshas woman having finger-nails as wide as winnow-*

(१) शोणात् प्राचाम् (पा ४।१।४३)। (२) स्वाङ्गाच्चोपसर्ज्जनादसंयोगोपधात् (पा ४।१।५४)। (३) नखमुखात् संज्ञायाम् (पा ४।१।५८)। (४) पूर्व्वपदात् संज्ञायामगः (पा ८।४।३); शूर्पनखी पद संज्ञा नहीं होनेके कारण इस का न ण नहीं हुआ।

ing-baskets), ताम्रमुखी कन्या (*a girl having a copper-coloured face*) ।

४० । "न क्रोड़ादेः" (१) । क्रोड़ आदि अवयव-वाचक प्रातिपदिकोंके उत्तर ईप् नहीं होता । यथा, सुक्रोड़ा, तीक्ष्ण-खुरा, चारुशिखा, दीर्घशफा (*having long hoofs*) । बहुस्वर-विशिष्ट अवयव-वाचक प्रातिपदिकोंके उत्तर भी ईप् नहीं होता ; यथा, सुजघना (*having beautiful hips and loins*) ।

४१ । "न संयुक्तोपधादङ्गादिवर्ज्जात्" (२) । जिन अवयववाचक प्रातिपदिकोंके उपधास्थलमें संयुक्त वर्ण रहता है उनके उत्तर ईप् नहीं होता । यथा, मृगनेत्रा, चारुगुल्फा, लोलजिह्वा । अङ्ग आदिके उत्तर (विकल्पसे ईप्) होता है । यथा, कृशाङ्गी कृशाङ्गा, मृदुगात्री मृदुगात्रा, विम्बोष्ठी विम्बोष्ठा, कोकिलकण्ठी कोकिलकण्ठा, कुन्ददन्ती कुन्ददन्ता, चारुकर्णी चारुकर्णा, दीर्घजङ्घी दीर्घजङ्घा, सत्पुच्छी सत्पुच्छा, तीक्ष्णशृङ्गी तीक्ष्णशृङ्गा । (३)

४२ । "न द्व्यधिकस्वरान्नासिकोदरवर्ज्जात्" (२) । जिन

(१) न क्रोड़ादिबह्वचः (पा ४।१।५६) । (२) स्वाङ्गाच्चोपसर्ज्जनादसंयोगोपधात् (पा ४।१।५४) । नासिकोदरौष्ठजङ्घादन्तकर्णशृङ्गाच्च (पा ४।१।५५) । अङ्गगात्रकण्ठेभ्यो वक्तव्यम् (वार्त्तिक) । (३) वर्णादनुदात्तात्तोपधात्तो नः । तकारोपध अनुदात्तान्त मुख्यार्थे व्यवहृत वर्णवाचक प्रातिपदिकोंके उत्तर विकल्पसे ईप् और त के स्थानमें न होता है । यथा, एत (*white, of variegated colour*) एनी एता, श्येत (*white*) श्येनी श्येता, हरित हरिणी हरिता, रोहित (*red*) रोहिणी रोहिता । किन्तु असिता, पलिता ; पिशङ्गी पिशङ्गा ; कल्माषी, शारङ्गी (*of variegated colour*) ।

अवयववाचक प्रातिपदिकोंमें दो से अधिक स्वरवर्ण रहते हैं उनके उत्तर ईप् नहीं होता। यथा, मृगनयना, चन्द्रवदना, चारुदशना (*a woman having beautiful teeth*). पृथुजघना, लोलरसना। नासिका तथा उदरके उत्तर (विकल्पसे ईप्) होता है। यथा, तुङ्गनासिकी तुङ्गनासिका (*a woman having high or elevated nose*), कृशोदरी कृशोदरा (*a thin-waisted woman or a woman having a thin waist or belly*)।

४३। "न सह-नञ्-विद्यमानपूर्व्वात्" (१)। सह, नञ् और विद्यमान शब्द पूर्व्वमें रहनेसे अवयववाचक प्रातिपदिकोंके उत्तर ईप् नहीं होता। यथा, सकेशा, अकेशा, विद्यमानकेशा।

४४। "नित्यमूधसष्टेश्च नः" (२)। बहुव्रीहि-समास होनेसे ऊधस् (*udder*) शब्दके उत्तर नित्य ईप् होता है और 'टि' के स्थानमें न होता है। यथा, पीनमस्या ऊधः पीनोध्नी (*a cow with a large udder*), घटवदस्या ऊधः घटोध्नी (*a pot-uddered cow or a cow with a full udder*), द्विविधमस्या ऊधः द्विविधोध्नी, अति अस्या ऊधः अत्यूध्नी।

४५। "दामहायनाभ्यां संख्यायाः" (३)। बहुव्रीहि-

---

(१) सहनञ्विद्यमानपूर्व्वाच्च (पा ४।१।५७)। (२) ऊधसोऽनङ् (पा ५।४।१३१); बहुव्रीहेरूधसो ङीष् (पा ४।१।२५); संख्याव्ययादेर्ङीप् (पा ४।१।२६)। (३) दामहायनान्ताच्च (पा ४।१।२७)। त्रिचतुर्भ्यां हायनस्य णत्वं वाच्यम् (वा० ५०३८); वयोवाचकस्यैव हायनस्य ङीब् णत्वं चेष्यते (वा० २४४१)। हायनो वयसि स्मृतः।

समास होनेसे संख्यावाचक शब्दके परवर्त्ती दामन्, हायन इन दोनों प्रातिपदिकोंके उत्तर ईप् होता है। यथा, द्वे अस्या दाम्नी द्विदाम्नी (*a cow tied with two ropes*), त्रीण्यस्या दामानि त्रिदाम्नी, द्वावस्या हायनौ द्विहायनी, त्रिहायणी, चतुर्हायणी, (*four years old*) गौः। हायन-शब्द वयोवाचक नहीं होनेसे ईप् तथा णत्व नहीं होता। यथा, द्विहायना (*standing for two years*), त्रिहायना, चतुर्हायना (*standing for four years*) शाला (*a house*)।

४६। "इदन्ताद्विभाषा" (१)। इकारान्त प्रातिपदिकोंके उत्तर विकल्पसे ईप् होता है। यथा, श्रेणी श्रेणिः, राजी राजिः, आली आलिः, कटी कटिः, रात्री रात्रिः, रजनी रजनिः, शारी शारिः, यष्टी यष्टिः, अही अहिः, कपी कपिः, मुनी मुनिः, शकटी शकटिः।

४७। "नित्यं सख्युः" (२)। सखि-शब्दके उत्तर नित्य ईप् होता है। यथा, सखी (*a female friend*)।

४८। "न क्तेः" (१)। क्ति-प्रत्ययसे निष्पन्न इकारान्त प्रातिपदिकोंके उत्तर ईप् नहीं होता। यथा, गतिः, स्थितिः, कृतिः, मतिः, भक्तिः, मुक्तिः, युक्तिः, बुद्धिः। (३)

४६। "वा शक्तिपद्धतिभ्याम्" (४)। शक्ति और

---

(१) बह्वादिभ्यश्च (पा ४।१।४५)। कृदिकारादक्तिनः। सर्व्वतोऽक्तिन्नर्थादित्येके।
(२) सख्यशिश्वीति भाषायाम् (पा ४।१।६२)। (३) ऐसे क्ति-प्रत्ययके अर्थमें (आक्रोशे) अनि प्रत्ययान्त अजननिः (अनुत्पत्तिः)। (४) बह्वादिभ्यश्च (पा ४।१।४५)। सर्व्वतोऽक्तिन्नर्थादित्येके।

पद्धति शब्दोंके उत्तर विकल्पसे ईप् होता है। यथा, शक्ती शक्तिः (*a spear*) (१), पद्धती पद्धतिः (*path, method, course*)।

५०। "पत्युर्नो यज्ञसंयोगे" (२)। यज्ञ-संयोग अर्थात् यज्ञके फलभागित्व बोध होनेसे पति इस प्रातिपदिकके उत्तर ईप् होता है और इके स्थानमें न होता है। यथा, वशिष्ठस्य पत्नी, वशिष्ठानुष्ठितयज्ञफलभोक्त्रीत्यर्थः। ग्रामस्य पतिरियम् यहां पति-शब्दके अर्थ अधिकारिणी है यज्ञफलभोक्त्री नहीं इसलिये ईप् और न नहीं हुआ (३)।

५१। "सपत्नीप्रभृतयः" (४)। सपत्नी आदि शब्द निपातन-सिद्ध हैं। यथा, समानः पतिरस्याः सपत्नी (*co-wife*), एकः पतिरस्याः एकपत्नी (साध्वी, *a chaste wife*), वीरः पतिरस्याः वीरपत्नी, वृद्धः पतिरस्याः वृद्धपत्नी, भद्रः पतिरस्याः भद्रपत्नी, पञ्च पतयोऽस्याः पञ्चपत्नी (द्रौपदी), पतिरस्त्यस्याः पतिवत्नी (जीवद्भर्तृका, *a woman whose husband is alive*, अन्यत्र पतिमती पृथिवी), अन्तरस्त्यस्याः अन्तर्वत्नी (गर्भिणी, *a pregnant woman*)।

५२। "पदो बहुव्रीहौ" (५)। बहुव्रीहि-समास होनेसे

---

(१) शक्तिः शस्त्रे—अस्त्र अर्थमें। (२) पा ४।१।३३। (३) *The feminine of* पति *is* पत्नी *only in the sense of wife.* किन्तु "विभाषा सपूर्व्वस्य" पूर्व्वमें कोई शब्द रहनेसे पति-शब्दान्त प्रातिपदिकके उत्तर विकल्पसे ईप् और नकारागम होता है। यथा, गृहपतिः गृहपत्नी, दृढ़पतिः दृढ़पत्नी। (४) नित्यं सपत्न्यादिषु (पा ४।१।३५)। (५) पादोऽन्यतरस्याम् (पा ४।१।८)। पच्चमें द्विपात्, विपात् इत्यादि।

पद् इस प्रातिपदिकके उत्तर ईप् होता है। यथा, द्वावस्याः पदौ द्विपदी, त्रयोऽस्याः पदः त्रिपदी। ऐसे चतुष्पदी, शतपदी, बहुपदी। ("टावृचि"। ऋग्वेदका मन्त्र बोध हो तो आप्। यथा, द्विपदा ऋक्।)

५३। "दतश्च"। बहुव्रीहि समास होनेसे दत् इस प्रातिपदिकके उत्तर ईप् होता है। यथा, सुदती, चारुदती, शुभ्रदती, कुन्ददती।

५४। "पाणिगृहीतात् पत्न्याम्" (१) पत्नी अर्थ बोध होनेसे पाणिगृहीत शब्दके उत्तर ईप् होता है। यथा, पाणि-गृहीतोऽस्याः पाणिगृहीती (*espoused by the hand*)। अन्यत्र पाणिगृहीता (*seized by the hand*) नारी। (२)

५५। "वा गुणवाचकादुदन्तात्" (३)। गुणवाचक उकारान्त प्रातिपदिकोंके उत्तर विकल्पसे ईप् होता है। यथा, मृद्वी मृदुः, साध्वी साधुः, पट्वी पटुः, गुर्वी गुरुः, लघ्वी लघुः, अण्वी अणुः, स्वाद्वी स्वादुः, बह्वी बहुः (४)। खरु शब्दके (उत्तर ईप्) नहीं होता (५)। यथा, खरुः।

५६। "न संयुक्तोपधात्" (५)। जिन गुणवाचक उकारान्त

---

(१) पाणिगृहीती भार्य्यायाम् (वा० २४८०)। (२) "पूतक्रतोरै च"। पूतक्रतुः (इन्द्रः) पूतक्रतायी (पूतक्रतोः स्त्री, इन्द्राणी ; ईप् तथा अन्तादेश ऐ हुआ है) ; वृषाकप्यग्निकुसितकुसिदानामुदात्तः"। पत्नी अर्थमें—वृषाकपि (हर तथा विष्णु) वृषाकपायी (गौरी तथा लक्ष्मी), अग्नि अग्नायी, कुसित कुसिद (*names of gods*) कुसितायी, कुसिदायी। "मनोरौ वा"। मनोः स्त्री मनावी मनायी मनुः। (३) वोतो गुणवचनात् (पा४।१।४४)। (४) बह्वादिभ्यश्च (पा ४।१।४५)। (५) खरुसंयोगोपधान्न (वा२४६०)। खरुः=पतिंवरा कन्या (*a girl who chooses her husband*)।

प्रातिपदिकोंके उपधाके स्थानमें संयुक्त वर्ण रहता है उनके उत्तर ईप् नहीं होता। यथा, पाण्डुः (*pale*)।

५७। "नित्यमशिश्वनडुद्भ्याम्" (१)। अशिशु और अनडुह् शब्दोंके उत्तर नित्य ईप् होता है। यथा अशिश्वी नास्त्यस्याः शिशुरित्यर्थः (*a childless female*) ; अनडुही (*a cow*)।

५८। "अनड्वाही"। अनड्वाही (*a barren or childless female*) निपातनसे सिद्ध होता है।

५९। "उदन्तादूप्" (२)। उकारान्त प्रातिपदिकोंके उत्तर ऊप् होता है ; प् इत, ऊ रहता है। यथा, कुरूः (*a woman of the Kuru country*), कद्रूः, अलाबूः, कर्कन्धूः, ब्रह्मबन्धूः (*a mean or contemptible Brahman woman*)।

६०। "न रज्ज्वादेः"। रज्जु आदि उकारान्त प्रातिपदिपदिकोंके उत्तर ऊप् नहीं होता। यथा. रज्जुः, धेनुः, आखुः, हनुः, कमण्डलुः, कृकवाकुः. वृत्तबाहुः (*a woman having well-rounded arms*), अध्वर्युः (*a female officiating priest*)।

६१। "विभाषा तन्वादेः"। तनु आदि (३) उकारान्त प्रातिपदिकोंके उत्तर विकल्पसे ऊप् होता है। यथा, तनूः तनुः, चञ्चूः चञ्चुः।

---

(१) सख्यशिश्वीति भाषायाम् (पा ४।१।६२)। अशिश्वी शिशुरिक्तायां स्त्रियामेव निपातनम्। (२) ऊङुतः (पा ४।१।६६)। पङ्गोश्च (पा ४।१।६८) यथा, पङ्गूः (*a crippled woman*)। (३) तनुश्चञ्चुकरभौरुः काङ्गुपङ्गुप्रियङ्गवः। गण्डुः कुहुरिति प्रोक्तास्तन्वादौ सरयुस्तथा॥

६२। "श्वश्रूः श्वशुरस्य" (१)। श्वशुर-शब्दके स्थानमें निपातनसे श्वश्रू होता है। यथा, श्वशुरस्य जाया श्वश्रूः।

६३। "ऊरोरौपम्ये" (२)। उपमा बोध होनेसे ऊरु इस प्रातिपदिकके उत्तर ऊप् होता है। यथा, रम्भे इवास्या ऊरू रम्भोरूः, करभाविवास्या ऊरू करभोरूः, (*a woman whose thighs resemble the metacarpus i. e. the part of the hand between the wrist and the little finger*), करिकराविवास्या ऊरू करिकरोरूः (*having thighs like the trunk of an elephant*)।

६४। "वामादिपूर्व्वाच्च" (३)। वाम आदि शब्दोंके परवर्त्ती ऊरु इस प्रातिपदिकके उत्तर ऊप् होता है। यथा वामोरूः (*a fair one with charming thighs*), सहितोरूः, सहोरूः, संहितोरूः, लक्षणोरूः, शफोरूः (*a female having thighs like the two divisions of a cow's hoof*)। (४)

---

(१) श्वशुरस्योकाराकारलोपश्च (वा० ५०३९)। (२) ऊरूत्तरपदादौपम्ये (पा ४।१।६९)। (३) संहितशफलक्षणवामादेश्च (पा ४।१।७०)। सहित-सहाभ्यां चेति वक्तव्यम् (वा० २५०३)। (४) कुछ अतिरिक्त उदाहरण, ईप् प्रत्ययान्त—कुरुचरी, मद्रचरी, सौपर्णेयी, कुम्भकारी, ऊरुद्वयसी, ऊरुदघ्नी, ऊरुमात्री, पञ्चतयी, लावणिकी, इत्वरी, नश्वरी स्त्रैणी, पौंस्नी, तरुणी, तलुनी, नर्त्तकी, ताम्रमुखी (किन्तु गौरमुखा), वृषली (शूद्रकी स्त्री), शार्ङ्गरवी (शृङ्गरु ऋषिके वंशकी स्त्री), बैदी (बिद ऋषिके वंशकी कन्या), सुत्वानमतिक्रान्ता अतिसुत्वरी, अतिक्रान्ता धीवानम् अतिधीवरी, यमास्य दृष्टवती यमास्यदृश्वरी, हरिं दृष्टवती हरिदृश्वरी, पीवरी (*a stout woman*), शर्व्वरी (*night*), नृ नर नारी, (किन्तु नरस्य स्त्री नरी), वस्त्रक्रीती (*a wife purchased with cloth*)

EXERCISE.

1. Give the feminine forms of :—अश्व, उदच्, कृशोदर, खनक, तस्थिवस्, चटक, गायक, सुकण्ठ, युवन्, श्वन्, सुगात्र, मृगनयन, श्वशुर, सूर्य्य, मघवन्, मत्स्य, राजन्, रजक, सखि, प्राच्, प्रत्यच्, विद्वस्, मनुष्य, महत्, पतत्, पतिवत्, रञ्जक, बिम्बोष्ठ, पृच्छत्, चारुनेत्र, जग्मिवस्, अवाच्, अनडुह्, आयात्, कनिष्ठ, साधु, इन्द्र, मातुल, आचार्य्य, नापित, गोपालक, कृशाङ्ग, कर्कन्ध, आखु।

2. Mention a few words that have more than one feminine forms with different meanings.

3. Explain the words पाणिगृहीती, पाणिगृहीता and पाणिग्रहीती.

4. How are the feminine forms of words ending in शतृ formed ? Quote the rules and give examples.

5. Correct the following showing reasons :—भुजङ्गिनी, भयङ्करी, मातङ्गिनी, सम्राज्ञी, पीतवाससी।

6. Substitute one feminine word for each of the following :—रुद्रस्य जाया ; रम्भे इवास्या ऊरू ; बहवो राजानो ययोः ते ; नास्ति केशो यस्याः सा ; घटवदस्या ऊधः ; वीरः पतिरस्याः ; महत् अरण्यम् ; द्वावस्या हायनौ ; यवनानां लिपिः ; स्थूलमङ्गमस्याः।

7. Give single Sanskrit words for :—A woman having a slender waist ; The wife of a holy preceptor ; A spiritual preceptress ; A woman having thighs like the trunk of an elephant ; A woman of the Vaishya tribe ; The wife of a Vaishya ; The wife of a horse-groom ; A childless female.

किन्तु धनक्रीता (*a wife purchased by money*), विलोकी, किन्तु विफला, वानीका। आप्प्रत्ययान्त—मन्द मन्दा (कन्या), विलात विलाता (कन्या) ; विकल्प रूप—रोहिती रोहिणी रोहिता (नक्षत्र, हरिणी), गोपी, गोपा (स्वयं गोपालिका)। "वयसि प्रथमे"—कुमारी, किशोरी ; "वयस्यचरम इति वाच्यम्" वधूटी चिरण्टी (*a female in the second stage of life*) ; किन्तु स्थविरा, वृद्धा। "क्तादल्पाख्यायाम्"—अभ्रलिप्ती द्यौः, *the sky slightly covered with clouds.* अल्पत्व बोध न होनेसे—चन्दनलिप्ता अङ्गना, *a woman besmeared with sandal*

समास (Compounds) ।

साधारण-नियम ।

१ । "एकपदीभावः समासः" । दो अथवा बहु पदोंके एकपदीभाव अर्थात् एकपद हो जानेको समास कहते हैं ।

२ । "लुक् विभक्तेः" (१) । समासके अन्तर्गत सभी पदोंकी विभक्तियोंका लोप होता है । यथा, राज्ञः पुत्त्रः = राजपुत्त्र + सु = राजपुत्त्रः ।

३ । "नस्य लोपः पूर्व्वस्य" (२) । समास होनेसे पूर्व्व पदके अन्तस्थित न्-का लोप होता है । यथा, राज्ञः पुत्त्रः = राजन् + पुत्त्रः = राजपुत्त्रः ।

४ । "परस्य स्वरे" (३) । स्वरवर्ण परे रहनेसे परपदके अन्तस्थित न्-का लोप होता है (४) । यथा, महान् राजा = महाराजन् + अ = महाराजः ।

५ । "लोपोऽवर्णेवर्णयोः" (५) । स्वरवर्ण परे रहनेसे अवर्ण तथा इवर्णका लोप होता है । यथा, महाराजन् + अ = महाराज + अ = महाराजः, प्रियः सखा = प्रियसखि + अ = प्रियसखः ।

---

(१) सुपो धातुप्रातिपदिकयोः (पा २।४।७१) । समासे सुब् विभक्तौ लुंक् तद्धिताख्यातयोरपि ।—प्रयोगरत्नमाला । (२) नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य (पा ८।२।७) । (३) नस्तद्धिते (पा ६।४।१४४) । (४) कप् प्रत्यय परे रहनेसे भी परपदके अन्तस्थित न का लोप होता है । (५) यस्येति च (पा ६।४।१४८) ।

६। "अकारो नञो हलि" (१)। हल्वर्ण परे रहनेसे नञ् के स्थानमें अ होता है। यथा, न जातः अजातः (*not born*)।

७। "अन् स्वरे" (२)। स्वरवर्ण परे रहनेसे नञ् के स्थानमें अन् होता है। यथा, न उपायः अनुपायः ; न इच्छा अनिच्छा (*reluctance*)।

८। "टेर्लोपो डिति" (३)। डकारेत् प्रत्यय परे रहनेसे टिका लोप होता है।

९। "तेर्विंशतेः" (४)। विंशतिशब्दके ति-अंशका लोप होता है।

१०। "ह्रस्वावन्ते गोस्त्रियावन्यार्थे" (५)। जहां दूसरा पदार्थका बोध होता है वहां अन्तस्थित गो-शब्द तथा स्त्रीप्रत्यय ह्रस्व हो जाते हैं। यथा, शीता (*cold*) गौ (*rays or fragrance*) र्यस्य स शीतगुः (*the moon, camphor*); ध्वस्ता (*overcome*) माया (*illusion*) यस्य स ध्वस्तमायः ; काली तनूर्यस्य स कालतनुः।

११। "स्त्री नेयसुनः" (६)। ईयसुनके परवर्त्ती स्त्रीप्रत्यय ह्रस्व नहीं होता। यथा, बह्व्यः प्रेयस्यो यस्य स बहुप्रेयसी (*one having many beloved wives*)।

---

(१) नलोपो नञः (पा ६।३।७३)। (२) तस्मान्नुडचि (पा ६।३।७४)। (३) टेः (पा ६।४।१४३)। (४) ति विंशतेर्डिति (पा ६।४।१४२)। (५) गोस्त्रियोरुपसर्ज्जनस्य (पा १।२।४८)। (६) ईयसो बहुव्रीहेर्नेति वाच्यम् (वा० ६९६)।

१२। "समासाः प्रातिपदिकानि" (१)। समास होनेसे समस्त भाग प्रातिपदिक होता है अर्थात् फिर उसके उत्तर नयी विभक्ति होती है। यथा, तुङ्गा नासिका यस्य स तुङ्गनासिकः, तं तुङ्गनासिकम् तेन तुङ्गनासिकेन इत्यादि।

१३। "विशेष्यलिङ्गमन्यार्थे"। जहां दूसरा पदार्थका बोध होता है वहां समस्त भाग विशेष्य लिङ्ग होता है। यथा, सफलकामो नरः, सफलकामा नारी, सफलकामं कलत्रम्।

१४। "नपुंसकैकवचने समाहारे" (२)। समाहार समास होनेसे समस्त भाग नपुंसक लिङ्ग और एकवचनान्त होता है। यथा, करश्च चरणश्च करचरणम्।

१५। "पुंवद्भावः सर्व्वनाम्नः" (३)। समासमें स्त्री-लिङ्ग सर्व्वनाम शब्दका पुंवद्भाव अर्थात् पुंलिङ्गके सदृश सरूप होता है। यथा, सर्व्वासां पतिः सर्व्वपतिः।

१६। "महतो महा विशेष्ये" (४)। विशेष्य शब्द परे रहनेसे महत्-शब्दके स्थानमें महा होता है। यथा, महत् जलम् महाजलम्; महान् पुरुषः महापुरुषः; महती बुद्धिः महाबुद्धिः।

"समर्थः पदविधिः"। परस्पर अन्वय अर्थात सम्बन्धयुक्त दो अथवा दोसे अधिक पद एकपदके ऐसे व्यवहृत हो तो इस एकपदीकरण को समास कहते हैं। किसी

---

(१) कृत्तद्धितसमासाश्च (पा १।२।४६)। (२) स नपुंसकम् (पा २।४।१७)। (३) सर्व्वनाम्नो वृत्तिमात्रे पुंवद्भावो वक्तव्यो दक्षिणोत्तरपूर्व्वाणामित्यवमर्थम् (वा० १३७६)। (४) आन्महतः समानाधिकरणजातीययोः (पा ६।३।४६)।

समासके अन्तर्गत पदोंको पृथक करनेको व्यास कहते हैं। जिन पदोंमें समास किया जाता है उन्हें समस्यमान पद कहते हैं। समासनिष्पन्न पद को समस्तपद कहते हैं। समस्तपदके सर्व्वप्रथम पदको पूर्व्वपद और सर्व्वशेष पदको उत्तरपद कहते हैं। समास करना और नहीं करना इच्छाधीन है। जिन पदोंमें परस्पर अन्वय अर्थात् सम्बन्ध रहता है उन्हींका समास होता है। यथा, गङ्गायाः जलम् = गङ्गाजलम्, बन्धोः वाक्यम् = बन्धुवाक्यम्। द्वन्द्व समासमें ऐसा सम्बन्ध न रहने पर भी वहां साहित्यरूप अन्वय समझ लेना चाहिये। परस्पर सम्बन्धरहित पदोंका समास नहीं होता किन्तु "श्रुतदेहविसर्ज्जनः पितुः", "रतेर्गृहीतानुनयेन" इत्यादि स्थलोंमें पितुः पदके साथ देहः पदका रतेः पदके साथ अनुनयः पदका सम्बन्ध अर्थात् आकाङ्क्षा रहने पर भी शीघ्र अर्थबोध होनेके कारण परस्पर सम्बन्धरहित श्रुत तथा गृहीत पदोंके साथ देहविसर्ज्जन तथा अनुनय पदोंका समास हुआ है। प्राचीन वैयाकरणोंने ऐसे समासको "सापेक्षत्वेऽपि गमकत्वात् समासः" कहा है।

"समासश्चतुर्विधः।" पाणिनिके अनुसार समास चार प्रकारके हैं। अव्ययीभाव, तत्पुरुष, बहुव्रीहि और द्वन्द्व। इनके मतमें कर्म्मधारय और द्विगु तत्पुरुष-समासके अन्तर्गत हैं। दूसरे वैयाकरणोंने कर्म्मधारय और द्विगु स्वतन्त्र समास मानकर समास छः प्रकार कहते हैं।

अव्ययीभाव-समास (Indeclinable Compounds (१))।

१। "अव्ययीभावः" (२)। इस प्रकरणमें जो समास विहित होता है उसका नाम अव्ययीभाव है।

२। "नपुंसकमव्ययीभावे" (३)। अव्ययीभाव समास होनेसे समस्त भाग नपुंसकलिङ्ग होता है। यथा, कूलस्य

(१) अंग्रेजीमें अव्ययीभाव समासको किसी किसीने *Adverbial compounds* कहते हैं किन्तु यह ठीक नहीं। (२) पा २।१।५। (३) अव्ययीभावश्च (पा २।४।१८)।

समीपम् उपकूलम् (*near the bank*). हरौ अधिहरि (*in Hari*)।

३। "अदन्ताद्विभक्तेरपञ्चम्या मः" (१)। अकारान्त अव्ययीभावके परवर्त्ती विभक्तिके स्थानमें म् होता है। यथा, कृष्णस्य समीपम् उपकृष्णम् (*near Krishna*); कृष्णमधिकृत्य प्रवृत्ता कथा, अधिकृष्णम् (*with reference to Krishna*)। पञ्चमीके स्थानमें नहीं होता। यथा, कृष्णस्य समीपात् आगतः. उपकृष्णात् आगतः।

४। "विभाषा तृतीयासप्तम्योः" (२)। (अकारान्त अव्ययीभावके परवर्त्ती) तृतीया और सप्तमी विभक्तिके स्थानमें विकल्पसे (म्) होता है। यथा, उपकृष्णम् उपकृष्णेन कृतम् ; उपकृष्णम् उपकृष्णे निधेहि।

५। "लुक् परात्" (३)। अकारान्त भिन्न अव्ययीभावके परवर्त्ती विभक्तिका लोप होता है। यथा, शक्तिमनतिक्रम्य यथाशक्ति (*to the best of one's power*)।

---

(१) नाव्ययीभावादतोऽम् त्वपञ्चम्याः (पा २।४।८३)। अव्ययीभाव-समाससे निष्पन्न पद अव्यय होता है और उसके उत्तर सब विभक्तियोंका लोप होता है ; केवल अकारान्त अव्ययीभावके परवर्त्ती विभक्तिके स्थानमें म् होता है ; तृतीया तथा सप्तमी विभक्तिके स्थानमें विकल्पसे म होता है और पञ्चमी विभक्तिका लोप नहीं होता और उसके स्थानमें म् भी नहीं होता। यथा, उपकूलं वृक्षः, उपकूलं वृक्षाः, उपकूलं उपकूलेन वा वृक्षेण, उपकूलं वृक्षाय, उपकूलात वृक्षात, उपकूलं वृक्षस्य, उपकूलं उपकूले वा वृक्षे, हे उपकूलं वृक्ष। (२) तृतीयासप्तम्योर्बहुलम् (पा २।४।८४)। (३) अव्ययीभावश्च (पा १।१।४१); अव्ययादाप्सुपः (पा २।४।८२)।

६। "सुपाव्ययं समीपादौ" (१)। समीप आदि (२) अर्थोंमें सुबन्त पदके साथ अव्ययका समास होता है। यथा, समीप (*proximity*)—गृहस्य समीपम् उपगृहम्, गङ्गायाः समीपम् उपगङ्गम्; अभाव (*absence*)—विघ्नस्याभावः निर्विघ्नम्, मक्षिकाणाम् अभावः निर्मक्षिकम् (ऐसे भिक्षाया: अभावः दुर्भिक्षम्); अत्यय (*end*)—हिमस्यात्ययः अतिहिमम् (*the end of the cold season, after the wintry season*), बाधाया अत्ययः अतिबाधम्; असम्प्रति (*improper at present*)—निद्रा सम्प्रति न युज्यते अतिनिद्रम् (*sleep is not proper now, past sleeping time*), शोकः सम्प्रति न युज्यते अतिशोकम्; पश्चात् (*behind*)—रथस्य पश्चात् अनुरथम् गृहस्य पश्चात् अनुगृहम्; योग्यता (*fitness*)—रूपस्य योग्यम् अनुरूपम् (*in a fitting manner, in conformity with*), कूलस्य योग्यम् अनुकूलम्; वीप्सा (*repetition*)—दिनं दिनं प्रति प्रतिदिनम् (*every day*), गृहं गृहं प्रति प्रतिगृहम्; अनतिवृत्ति (*not going beyond*)—शक्तिमनतिक्रम्य यथाशक्ति, ज्ञानमनतिक्रम्य यथाज्ञानम्; आनुपूर्व्य (*succession in order*)—ज्येष्ठस्यानुपूर्व्येण अनुज्येष्ठम् (*beginning in*

---

(१) अव्ययं विभक्तिसमीपसमृद्धिव्यृद्ध्यर्थाभावात्ययासम्प्रतिशब्दप्रादुर्भावपश्चाद्यथानुपूर्व्ययौगपद्यसादृश्यसम्पत्तिसाकल्यान्तवचनेषु (पा २।१।६)। (२) समीप, अभाव, अत्यय, असम्प्रति, पश्चात, योग्यता, वीप्सा, अनतिवृत्ति, आनुपूर्व्य, विभक्ति, सादृश्य, यौगपद्य, साकल्य, समृद्धि, पर्य्यन्त इत्यादि।

order from the eldest, according to seniority), **वर्णानाम् आनुपूर्व्व्येण अनुवर्णम्** ; **विभक्त्यर्थे** (*in the sense of a case-ending*)—**हरौ अधिहरि** (*in, with reference to or concerning Hari*), **गृहे अधिगृहम्** ।

७। "सहः सोऽकाले" (१)। अव्ययीभाव समासमें सह-शब्दके स्थानमें स होता है। यथा, **सादृश्य** (*similarity*) —**हरेः सदृशं सहरि** (*like Hari*) ; **यौगपद्य** (*occurring at the same time, simultaneousness*)—**चक्रेण युगपत् सचक्रम्** (*simultaneously with or along with the disc or wheel*) ; **साकल्य** (*entirety*)—**तृणमप्यपरित्यज्य सतृणम्** (*without leaving even grass*) ; **समृद्धि** (*prosperity*)—**मद्राणां** (*of the Madras*) **समृद्धिः** (*prosperity*) **सुमद्रम्** (ऐसे—**भिक्षाणां समृद्धिः सुभिक्षम्** किन्तु **क्षत्राणां सम्पत्तिः योग्यस्वभावः सक्षत्रम्** *work befitting a Kshatriya, Cf.* **तेन सक्षत्रम् आचरितम्** *He has acted like a Kshatriya*) ; **पर्य्यन्त** (*limit*)—**अग्निग्रन्थपर्य्यन्तमधीते साग्नि**। (२) कालबोध होनेपर नहीं होता। यथा, **सहपूर्व्वाह्णम्, सहापराह्णम्** ।

---

(१) अव्ययीभावे चाकाले (पा ६।३।८१)। (२) दुर्ब्भिक्ष (*adversity*)—यवनानां व्यृद्धि दुर्यवनम् (*adversity of the Yavans*) ; शब्द-प्रादुर्भाव—हरि-शब्दस्य प्रकाशः इतिहरि ; कारकार्थे (*in the sense of a case*)—आत्मानमधिकृत्य अध्यात्मम् (*on the soul, referring to the Self*), कृष्णमधिकृत्य अधिकृष्णम्। अव्ययीभाव-समासमें समस्यमान पदोंसे विग्रह-वाक्य नहीं बनता। यथा,

८। "यावदवधारणे" (१)। 'अवधारण' (अर्थात् निर्द्दिष्ट परिमाण, *definite measure*) बोध होनेपर सुबन्त पदके साथ यावत् इस अव्यय शब्दका समास होता है। यथा, यावदमत्रं (अमत्रं=पात्रं भाजनं भोजनपात्रं वा, *dishes*) ब्राह्मणान् आमन्त्रयस्व, यावन्ति अमत्राणि सन्ति (पञ्च षड् वा) तावतो (ब्राह्मणान्) आमन्त्रयस्वेत्यर्थः ; यावन्तः श्लोकास्तावन्तः अच्युतप्रणामाः = यावच्छ्लोकम् अच्युतप्रणामाः (*bowing to Achyuta as many times as there are Slokas*)। 'अवधारण' का बोध नहीं होनेसे समास नहीं होता। यथा, यावद् दत्तं तावद् भुक्तम्।

९। "विभाषा बहिरादिः पञ्चम्या" (२)। पञ्चम्यन्त पदोंके साथ बहिस् आदि (३) शब्दोंका विकल्पसे समास होता है। यथा बहिर्ग्रामं ग्रामाद् बहिः, प्रागुपवनं उपवनात् प्राक्।

१०। "आङ् मर्य्यादाभिविध्योः" (४)। 'मर्य्यादा' और 'अभिविधि' (५) का बोध होनेसे सुबन्त पदोंके साथ

दुर्भिक्षम् इस समस्त पदका विग्रह-वाक्य भिक्षायाः दुर् न होकर भिक्षायाः अभावः होता है। इस लिये अव्ययीभाव-समास 'अस्वपद-विग्रह' है और ऐसे समासको नित्य-समास भी कहते हैं। (१) पा २।१।८ (२) अपपरिबहिरञ्चवः पञ्चम्या (पा २।१।१२)। (३) बहिस्, प्राच्, अवाच्, प्रत्यच्, अप्, परि इत्यादि। (४) पा २।१।१३। (५) तेन विना मर्य्यादा, तत्सहितोऽभिविधिः। मर्य्यादा—आमुक्ति, आ मुक्तेः, संसारः। अभिविधि—आबालम्, आ बालेभ्यः, हरिभक्तिः ; आसकलम्, आ सक-

आङ् इस अव्ययका विकल्पसे समास होता है। यथा, आपाटलिपुत्त्रम्, आ पाटलिपुत्त्रात्, वृष्टो देवः; आकुमारम्, आ कुमारेभ्यः, यशः कालिदासस्य।

११। "लक्ष्येणाभिप्रती आभिमुख्ये" (१)। 'आभिमुख्य' बोध होनेसे लक्ष्यवाचक सुबन्त पदके साथ अभि तथा प्रति इन दोनों अव्ययोंका विकल्पसे समास होता है। यथा, अभ्यग्नि, अग्निम् अभि, शलभाः पतन्ति; प्रत्यग्नि, अग्निं प्रति।

१२। "यस्य चायामस्तेनानुः" (२)। जिसका दैर्घ्य बोध हो उसके साथ 'अनु' इस अव्ययका विकल्पसे समास होता है। यथा, अनुगङ्गम्, गङ्गाया अनु, वाराणसी; गङ्गा-दैर्घ्यसदृशदैर्घ्योपलक्षिता इत्यर्थः।

१३। "पारमध्यौ षष्ठ्या" (३)। षष्ठ्यन्त पदके साथ पार तथा मध्य शब्दोंका विकल्पसे अव्ययीभाव-समास होता है। यथा, समुद्रस्य पारं पारेसमुद्रम्; गङ्गाया मध्यं मध्ये-गङ्गम्। एकारका आगम निपातनसे है। पक्षमें षष्ठीसमास।

१४। "संख्या नदीभिः समाहारे" (४)। 'समाहार'

त्वात्, ब्रह्म। "आपाटलिपुत्त्रम्, आ पाटलिपुत्त्रात्, वृष्टो देवः" यहां 'आ' का अर्थ मर्य्यादा और अभिविधि दोनों ही हो सकते हैं; पाटलिपुत्त्रमें वर्षा नहीं हुई केवल उसके अव्यवहित पूर्व्व स्थान तक वर्षा हुई ऐसे अर्थमें मर्य्यादा और पाटलिपुत्त्रमें भी वर्षा हुई ऐसे अर्थमें अभिविधि समझना। (१) लक्षणेनाभिप्रती आभिमुख्ये (पा २।१।१४)। (२) यस्य चायामः (पा २।१।१६)। (३) पारे मध्ये षष्ठ्या वा (पा २।१।१८)। (४) नदीभिश्च (पा २।१।२०); समाहारे चायमिष्यते (वा० १२४६)।

बोध होनेसे नदीवाचक सुबन्त पदोंके साथ संख्यावाचक शब्दोंका अव्ययीभाव समास होता है। यथा, तिसृणां गङ्गानां समाहारः त्रिगङ्गम्; पञ्चनदम्, सप्तगोदावरम्।

१५। "अन्यपदार्थे च संज्ञायाम्" (१)। 'संज्ञा' बोध होनेसे और अन्य पदार्थ प्रतीयमान होनेसे नदीवाचक शब्दके साथ सुबन्त पदका अव्ययीभाव समास होता है। यथा, उन्मत्ता गङ्गा यस्मिन् उन्मत्तगङ्गम्, उन्मत्तगङ्गं नाम देशः (*the country where the Ganges is furious*); ऐसे—लोहितगङ्गम्, तुष्णीगङ्गम्, शनैर्गङ्गम् (२)। इमानि देश-विशेषनामानि।

१६। "तिष्ठद्गुप्रभृतीनि" (३)। अव्ययीभाव समासमें तिष्ठद्गु आदि (४) शब्द निपातनसे सिद्ध होते हैं। यथा, तिष्ठन्ति गावो यस्मिन् काले दोहाय तिष्ठद्गु (*at the time when cows stand for milking*); आयन्ति यस्मिन् काले गावो गोष्ठम् आयतीगवम् (*at the time when cows return home*)।

---

(१) पा २।१।२१। (२) अव्ययीभाव समास प्रधानतः पूर्व्वपदार्थ प्रधान है, किन्तु यहां अव्ययीभाव-समास-निष्पन्न पद बहुव्रीहिके ऐसे अन्यपदार्थप्रधान हैं। (३) पा २।१।१७। (४) तिष्ठद्गु, वहद्गु, आयतीगवम्, खलेयवम्, खलेबुसम्, लूनयवम्, लूयमानयवम्, पूतयवम्, पूयमानयवम्, संहृतयवम्, संह्रियमाणयवम्, संहृतबुसम्, संह्रियमाणबुसम्, समभूमि, समपदाति, सुषमम्, विषमम्, दुःषमम्, निःषमम्, अपसमम्, आयतीसमम्, प्रौढम्, पापसमम्, पुण्यसमम्, प्राह्णम्, प्ररथम्, प्रमृगम्, प्रदक्षिणम्, अपरदक्षिणम्, सम्प्रति, असम्प्रति।

१७। "शरदादेरन्" (१)। अव्ययीभाव समास होनेसे 'शरद्' आदि (२) शब्दोंके उत्तर अन् होता है; न् इत्, अ रहता है। यथा, उपशरदम्, प्रतिदिशम्, आहिमवतम्, अनुदृशम्।

१८। "जरया जरस्" (३)। अन् होनेपर जरा-शब्दके स्थानमें जरस् होता है। यथा, उपजरसम् (जरायाः समीपम्, *towards old age*)।

१९। "सरजसोपशुने" (४)। 'सरजस' और 'उपशुन' निपातनसे सिद्ध होते हैं। यथा, रजोऽप्यपरित्यज्य सरजसम्, शुनः समीपम् उपशुनम्।

२०। "प्रति-परः-समनुभ्योऽक्ष्णः" (५)। प्रति, परस्, सम्, अनु इनके परवर्त्ती अक्षि-शब्दके उत्तर अन् होता है। यथा, प्रत्यक्षम् (*before one's eyes*), परोक्षम् (*out of sight*), समक्षम् (*in presence of, before the very eyes*), अन्वक्षम् (*afterwards*)।

२१। "अनन्तात्" (५)। अन्-भागान्त शब्दोंके उत्तर अन् होता है। यथा, उपराजम्, अध्यात्मम्, प्रत्यध्वम्।

---

(१) अव्ययीभावे शरत्प्रभृतिभ्यः (पा ५।४।१०७)। (२) शरद्, विपाश्, अनस्, मनस्, अनुडुह्, उपानह्, दिव्, हिमवत्, हिरुक्, विद्, सद्, दिश्, दृश्, विश्, चेतस्, चतुर्, त्यद्, तद्, यद्, कियत्, जरा। (३) जराया जरसन्यतरस्याम् (पा ७।२।१०१)। (४) अचतुरविचतुरसुचतुरस्त्रीपुंसधेन्वनडुहर्क्सामवाङ्मनसाक्षिभ्रुवदारगवोर्वष्ठीवपदष्ठीवनक्तन्दिवरात्रिन्दिवाहर्दिवसरजसनिःश्रेयसपुरुषायुषद्व्यायुषत्र्यायुषर्ग्यजुषजातोक्षमहोक्षवृद्धोक्षोपशुनगोष्ठश्वाः (पा ५।४।७७)। (५) अनश्च (पा ५।४।१०८); अन्नन्तादव्ययीभावाट्टच्।

२२। "वा नपुंसकात्" (१)। नपुंसक अन्-भागान्त शब्दोंके उत्तर विकल्पसे अन् होता है। यथा, उपचर्म्मम् उपचर्म्म (*near the skin*)।

२३। "गिरिनदीपौर्णमास्याग्रहायणीभ्यः" (२)। गिरि, नदी, पौर्णमासी और आग्रहायणी शब्दोंके उत्तर विकल्पसे अन् होता है। यथा, उपगिरम्, उपगिरि; उपनदम् उपनदि; उपपौर्णमासम्, उपपौर्णमासि; उपाग्रहायणम्, उपाग्रहायणि।

२४। "स्पर्शान्ताच्चापञ्चमात्" (३)। पञ्चम भिन्न स्पर्शवर्णान्त शब्दोंके उत्तर विकल्पसे अन् होता है। यथा, उपदृशदम् उपदृशत्, अनुसमिधम् अनुसमित्।

२५। "प्रतेरुरसः सप्तमीस्थात्" (४)। 'प्रति' शब्दके परवर्त्ती सप्तम्यर्थमें वर्त्तमान उरस्-शब्दके उत्तर अन् होता है। यथा, उरसि प्रत्युरसम्।

२६। "अनुगवमायामे" (५)। आयाम अर्थात् दैर्घ्यका बोध होनेसे 'अनुगवम्" पद निपातनसे सिद्ध होता है। यथा, गोः पश्चात् अनुगवम् (*in accordance with the length of the cow*)। (६)

---

(१) नपुंसकादन्यतरस्याम् (पा ५।४।१०९)। यथा, प्रत्यहं, प्रत्यहः (*every day*)। (२) नदीपौर्णमास्याग्रहायणीभ्यः (पा ४।४।११०); गिरेश्चसेनकस्य (पा ५।४।११२)। (३) झयः (पा ५।४।१११)। (४) पा ५।४।८२। (५) पा ५।४।८३। (६) अव्ययीभाव समाससे निष्पन्न पद विशेष्य (*noun*), विशेषण (*adjective*), तथा क्रिया-विशेषण (*adverb*) हो सकते हैं।

तत्पुरुष-समास (Dependent or Determinative Compounds)।

१। "तत्पुरुषः" (१)। इस प्रकरणमें जो समास विहित होता है उसका नाम तत्पुरुष है।

२। "परलिङ्गं तत्पुरुषे" (२)। तत्पुरुष-समास होनेसे समस्त भाग परपदके लिङ्गको प्राप्त होता है। (३)

३। "रात्राह्नाहाः पुमांसः" (४)। तत्पुरुष-समास होनेसे समस्त भागके अन्तस्थित रात्र, अह्न तथा अह पुंलिङ्ग होते हैं।

४। "रात्रं नपुंसकं संख्यापूर्व्वम्" (५)। संख्यावाचक शब्द पूर्व्वमें रहनेसे रात्र नपुंसक होता है।

५। "पुण्याद्हः" (६)। पुण्य-शब्दके परवर्त्ती अह नपुंसक होता है।

६। "द्वितीया श्रितादिभिः" (७)। श्रित आदि (८)

---

(१) पा २।१।२२। तत्पुरुष-समास उत्तरपदार्थप्रधान है। तत्पुरुष समासमें अर्थके अनुसार पूर्व्व पद द्वितीया, तृतीया, चतुर्थी, पञ्चमी, षष्ठी, सप्तमी इनमेंसे किसी एक विभक्तिसे युक्त होकर परवर्त्ती प्रथमान्त पदके साथ समास होता है। इस लिये द्वितीयादिक्रमसे तत्पुरुष समास छ प्रकारके हैं। (२) परवल्लिङ्गं द्वन्द्वतत्पुरुषयोः (पा २।४।२६)। (३) वचनको भी प्राप्त होता है। (४) रात्राह्नाहाः पुंसि (पा २।४।२९)। (५) संख्यापूर्व्वं रात्रं क्लीबम् (पाणिनीय लिङ्गानुशासन)। (६) पुण्यसुदिनाभ्यामह्नो नपुंसकत्वं वक्तव्यम् (वा १५५३)। (७) द्वितीया श्रितातीतपतितगतात्यस्तप्राप्तापन्नैः (पा २।१।२४)। श्रितादिषु गमिगाम्यादीनामुपसंख्यानम् (वा १२४७)। (८) आश्रित-श्रित-विद्वांसोऽतीतात्यस्तबुभुक्षवः। आपन्न-पतित-प्राप्त-गमिगामी-बुभुक्षवः॥—श्रीरामतर्कवागीश।

सुबन्त पदोंके साथ द्वितीयान्त पदका समास होता है। यथा, कष्टं श्रितः कष्टश्रितः, दुःखमतीतः दुःखातीतः, कूपं पतितः कूपपतितः, गृहं गतः गृहगतः, तुहिनमत्यस्तः तुहिनात्यस्तः (*one who has overcome or is overcoming the cold*), सुखं प्राप्तः सुखप्राप्तः, सुखमापन्नः सुखापन्नः, ग्रामं गामी ग्रामगामी (१), अन्नं बुभुक्षुः अन्नबुभुक्षुः, वेदं विद्वान् वेदविद्वान्।

७। "खट्वा क्तेन कुत्सायाम्" (२)। निन्दा बोध होनेसे क्त-प्रत्यय निष्पन्न सुबन्त पदके साथ द्वितीयान्त खट्वा शब्दका समास होता है। यथा, खट्वारूढः (*a wicked or silly fool*), उत्पथप्रस्थित इत्यर्थः (३)। नित्य समास।

८। "काला अत्यन्तसंयोगे" (४)। अत्यन्त-संयोग (*duration*) बोध होनेसे सुबन्त पदके साथ द्वितीयान्त काल-वाचक सुबन्त पदका समास होता है। यथा, मुहूर्त्तं सुखम् मुहूर्त्तसुखम् (*happiness lasting for a moment, momentary pleasure*), मासं गम्यः मासगम्यः, वर्षं भोग्यः वर्षभोग्यः (*to be endured for a year*); मुहूर्त्तं मासं वर्षं व्याप्य इत्यर्थः।

---

(१) *Also*, ग्रामं गमी ग्रामगमी (*one who will go to the village*)। (२) खट्वा क्षेपे (पा २।१।२६)। (३) खट्वारूढः पद निन्दावाचक रूढ़ शब्द 'खट्वारूढ़' शब्दके प्रथमाएकवचनका है। नित्यसमास होनेके हेतु इसका समास-वाक्य 'खट्वाम् आरूढ़ः' होना ठीक नहीं हैं; कारण, "सवाक्यो यः समासः स्यात् स विकल्पः सुसम्मतः। वाक्याभावे तु नित्यं स्यादिति शब्दविदो विदुः॥ (४) अत्यन्त-संयोगे च (पा २।१।२९)।

९। "तृतीया पूर्व्वादिभिः" (१)। पूर्व्व आदि सुबन्त पदोंके साथ तृतीयान्त पदका समास होता है। यथा, मासेन पूर्व्वः मासपूर्व्वः (*prior by a month, a month before*), वर्षेण अवरः वर्षावरः (*younger by a year*), वाचा कलहः वाक्कलहः (*quarrel in words*), गुड़ेन मिश्रः गुड़मिश्रः (*mixed with molasses*), आचारेण श्लक्ष्णः आचारश्लक्ष्णः (*soft in manners*), धनेन अर्थः धनार्थः, मात्रा सदृशी मातृसदृशी (*like one's mother*), पित्रा समः पितृसमः (*equal to one's father, father like*).

१०। "ऊनार्थैश्च" (१)। ऊनार्थक सुबन्त पदोंके साथ तृतीयान्त पदोंका समास होता है। यथा, एकेन ऊनः एकोनः (*less by one*), विद्यया हीनः विद्याहीनः (*devoid of learning*), श्रमेण रहितः श्रमरहितः (*idle*), गर्व्वेण शून्यः गर्व्वशून्यः (*prideless*), अङ्गेन विकलः अङ्गविकलः (*deformed in body*)।

११। "कृता कर्त्तृकरणयोः" (२)। कृत्प्रत्ययनिष्पन्न सुबन्त पदोंके साथ कर्त्तामें और करणमें विहित तृतीया-

---

(१) तृतीया तत्कृतार्थेन गुणवचनेन (पा २।१।३०)। यथा, शङ्कुलया खण्डः शङ्कुलाखण्डः (सरौतेसे किया हुआ सुपारीका टुकड़ा)। तत्कृतेति किम्? अक्ष्णा काणः (समास नहीं हुआ)। पूर्व्वसदृशसमोनार्थकलहनिपुणमिश्रश्लक्ष्णैः (पा २।१।३१)। अवरस्योपसंख्यानम्। ऊनार्थ=ऊन, हीन, रहित, शून्य, विकल इत्यादि। (२) कर्त्तृकरणे कृता बहुलम् (पा २।१।३२)।

विभक्त्यन्त पदोंका समास होता है। यथा, कर्त्तामें—व्याघ्रेण हतः व्याघ्रहतः, अहिना दष्टः अहिदष्टः, व्यासेन रचितः व्यासरचितः, पाणिनिना प्रणीतं पाणिनिप्रणीतम्, नारदेन प्रोक्तं नारदप्रोक्तम्, द्विजेन भक्ष्यं (१) द्विजभक्ष्यम्, पुत्त्रेण देय पुत्त्रदेयम्। करणमें—नखैर्भिन्नः नखभिन्नः, असिना छिन्नम् असिछिन्नम्, अग्निना दग्धः अग्निदग्धः, जलेन सिक्तः जलसिक्तः, अञ्जलिना पेयम् अञ्जलिपेयम्, शिरसा धार्य्यं शिरोधार्य्यम्। (२)

१२। "चतुर्थी बलिहितसुखैः" (३)। सुबन्त बलि, हित और सुख शब्दोंके साथ चतुर्थ्यन्त पदका समास होता है।

---

(१) "कृत्यैरधिकार्थवचने" अर्थात् प्रशंसा अथवा निन्दा बोध होनेसे कर्त्तामें अथवा करणमें विहित तृतीयान्त पदोंके साथ तव्य, अनीय, य इत्यादि कृत्यप्रत्ययान्त पदोंका समास होता है। यथा, निन्दा—वातेन छेद्यं वातछेद्यम् (*what can be snapped even by the wind, it being so soft or fragile*) तृणम्, काकेन पेया काकपेया नदी (*a river that can be drunk off even by a crow*)। प्रशंसा—सुखेन भोग्यं सुखभोग्यम् (*what can be enjoyed with ease and comfort*) ऐश्वर्य्यम्, काकेन पेया काकपेया नदी (*a river which is so full of water that even a crow sitting on the bank can drink out of it*)। (२) क्त प्रत्यय निष्पन्न पदके पूर्व्वमें उपसर्ग रहनेसे भी होता है। यथा, नखैः निर्भिन्नं नखनिर्भिन्नम्, जलेन अभिषिक्तः जलाभिषिक्तः। किसी किसी स्थलमें समास नहीं होता। यथा, दात्रेण लूनवान्, हस्तेन कुर्व्वन्, भिक्षाभिः उषितः इत्यादि। (३) चतुर्थी तदर्थार्थबलिहितसुखरक्षितैः (पा २।१।३६); तदर्थेन प्रकृतिविकारभावे समासोऽयमिष्यते—काशिका। अर्थेन नित्यसमासो विशेष्यलिङ्गता चेति वक्तव्यम् (वा० १२७३-७४)।

यथा, भूताय बलिः भूतबलिः, पुत्राय हितम् पुत्रहितम्, भ्रात्रे सुखं भ्रातृसुखम्। (१)

१३। "अर्थेन च" (२)। अर्थ शब्दके साथ चतुर्थ्यन्त पदका समास होता है। समस्त भाग विशेष्यके लिङ्गको प्राप्त होता है। यथा, द्विजार्थः (३) सूपः (*broth for a Brahmin*), द्विजार्था यवागूः (*barley-gruel*), द्विजार्थं पयः (*water or milk*)। नित्य समास।

१४। "विकृतिः प्रकृत्या तादर्थ्ये" (२)। 'तादर्थ्य' बोध होनेसे प्रकृतिवाचक सुबन्त पदके साथ विकृतिवाचक चतुर्थ्यन्त पदका समास होता है। यथा, कुण्डलाय (*for ear-ring*) हिरण्यं (*gold*) कुण्डलहिरण्यम्, यूपाय दारु यूपदारु (*wood meant for sacrificial post*)। (४)

१५। "पञ्चमी भयादिभिः" (५)। भय आदि सुबन्त पदोंके साथ पञ्चम्यन्त पदोंका समास होता है। यथा, व्याघ्रात्

---

(१) *Other examples* :—गवे हितम् गोहितम्, गवे सुखम् गोसुखम्, गवे रक्षितम् गोरक्षितम् (*reserved for the cow*)। (२) चतुर्थी तदर्थार्थबलिहित-सुखरक्षितैः (पा २।१।३६); तदर्थेन प्रकृतिविकारभावे समासोऽयमिष्यते—काशिका। अर्थेन नित्यसमासो विशेष्यलिङ्गता चेति वक्तव्यम् (वा० १२७३-७४)। (३) द्विजाय अयं द्विजार्थः; द्विजाय इयं द्विजार्था; द्विजाय इदं द्विजार्थम्। द्विजार्थः सूपः इत्यादि उदाहरणोंमें अर्थ शब्दको प्रयोग करके वाक्यरचना नहीं की जा सकती इस लिये इस समासको अस्वपदविग्रह-नित्यसमास कहते हैं। (४) किन्तु प्रकृति-विकृति-भाव नहीं रहनेसे यह समास नहीं होता, इस लिये रन्धनाय स्थाली रन्धनस्थाली, अश्वाय घासः अश्वघासः नहीं होता। (५) पञ्चमी भयेन (पा २।१।३७); भय-भीत-भीति-भीभिरिति वाच्यम् (वा० १२७५)।

भयम् (*fear*) व्याघ्रभयम्, व्याघ्रात् भीतः (*afraid*) व्याघ्रभीतः, व्याघ्रात् भीः (*fear*) व्याघ्रभीः, व्याघ्रात् भीतिः (*fear*) व्याघ्रभीतिः, गृहात् निर्गतः गृहनिर्गतः, अधर्म्मात् जुगुप्सुः अधर्म्मजुगुप्सुः, सुखात् अपेतः (*deprived of*) सुखापेतः (१), बन्धनात् मुक्तः बन्धनमुक्तः, रथात् पतितः रथपतितः, तरङ्गात् अपत्रस्तः तरङ्गापत्रस्तः, विदेशात् आगतः विदेशागतः (२)।

१६। "षष्ठी समर्थेन" (३)। 'समर्थ' सुबन्त पदके साथ षष्ठ्यन्त पदका समास होता है। यथा, गङ्गायाः जलम् गङ्गाजलम्, तरोः छाया तरुच्छाया, अग्नेः शिखा अग्निशिखा, वायोः वेगः वायुवेगः, जलस्य प्रवाहः जलप्रवाहः, सुखस्य भोगः सुखभोगः, पयसः पानं पयःपानम्, कन्यायाः दानं कन्यादानम्, गवां दोहः गोदोहः (*the milk of cows, the milking of cows*), आज्ञायाः भङ्गः आज्ञाभङ्गः, दशायाः अन्तः दशान्तः, सूर्य्यस्य उदयः सूर्य्योदयः, वृष्टेः पातः वृष्टिपातः, शिरसः छेदः शिरश्छेदः, गवां वधः गोवधः, पितुः गृहं पितृगृहम्, राज्ञः भवनं

(१) अपेतापोढमुक्तपतितापत्रस्तैरल्पशः। (२) स्तोकान्तिकदूरार्थकृच्छ्राणि क्तेन (पा २।१।३९)। पञ्चम्यन्त स्तोक (थोड़ा), अन्तिक (निकट), दूर, और इनके अर्थवाचक शब्द तथा कृच्छ्र शब्दके साथ क्तान्त का समास होता है। परन्तु "पञ्चम्याः स्तोकादिभ्यः" (पा ६।३।२) ; अलुगुत्तरपदे। उत्तरपदमें क्तान्त रहनेसे स्तोकादिकी पञ्चमी विभक्तिका लुक् (लोप) नहीं होता। यथा, स्तोकान्मुक्तः, अन्तिकादागतः, अभ्याशादागतः (निकटसे आया), दूरादागतः, कृच्छ्रादागतः। (३) षष्ठी (पा २।२।८)।

राजभवनम् (*palace*), मनोः वचनं मनुवचनम्, अर्थस्य नाशः अर्थनाशः, कूपस्य उदकं कूपोदकम् ।

१७। "न निर्द्धारणे" (१)। निर्द्धारण अर्थमें विहित षष्ठीका समास नहीं होता। यथा, मनुष्याणां क्षत्रियः शूरतमः (*The Kshatriyas are the bravest of all men*), गवां कृष्णा बहुक्षीरा (*Of all cows the black ones give the greatest quantity of milk*)।

१८। "न पूरणार्थैः" (२)। पूरणार्थक पदके साथ षष्ठ्यन्त पदका समास नहीं होता। यथा, राज्ञां प्रथमः, पुत्त्रयोः द्वितीयः, भ्रातॄणां तृतीयः, शिष्याणां चतुर्थः, छात्राणां पञ्चमः।

१९। "न गुणवाचिभिः" (२)। गुणवाचक पदके साथ षष्ठ्यन्त पदका समास नहीं होता। यथा, पटस्य शौक्ल्यम् (*whiteness*), कोकनदस्य लौहित्यम् (*redness of the lotus*), काकस्य कार्ष्ण्यम् (*blackness*), आकाशस्य नीलिमा, द्राक्षायाः माधुर्य्यम् (*sweetness*)। किसी किसी स्थलोंमें होता है। यथा, अर्थस्य गौरवम् अर्थगौरवम्, बुद्धेः मान्द्यम् बुद्धिमान्द्यम्, अर्थस्य कार्श्यम् अर्थकार्श्यम्; (ऐसे—गात्रस्पर्शः,

---

(१) पा २।२।१०। (२) पूरण-गुण-सुहितार्थ-सदव्यय-तव्य-समानाधिकरणेन (पा २।२।११)। पूरणार्थक, गुणवाचक तथा तृप्त्यर्थक पद, शतृ तथा शानच् प्रत्ययान्त पद, कृदन्त अव्यय पद और समानाधिकरण पदोंके साथ षष्ठ्यन्त पदका समास नहीं होता।

वचनकौशलम्, चन्दनगन्धः, कन्यारूपम्, पटहध्वनिः, कपित्थरसः, गात्रमार्द्दवम् इत्यादि)। (१)

२०। "न तृप्त्यर्थैः" (२)। तृप्त्यर्थक पदके साथ षष्ठ्यन्त पदका समास नहीं होता। यथा, अपां तृप्तः, फलानां सुहितः, अन्नस्य आशितः। (३)

२१। "न तृजकाभ्यां याजकादिवर्ज्जम्" (४)। तृच् और अक प्रत्ययोंके योगसे निष्पन्न शब्दोंके साथ षष्ठ्यन्त पदका समास नहीं होता। यथा, तृच्—जगतः स्रष्टा, सुखस्य दाता, दुःखस्य हर्त्ता ; अक—प्रजानां पालकः, वृक्षाणां छेदकः, शत्रूणां घातकः। याजकादिका होता है। यथा, शूद्रयाजकः, देवपूजकः, राजपरिचारकः, वेदाध्यापकः, सर्व्वोत्साहकः, देवस्नातकः, जलपरिषेचकः, भुवनभर्त्ता, हविर्होता, गुणग्रहीता, गुणग्राहकः। (५)

---

(१) "गुणात्तरेण तर लोपश्च"। इस सूत्रके अनुसार गुणवाचक तरप् प्रत्ययान्त पदके साथ समास होता है और तरप् का लोप होता है। यथा, सर्व्वेषां श्वेततरः सर्व्वश्वेतः, सर्व्वेषां महत्तरः सर्व्वमहान्। (२) पूरणगुणसुहितार्थसदव्ययतव्यसमानाधिकरणेन (पा २।२।११)। (३) इन स्थलोंमें षष्ठी-समासका ही निषेध है अन्य समासका नहीं। यथा, नरेषु उत्तमः नरोत्तमः (७मी); भोगैः तृप्तः भोगतृप्तः, फलैः सुहितः फलसुहितः, राजभिः पूजितः राजपूजितः (३या); जगन्ति करोति यः सः जगत्कर्त्ता, प्रजाः पालयति यः सः प्रजापालकः (उपपद) इत्यादि। कृत् भिन्न अव्यय तथा तव्य प्रत्ययका निषेध नहीं रहनेके कारण तस्य उपरि तदुपरि, स्वस्य कर्त्तव्यं स्वकर्त्तव्यम् इत्यादि हो सकते हैं। (४) तृजकाभ्यां कर्त्तरि (पा २।२।१५); याचकादिभिश्च (पा २।२।९)। (५) वर्त्तमानकालविहित क्त-प्रत्ययान्त पदके साथ भी षष्ठीतत्पुरुष समास नहीं होता। यथा, सतां मतः, राज्ञां ज्ञातः।

२२। "सप्तमी शौण्डादिभिः" (१)। 'शौण्ड' आदि (२) शब्दोंके साथ सप्तम्यन्त पदका समास होता है। यथा, दाने शौण्डः दानशौण्डः (*exceedingly liberal*), शास्त्रे प्रवीणः शास्त्रप्रवीणः, (*well-versed in the Sastras*), रणे पण्डितः रणपण्डितः (*well-skilled in war*), क्रीड़ायां कुशलः क्रीड़ाकुशलः (*skilled in sports*), कर्म्मसु निपुणः कर्म्मनिपुणः, आतपे शुष्कः आतपशुष्कः (*dried in the sun*), स्थाल्यां पक्वः स्थालीपक्वः (*cooked in a pot*) ।

२३। "कृत्यैर्ऋणे" (३)। 'ऋण' बोध होनेसे कृत्य प्रत्यय-निष्पन्न पदके साथ सप्तम्यन्त पदका समास होता है। यथा, मासे देयं मासदेयम् ऋणम् (*a debt which must be repaid in a month*), वर्षे परिशोध्यं वर्षपरिशोध्यम् (*payable in a year*) ऋणम् ।

२४। "क्तेनाहोरात्रावयवाः" (४)। क्त-प्रत्यय-निष्पन्न पदके साथ दिन तथा रात्रिका अवयवबोधक सप्तम्यन्त पदका समास होता है। यथा, पूर्व्वाह्णे कृतं पूर्व्वाह्णकृतम्, अपराह्णे कृतम् अपराह्णकृतम्, पूर्व्वरात्रे कृतं पूर्व्वरात्रकृतम्, अपररात्रे कृतम् अपररात्रकृतम् ।

---

(१) सप्तमी शौण्डैः (पा २।१।४०); सिद्धशुष्कपक्वबन्धैश्च (पा २।१।४१)। (२) शौण्ड, धूर्त्त, कितव, प्रवीण, व्याड़, संवीत, पटु, पण्डित, कुशल, चपल, निपुण, सिद्ध, शुष्क, पक्व इत्यादि। (३) पा २।१।४३। (४) पा २।१।४५।

२५। 'कुत्सायां काकवाचिना" (१)। 'निन्दा' बोध होनेसे काकवाचक सुबन्त शब्दके साथ सप्तम्यन्त पदका समास होता है। यथा, तीर्थे काक इव तीर्थकाकः, तीर्थवायसः, तीर्थध्वाङ्क्षः, अनवस्थित इत्यर्थः—*a student who often changes his teachers.*

२६। "पूर्व्वादिरेकदेशिनैकवचने" (२)। एकवचनान्त अवयवीके साथ पूर्व्व, अपर, अधर, उत्तर, इनका समास होता है। यथा, पूर्व्वं कायस्य पूर्व्वकाय: (*the upper part of the body*); ऐसे—अपरकायः (*the back part of the body*), अधरकायः, (*the lower part of the body*), उत्तरकाय: (३)। एकवचन नहीं होनेसे (समास) नहीं होता। यथा, पूर्व्वं छात्राणाम् आमन्त्रयस्व।

२७। "अर्द्धं नपुंसकम्" (४)। एकवचनान्त अवयवीके साथ क्लीबलिङ्ग अर्द्ध शब्दका समास होता है। यथा, अर्द्धं पिप्पल्या: अर्द्धपिप्पली। दूसरे लिङ्गमें नहीं होता। यथा, ग्रामस्य अर्द्धः। एकवचन नहीं होनेसे नहीं होता। यथा अर्द्धं पिप्पलीनाम्।

२८। "काला: परिमाणिना" (५)। परिच्छेद्वाचक पदके साथ कालवाचक पदका समास होता है। यथा, मासो जातस्य मासजातः, वर्षो मृतस्य वर्षमृतः।

(१) ध्वाङ्क्षेण क्षेपे (पा २।१।४२)। (२) पूर्व्वापराधरोत्तरमेकदेशिनैकाधिकरणे (पा २।२।१)। (३) यह सब एकदेशी समासके उदाहरण हैं। (४) पा २।२।२। (५) पा २।२।५।

२६। "एकदेशवाचिना च" (१)। एकदेशवाचक पदके साथ कालवाचक पदका समास होता है।

३०। "अह्नोऽह्न एकदेशात्" (२)। एकदेशवाचक पदके परवर्त्ती अहन्-शब्दके स्थानमें अह्न होता है। यथा, पूर्व्वम् अह्नः पूर्व्वाह्नः (*forenoon*), मध्यम् अह्नः मध्याह्नः (*noon or mid-day*), अपरम् अह्नः अपराह्नः (*after-noon*), सायम् अह्नः सायाह्नः (*evening*) (३)।

३१। "रात्रेरन्" (४)। एकदेशवाचक शब्दके परवर्त्ती रात्रि-शब्दके उत्तर अन् होता है; न् इत्, अ रहता है। यथा, पूर्व्वं रात्रेः पूर्व्वरात्रः (*the fore part of the night*), मध्यं रात्रेः मध्यरात्रः (*mid-night*), अपरं रात्रेः अपररात्रः (*the latter part of the night*)।

३२। "विभाषा द्वितीय-तृतीय-चतुर्थ-तुर्य्याणि" (५)। षष्ठ्यन्त अवयवीके साथ द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, तुर्य्य, इन्होंका

(१) सर्व्वोऽप्येकदेशोऽह्ना समस्यते, संख्याविसायेति ज्ञापकात् (वा०)। केचित्तु सर्व्वोऽप्येकदेशः कालेन समस्यते न तु अह्नैव, ज्ञापकस्य सामान्यापेक्षत्वात् (भट्टोजिदीक्षित)। (२) अह्नोऽह्न एतेभ्यः (पा ५।४।८८)। (३) संख्याविसायपूर्व्वस्याह्नस्याऽहन्नन्यतरस्यां ङौ (पा ६।३।११०)। किन्तु इस सूत्रका उदाहरण भट्टोजिदीक्षितने सिद्धान्त-कौमुदीमें दिया है अह्नः सायः सायाह्नः। ज्ञानेन्द्र सरस्वतीने भी तत्त्वबोधिनी टीकामें दिया है अह्नः साय इति। स्यतेर्घञि अवसानवचनः सायशब्दः संख्याविसायेति ज्ञापकादेकदेशिसमासः। (४) अहः-सर्व्वैकदेशसंख्यात-पुण्याच्च रात्रेः (पा ५।४।८७)। (५) द्वितीयतृतीयचतुर्थतुर्य्याण्यन्यतरस्याम् (पा २।२।३)।

विकल्पसे समास होता है। यथा, द्वितीयं भिक्षायाः द्वितीयभिक्षा (*half the quantity of alms*), तृतीयं भिक्षायाः तृतीयभिक्षा, चतुर्थं भिक्षायाः चतुर्थभिक्षा, तुर्य्यं भिक्षायाः तुर्य्यभिक्षा। पक्षे षष्ठी समास। यथा भिक्षायाः द्वितीयम् भिक्षाद्वितीयम् (*begging alms for a second time*); ऐसे—भिक्षातृतीयम्, भिक्षाचतुर्थम्, भिक्षातुर्य्यम्।

३३। "अलं चतुर्थ्या पुंवच्च" (१)। चतुर्थ्यन्त पदके साथ अलम् इस अव्ययका समास होता है और चतुर्थ्यन्त स्त्रीलिङ्ग पदका पुंवद्भाव होता है। यथा, अलं जीविकायै अलञ्जीविकः (*enough for livelihood*)।

३४। "अत्यादयः क्रान्ताद्यौ द्वितीयया" (२)। 'क्रान्त' आदि अर्थोंमें द्वितीयान्त पदके साथ 'अति' आदिका समास होता है और स्त्रीलिङ्ग द्वितीयान्त पदका पुंवद्भाव होता है। यथा, अतिक्रान्तः खट्वाम् अतिखट्वः (*exceeding the bedstead in length*), अतिक्रान्तः मालाम् अतिमालः (*exceeding the garland in beauty*), उत्क्रान्तः वेलाम् उद्वेलः (*overflowing the sides or banks*)।

३५। "अवादयः क्रुष्टाद्यौ तृतीयया" (३)। 'क्रुष्ट' आदि अर्थोंमें तृतीयान्त पदके साथ 'अव' आदिका समास होता है

(१) द्विगुप्राप्तापन्नालंपूर्व्वगतिसमासेषु प्रतिषेधो वाच्यः। (वा० १५४५) अतएव ज्ञापकात् समासः (भट्टोजिदीक्षित)। (२) अत्यादयः क्रान्ताद्यर्थे द्वितीयया (वा० १३२६)। (३) अवादयः क्रुष्टाद्यर्थे तृतीयया (वा० १३२७)।

और स्त्रीलिङ्ग तृतीयान्त पदका पुंवद्भाव होता है। यथा, अवकुष्टः कोकिलया अवकोकिलः (*resounding with the voice of cuckoo*) वृक्षः।

३६। "पर्य्यादयो ग्लानादौ चतुर्थ्या" (१)। 'ग्लान' आदि अर्थमें चतुर्थ्यन्त पदके साथ 'परि' आदिका समास होता है और स्त्रीलिङ्ग चतुर्थ्यन्त पदका पुंवद्भाव होता है। यथा, परिग्लानः अध्ययनाय पर्य्यध्ययनः (*exhausted by study*), परिग्लानः सेवायै परिसेवः।

३७। "निरादयः क्रान्तादौ पञ्चम्या" (२)। 'क्रान्त' आदि अर्थमें पञ्चम्यन्त पदके साथ 'निर्' आदिका समास होता है और स्त्रीलिङ्ग पञ्चम्यन्त पदका पुंवद्भाव होता है। यथा, निष्क्रान्तः कौशाम्ब्याः निष्कौशाम्बिः (*one who has left Kaushambi*), उत्थितो निद्रायाः उन्निद्रः (*awakened from sleep*)।

३८। "सामिस्वयमौ क्तेन" (३)। क्त-प्रत्ययनिष्पन्न सुबन्त पदके साथ सामि और स्वयम् इन दोनों अव्ययोंका समास होता है। यथा, सामिकृतम् (*done half*), सामिघटितम्; स्वयङ्कृतम्, स्वयन्दत्तम्।

३९। "नञ् सुपा" (४)। सुबन्त पदके साथ नञ्

(१) पर्य्यादयो ग्लानाद्यर्थे चतुर्थ्या (वा० १३३८)। (२) निरादयः क्रान्ताद्यर्थे पञ्चम्या (वा० १३३९)। (३) स्वयं क्तेन (पा २।१।२५); सामि (पा २।१।२७); ऐकपद्यमैकस्वर्य्यञ्च समासत्वाद् भवति (काशिका)। (४) नञ् (पा

इस अव्ययका समास होता है। यथा, न ब्राह्मणः अब्राह्मणः (*one looking like a Brahmin but not such in reality i. e. not a proper Brahmin*), न मोघः अमोघः (*unfailing*), न प्रियः अप्रियः, न विकृतः अविकृतः, न सिद्धः असिद्धः, न सुखम् असुखम्, न दर्शनम् अदर्शनम्, न उपलम्भः अनुपलम्भः (*want of apprehension*)। (१)

४०। "ईषदकृता" (२)। कृदन्तसे भिन्न अन्य सुबन्त पदके साथ 'ईषत्' इस अव्ययका समास होता है। यथा,

---

२।२।६)। न लोपो नञः (पा ६।३।७३); उत्तरपद परे रहनेसे नञ् के न्‌का लोप होता है, ञ् इत्, अ रहता है। तस्मान्नुडचि (पा ६।३।७४); आदिमें स्वरवर्ण हो ऐसे उत्तरपद परे रहनेसे उस अके परे नुट् होता हैं; उ, ट् इत्, न् रहता है। नैकधेत्यादौ तु न शब्देन सह सुप्सुपेति समासः (वा०); इस लिये न एकधा नैकधा। (१) इस समासको नञ्-तत्पुरुष समास कहते हैं। अकारो नञो हलि; अन् स्वरे। व्यञ्जनवर्णके पूर्व में रहनेसे नञ्‌के स्थानमें अ और स्वरवर्णके पूर्व में रहनेसे नञ्‌के स्थानमें अन् होता है। नञ् शब्दका अर्थ छ प्रकार हैं। यथा—"तत्सादृश्यम् अभावश्च तदन्यत्वं तदल्पता। अप्राशस्त्यं विरोधश्च नञर्थाः षट् प्रकीर्त्तिताः॥" क्रमिक उदाहरण, (१) सादृश्य (*similarity*)—अब्राह्मणः; (२) अभाव (*want*)—असुखम्; (३) अन्यत्व (भेद, *difference*)—न-अश्वः अनश्वः (*not a horse, different from or other than a horse*); (४) अल्पता (*smallness*)—अनुदरी (अल्पोदरी, *a woman having a small belly*); (५) अप्राशस्त्य (*defectiveness*)—अकेशी (अप्रशस्तकेशी, *a woman having defective hairs*); (६) विरोध (*enmity*)—असुरः (सुरविरोधी, *a demon*)। (२) पा २।२।७; ईषद्‌गुणवचनेन इति वक्तव्यम् (वा० १३१६)।

ईषत्कड़ारः (*of a dull yellowish brown colour*), ईषत्पिङ्गलः, ईषद्विकचः, ईषन्मुकुलितः।

४१। "आङीषदर्थे" (१)। 'ईषदर्थ' बोध होनेसे सुबन्त पदके साथ आङ् इस अव्ययका समास होता है। यथा, आमधुरः (*sweetish*), आपिङ्गलः (*light reddish-brown*), आपाण्डुरः (*light yellowish-white*),आलोहितः (*reddish*)।

४२। "स्वती पूजायाम्" (१)। 'प्रशंसा' अर्थ बोध होनेसे सुबन्त पदके साथ सु, अति, इन दोनों अव्ययोंका समास होता है। यथा, सुपुरुषः, सुब्राह्मणः (*a good Brahmin*); अतिमृदुः, (*very mild*), अतिदयालुः।

४३। "दुर्निन्दायाम्" (१)। 'निन्दा' अर्थ बोध होनेसे सुबन्त पदके साथ दुर् इस अव्ययका समास होता है। यथा, दुष्कुलम्, दुर्नीतिः, दुश्चरितम्, दुष्पुरुषः।

४४। "कुः पापार्थे" (१)। 'कुत्सित' अर्थ बोध होनेसे सुबन्त पदके साथ कु इस अव्ययका समास होता है। यथा, कुब्राह्मणः, कुपुरुषः, कुसंस्कारः (*prejudice, superstition*)।

४५। "धातुभिरुपपदानि" (२)। धातुके साथ उपपदका (३) समास होता है। यथा, कुम्भकारः, प्रभाकरः, निशाकरः, हितकरः, प्रीतिकरः, अग्रसरः, जलचरः, पार्श्वचरः

---

(१) कुगतिप्रादयः (पा २।२।१८)। (२) उपपदमतिङ् (पा २।२।१९)। (३) जिन सुबन्त पद प्रभृतिके परवर्त्ती धातुके उत्तर कृत्-प्रत्यय विहित होता है, उन्हें उपपद

(*attendant*), शिलाशयः, सरसिजम्, पङ्कजम्, अण्डजः, जलजः, पतगः, भुजगः (१)।

४६। "उपसर्गाश्च" (२)। धातुके साथ उपसर्गका समास होता है। यथा, सम्—संस्करोति, संस्कारः (*repair, impression*), संस्कृत्य ; वि—विजयते, विजयः (*vicorty, conquest*), विजित्य ; अभि—अभिषिञ्चति, अभिषेकः, अभिषिच्य ; आ—आरभते, आरम्भः, आरभ्य।

४७। "ऊर्य्यादि-च्वि-डाचश्च" (३)। धातुके साथ ऊरी आदि (४) शब्दोंका, और च्वि तथा डाच् प्रत्ययोंका समास होता है। यथा, ऊरी—ऊरीकरोति (*promises*), ऊरीकरणम्, ऊरीकृत्य ; आविस्—आविष्करोति (*discovers, invents*), आविष्क्रिया, आविष्कृत्य ; प्रादुस्—प्रादुर्भवति, प्रादुर्भावः, प्रादुर्भूय ; च्वि—स्वीकरोति, स्वीकारः, स्वीकृत्य ; भस्मीभवति, भस्मीभावः, भस्मीभूय ; डाच्—समयाकरोति, समयाकरणम्, समयाकृत्य ; दुःखाकरोति, दुःखाक्रिया, दुःखाकृत्य।

कहते हैं। कुम्भकारः, यहाँ कुम्भम् इस उपपदके साथ कृ-धातुका समास होकर कुम्भकृ ऐसा होनेपर अण् हुआ है। (१) इन सबोंमें उपपद-तत्पुरुष-समास हुआ है। किन्तु पयोधरः इसमें पहले धरति इति धरः (धृ+अच्) हुआ ; पश्चात् पयसां धरः, यह षष्ठीतत्पुरुष समास होकर पयोधरः होता है, कारण यहां पयस् शब्द उपपद नहीं है। *Alternative forms of* पतगः (*a bird*), पतङ्गः, पतङ्गमः ; *of* भुजगः (*serpent*), भुजङ्गः भुजङ्गमः। (२) कुगतिप्रादयः (पा २।२।१८)। (३) पा १।४।६१। (४) ऊरी, उररी, आविस्, प्रादुस्, स्वधा, स्वाहा, वषट्, वौषट् इत्यादि।

५३। "अस्तम् च" (१)। धातुके साथ अस्तम् इस अव्यय शब्दका समास होता है। यथा, अस्तङ्गच्छति, (*sets*), अस्तङ्गतः, अस्तङ्गत्य (*setting*)।

५४। "अच्छ च वदगत्यर्थैः" (२)। वद्-धातु और गत्यर्थ-धातुके साथ 'अच्छ' (*before, in front of*) इस अव्यय शब्दका समास होता है। यथा, अच्छवदति, अच्छोद्य; अच्छगच्छति, अच्छगत्य; अभिमुखमित्यर्थः।

५५। "अन्तर्द्धौ तिरः" (३)। 'अन्तर्द्धि' अर्थात् व्यवधान बोध होनेसे धातुके साथ तिरस् इस अव्यय शब्दका समास होता है। यथा, तिरोभवति (*disappears*), तिरोभावः (*disappearance*), तिरोभूय।

५६। "विभाषा कृञ" (४)। कृ-धातुके साथ तिरस् इस अव्यय शब्दका विकल्पसे समास होता है। यथा, तिरस्कृत्य, तिरः कृत्वा (*upbraiding, reproaching, chiding, despising or removing*)।

५७। "साक्षात्प्रभृतीनि च" (५)। कृ-धातुके साथ 'साक्षात्' आदि (६) शब्दोंका विकल्पसे समास होता है। यथा, साक्षात्कृत्य, साक्षात् कृत्वा; नमस्कृत्य, नमः कृत्वा; वशेकृत्य, वशे कृत्वा; मिथ्याकृत्य, मिथ्या कृत्वा।

---

(१) पा १।४।६८। (२) अच्छ गत्यर्थवदेषु (पा १।४।६९)। (३) तिरोऽन्तर्द्धौ (पा १।४।७१)। (४) विभाषा कृञि (पा १।४।७२)। (५) पा १।४।७४। (६) साक्षात्, मिथ्या, नमस्, प्रादुस्, अर्थे, वशे, अमा, अच्छा,

५८। "अनुपश्लेष उरसि-मनसी" (१)। कृ-धातुके साथ उरसि, मनसि, इन दोनों सप्तम्यन्त पदोंका विकल्पसे समास होता है। यथा, उरसिकृत्य, उरसि कृत्वा, स्वीकृत्येत्यर्थः; मनसिकृत्य, मनसि कृत्वा, निश्चित्येत्यर्थः (*having resolved*)। उपश्लेष (अत्याधान, योग, *adherence*) अर्थमें नहीं होता। यथा, उरसि शयित्वा (*lying down on the bosom*)।

५९। "मध्ये पदे निवचने च" (२)। कृ-धातुके साथ मध्ये, पदे, निवचने, इन तीनों सप्तम्यन्त पदोंका विकल्पसे समास होता है। यथा, मध्येकृत्य, मध्ये कृत्वा; पदेकृत्य, पदे कृत्वा; निवचनेकृत्य, निवचने कृत्वा। उपश्लेष अर्थमें नहीं होता। यथा, मध्ये शयित्वा, पदे धृत्वा।

६०। "नित्यं हस्ते पाणावुपयमने" (३)। उपयमन अर्थात् विवाह अर्थ बोध होनेसे कृ-धातुके साथ हस्ते, पाणौ, इन दोनों सप्तम्यन्त पदोंका नित्य समास होता है। यथा, हस्तेकृत्य, पाणौकृत्य, दारकर्म्म कृत्वेत्यर्थः (*having held by the hand i. e. married*)। (४)

उष्णम्, शीतम्, आर्द्रम्, विकसने, प्रहसने, इत्यादि। (१) अनत्याधान उरसि-मनसी (पा १।४।७५)। (२) पा १।४।७६। (३) पा १।४।७७। (४) तत्पुरुष-समासके कुछ अतिरिक्त उदाहरण—वृहतां पतिः वृहस्पति, वनस्य पतिः वनस्पतिः, जीवनस्य मूतः जीमूतः, वारीणां वाहकः वलाहकः, काल्याः दासः कालिदासः, विश्वस्य मित्रम् विश्वामित्रः, अन्यस्य अर्थः अन्यदर्थः अन्यार्थः वा, ज्याम्

६१। "तत्पुरुषः समानाधिकरणपदः कर्म्मधारयः" (१)। जिस तत्पुरुष समासमें सभी समस्यमान पद समानाधिकरण, अर्थात् विशेष्यविशेषणभावापन्न, अथवा अभेदसम्बन्धके कारण एकार्थप्रतिपादक होते हैं, उसे कर्म्मधारय समास (*Appositional Compounds*) कहते हैं।

६२। "विशेषणं विशेष्येण" (२)। विशेष्य पदके साथ विशेषण पदका समास होता है। यथा, नीलम् उत्पलम् नीलोत्पलम्, शीतः पवनः शीतपवनः, उष्णम् उदकम् उष्णोदकम्, नवः पल्लवः नवपल्लवः, मधुरं वचनं मधुरवचनम्, नवम् अन्नम् नवान्नम्, सर्व्वे लोकाः सर्व्वलोकाः, विश्वे देवाः विश्वदेवाः, दृढ़ो बन्धः दृढ़बन्धः, सुरभि चन्दनं सुरभिचन्दनम्, नवः जलधरः नवजलधरः, सत् पुरुषः सत्पुरुषः, महान् देवः महादेवः, महान् वीरः महावीरः, परमः पुरुषः परमपुरुषः, केवलः वैयाकरणः केवलवैयाकरणः, जरन् (*old*) नैयायिकः जरन्नैयायिकः, सप्त ऋषयः सप्तर्षयः (*the seven sages, the Pleiades*), अष्टौ वसवः अष्टवसवः, नव ग्रहाः नवग्रहाः।

६३। "पुंवत् पूर्व्वं भाषितपुंस्कं कर्म्मधारये" (३)।

अधिगतम् अधिज्यम्, सुखम् अभिगतः अभिमुखः, वनस्य अग्रे अग्रेवणम् (*Agra*), गोष्ठे श्वा गोष्ठश्वः, शवानां शयनम् श्मशानम्, शुनः दन्तः श्वादन्तः, शुनः दंष्ट्रा श्वादंष्ट्रा, हरिः चन्द्रः इव हरिश्चन्द्रः, कु उष्णम् कोष्णम् कदुष्णम् कवोष्णम्। (१) तत्पुरुषः समानाधिकरणः कर्म्मधारयः (पा १।२।४२)। (२) विशेषणं विशेष्येण बहुलम् (पा २।१।५७)। (३) पुंवत् कर्म्मधारय-जातीयदेशीयेषु (पा ६।३.४२)। जातीय तथा देशीय प्रत्यय परे रहनेसे भी होता है। यथा, पाचिका जातीया

कर्म्मधारय समास होनेसे भाषितपुंस्क (१) स्त्रीलिङ्ग पूर्व्वपदका पुंवद्भाव होता है। यथा, सुन्दरी महिला सुन्दरमहिला, कृष्णा चतुर्द्दशी कृष्णचतुर्द्दशी (*the fourteenth day of the black fortnight*), पाचिका स्त्री पाचकस्त्री (*a female cook*), पञ्चमी कन्या पञ्चमकन्या (*the fifth daughter*), सुकेशी भार्य्या सुकेशभार्य्या, ब्राह्मणी भार्य्या ब्राह्मणभार्य्या (*a Brahmin wife*)। ऊङ् प्रत्ययान्तका नहीं होता। यथा, वामोरूः भार्य्या वामोरूभार्य्या (*a wife with handsome thighs i. e. a beautiful wife*)।

६४। "क्तेन नञ् विशिष्टेनानञ्" (२)। नञ् विशिष्ट क्त-प्रत्ययान्त पदके साथ नञ् शून्य क्त प्रत्ययान्त पदका समास होता है। यथा, कृतञ्च तत् अकृतञ्च कृताकृतम्, भुक्तञ्च तत् अभुक्तञ्च भुक्ताभुक्तम्, पीतञ्च तत् अपीतञ्च पीतापीतम्, क्लिष्टञ्च तत् अक्लिष्टञ्च क्लिष्टाक्लिष्टम्, पक्वञ्च तत् अपक्वञ्च पक्वापक्वम्। समान प्रकृतिके स्थलमें ही होता है, सिद्धञ्च अभुक्तञ्च ऐसे स्थलमें समास नहीं होता।

६५। "वर्णो वर्णेन" (३)। वर्णवाचक पदके साथ

पाचकजातीया (*looking like a female cook*), पाचिका देशीया पाचकदेशीया (*almost a female cook*)। (१) जो सब शब्द एक ही अर्थमें स्त्रीलिङ्ग और पुंलिङ्ग दोनों होते हैं उन्हें भाषितपुंस्क कहते हैं; जैसे, सुन्दर, मधुर आदि शब्द स्त्रीलिङ्ग पुंलिङ्ग दोनों होते हैं। जो सब शब्द नित्य स्त्रीलिङ्ग उन्हें भाषितपुंस्क नहीं कहते; जैसे श्री, लक्ष्मी आदि। (२) पा २।१।६०। (३) पा २।१।६९।

वर्णवाचक पदका समास होता है । यथा, नीलश्च स लोहितश्च नीललोहितः (*of blue and red colours, an epithet of Siva*), लोहितश्च स शवलश्च लोहितशवलः, पीतश्च स धवलश्च पीतधवलः, कृष्णश्च स सारङ्गश्च कृष्णसारङ्गः (*of black and variegated colours, the name of a kind of deer*) ।

६६ । "पूर्व्वोत्तरकालयोः क्तः" (१) । पूर्व्वकाल तथा उत्तरकाल बोध होनेसे क्त-प्रत्ययान्त पदका समास होता है । यथा, पूर्व्वं स्नातः पश्चादनुलिप्तः स्नातानुलिप्तः (*first bathed and then besmeared with sandal*) । ऐसे—यातायातः, शयितोत्थितः, दत्तापहृतम्, भुक्तोद्गीर्णम् (*first eaten up then cast off*) ।

६७ । "उपमानानि साधर्म्यवचनैः" (२) । उपमान तथा उपमेयके (३) समानधर्म्मबोधक पदके साथ उपमान-वाचक पदका समास होता है । यथा, घन इव श्यामः घनश्यामः (*dark like the cloud*), अर्णव इव गभीरः अर्णवगभीरः (*as deep as the sea*), शैल इव उन्नतः शैलोन्नतः (*high like a mountain*), अनल इव उज्ज्वलः अनलोज्ज्वलः

---

(१) पूर्व्वकालैकसर्व्वजरत्पुराणनवकेवलाः समानाधिकरणेन (पा २।१।४९)। एकश्चासौ नाथश्चेति एकनाथः (*Sole Lord*), पुराणाः (*ancient*) मीमांसकाः पुराणमीमांसकाः इत्यादि (*see examples of rules 62 and 66*) । (२) उपमानानि सामान्यवचनैः (पा २।१।५५) । (३) जिसके साथ उपमा दी जाती है उसे उपमान और जिसकी उपमा दी जाती है उसे उपमेय

(*bright like fire*), **नवनीतमिव कोमलः नवनीतकोमलः** (*soft like butter, as soft as butter*)। इसे उपमान-कर्म्मधारय-समास कहते हैं।

६८। "उपमेयानि व्याघ्रादिभिः साधर्म्म्याप्रयोगे" (१)। व्याघ्र आदि (२) उपमानवाचक पदोंके साथ उपमेयवाचक पदोंका समास होता है। यथा, **पुरुषो व्याघ्र इव पुरुषव्याघ्रः** (*a man like a tiger, i. e. a very powerful man*), **पुरुषः सिंह इव पुरुषसिंहः** (*a man like a lion, i. e. a great man*), **राजा चन्द्र इव राजचन्द्रः, मुखं कमलम् इव मुखकमलम्** (*a face like a lotus, i. e. a beautiful face*), **करः किसलयमिव करकिसलयम्, अधरः पल्लव इव अधरपल्लवः, वदनं सुधाकर इव वदनसुधाकरः**। उपमान तथा उपमेयके सामान्य धर्म्मका प्रयोग रहनेसे नहीं होता। यथा, पुरुषो व्याघ्र इव शूरः, मुखं कमलमिव सुन्दरम्। इसे उपमित-कर्म्मधारय-समास कहते हैं।

६९। "श्रेण्यादयः कृतादिभिरभूततद्भावे" (३)। 'अभूत-

कहते हैं। यथा मुखं कमलमिव यहां कमल उपमान और मुख उपमेय है।

(१) उपमितं व्याघ्रादिभिः सामान्याप्रयोगे (पा २।१।५६)। (२) व्याघ्र, सिंह, ऋक्ष, ऋषभः, वृक, वृष, वराह, कुञ्जर, चन्द्र, कमल, किसलय इत्यादि। इस समासमें व्याघ्र-आदि शब्द श्रेष्ठ-अर्थ प्रगट करते हैं। "स्युरुत्तरपदे व्याघ्रपुङ्गवर्षभकुञ्जराः। सिंहशार्दूलनागाद्याः पुंसि श्रेष्ठार्थवाचकाः॥" (३) श्रेण्यादयः कृतादिभिः (पा २।१।५९); श्रेण्यादिषु च्व्यर्थवचनं कर्त्तव्यम् (वा० १९९६)।

तद्भाव' अर्थ बोध होनेसे कृत आदि (१) शब्दोंके साथ श्रेणि आदि (२) शब्दोंका समास होता है। यथा, अश्रेणयः श्रेणयः कृताः श्रेणिकृताः, अपूगाः पूगाः कृताः पूगकृताः, अराशयः राशयः कृताः राशिकृताः, अश्रेणयः श्रेणयो भूताः, श्रेणिभूताः, अनिपुणा निपुणा भूताः निपुणभूताः, अकुशलाः कुशला भूताः कुशलभूताः। (३)

७०। "संख्यापूर्व्वो द्विगुः" (४)। जिस कर्म्मधारयमें पूर्व्वपदके स्थानमें संख्यावाचक शब्द रहता है, उसे द्विगु समास (*Numeral Compounds*) कहते हैं।

७१। "तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारेषु" (५)। तद्धितार्थमें, उत्तरपद परे रहनेसे तथा समाहार बोध होनेसे द्विगु समास होता है। यथा, तद्धितार्थमें—पञ्चभिर्गोभिः क्रीतः पञ्चगुः; उत्तरपद परे रहनेसे—पञ्च हस्ताः प्रमाणमस्य पञ्चहस्तप्रमाणः। प्रमाणशब्द उत्तरपद परे रहनेके कारण, पञ्च और हस्ताः इन दोनों पदोंसे द्विगु समास हुआ है।

---

(१) कृत, मित, मत, भूत, उक्त, युक्त, समाज्ञात, समाम्नात, समाख्यात, सम्भावित, संसेवित, अवधारित, अवकल्पित, निराकृत, उपकृत, उपाकृत, दृष्ट, फलित, दलित, उदाहृत, विश्रुत, उदित। (२) श्रेणि, पूग, मुकुन्द, राशि, निचय, विशेष, विधान (निधन), पर, इन्द्र, देव, मुण्ड, भूत, प्रवण (श्रमण), वदान्य, अध्यापक, अभिरूपक, ब्राह्मण, क्षत्रिय, विशिष्ट, पटु, पण्डित, कुशल, चपल, निपुण, कृपण। (३) च्वि-प्रत्यय होनेपर तन्निबन्धन सब कार्य्य भी होते हैं। यथा, श्रेणीकृतः, पूगीकृतः, राशीकृतः, श्रेणीभूतः, निपुणीभूतः, राशीभूतः, कुशलीभूतः इत्यादि। (४) पा २।१।५२। (५) तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च (पा २।१।५१)।

७२। "अदन्तादीप् समाहारे" (१)। समाहार-द्विगु होनेसे अकारान्त शब्दके उत्तर ईप् होता है। यथा, त्रयाणां लोकानां समाहारः त्रिलोकी (*the three worlds taken together*), चतुर्णां पदानां समाहारः चतुष्पदी, पञ्चानां नलानां समाहारः पञ्चनली, सप्तानां शतानां समाहारः सप्तशती।

७३। "न भुवनादेः" (२)। 'भुवन' आदिके उत्तर ईप् नहीं होता। यथा, त्रयाणां भुवनानां समाहारः त्रिभुवनम् (*the three worlds taken collectively*), चतुर्णां युगानां समाहारः चतुर्युगम्, पञ्चानां पात्राणां समाहारः पञ्चपात्रम्।

७४। "मयूरव्यंसकादयः" (३)। 'मयूरव्यंसक' आदि शब्द निपातनसे सिद्ध होते हैं। यथा, मयूरो व्यंसकः मयूर-व्यंसकः (*a cunning peacock*), उदक् च अवाक् च उच्चावचम् (*high and low, great and small*), नास्ति किञ्चन यस्य अकिञ्चनः (*poor*), नास्ति कुतोऽपि भयं यस्य अकुतोभयः (*fearless*), अन्योऽर्थः अर्थान्तरम्, अन्यो देशः देशान्तरम्, चित् एव चिन्मात्रम्, या इच्छा यदृच्छा।

७५। "आख्यातमाख्यातेन क्रियासातत्ये" (४)। क्रियाका सतत अनुष्ठान बोध होनेसे आख्यात पदके साथ आख्यात पदका समास होता है। पद निपातनसे सिद्ध होता है। यथा, अश्नीत

---

(१) अकारान्तोत्तरपदो द्विगुः स्त्रियामिष्टः (वा० १५५६)। द्विगोः (पा ४।१।२१)। (२) पात्राद्यन्तस्य न (वा० १५५९)। (३) मयूरव्यंसकादयश्च (पा २।१।७२)। (४) गण-सूत्र २०।

पिबत इत्येवं सततमभिधीयते यस्यां क्रियायां सा अश्नीत-पिबता (*a feast in which people are invited to eat and drink*)। ऐसे—पचतभुञ्जता, खादतमोदता, खादता-चमता ; अहं पूर्व्वम् अहं पूर्व्वम् इति यस्यां क्रियायां अभिधीयते सा अहंपूर्व्विका।

७६। "सर्व्व-पुण्य-संख्याव्ययेभ्यो रात्रेरन्" (१)। सर्व्व, पुण्य, संख्यावाचक और अव्यय शब्दके परवर्त्ती रात्रि-शब्दके उत्तर अन् होता है। यथा, सर्व्वा रात्रिः सर्व्वरात्रः, पुण्या रात्रिः पुण्यरात्रः। ऐसे—द्विरात्रम् (२), त्रिरात्रम्, पञ्चरात्रम्, दशरात्रम् (*an aggregate of ten nights*), अतिरात्रः (*dead of night, prepared over-night*)।

७७। "अह्नोऽह्नश्च" (३)। सर्व्व, पुण्य, संख्यावाचक तथा अव्यय शब्दके परवर्त्ती अहन् शब्दके उत्तर अन् होता है और अहन्के स्थानमें अह्न होता है। यथा, सर्व्वमहः सर्व्वाह्णः, द्वयोरह्नोः भवः द्व्यह्नः, पञ्चसु अहःसु भवः पञ्चाह्नः।

७८। "न संख्यायाः समाहारे" (४)। समाहार होनेसे संख्यावाचकके परवर्त्ती अहन्-शब्दके स्थानमें अह्न नहीं होता। यथा, द्वयोरह्नोः समाहारः द्व्यहः (*a period of two days*)। ऐसे—त्र्यहः, दशाहः।

७९। "न पुण्यैकाभ्याम्" (५)। पुण्य तथा एक शब्दके

(१) अहःसर्व्वैकदेश-संख्यातपुण्याच्च रात्रेः (पा ५।४।८७)। (२) संख्यापूर्व्वं रात्रं क्लीबम् (वा०)। (३) अह्नोऽह्न एतेभ्यः (पा ५।४।८८)। (४) न संख्यादेः समाहारे (पा ५।४।८९)। (५) उत्तमैकाभ्यां च (पा ५।४।९०)।

परवर्त्ती अहन्‌के स्थानमें अह्न् नहीं होता। यथा, पुण्याहम् (*an auspicious or lucky day*), एकाहः (*one day*)।

८०। "संख्याऽव्ययाभ्यामङ्गुलेः" (१)। संख्यावाचक शब्द और अव्ययशब्दके परवर्त्ती अङ्गुलि-शब्दके उत्तर अन् होता है। यथा, द्वे अङ्गुली प्रमाणमस्य द्व्यङ्गुलम् (*two fingers long*)। ऐसे—त्र्यङ्गुलम् निरङ्गुलम् (निर्गतम् अङ्गुलिभ्यः *that which exceeds a finger's length*)।

८१। "राजाहःसखिभ्यष्टः" (२)। राजन्, अहन् तथा सखि शब्दोंके उत्तर ट होता है; ट् इत्, अ रहता है। यथा, अङ्गानां राजा अङ्गराजः, महान् राजा महाराजः; परममहः परमाहः, उत्तममहः उत्तमाहः; राज्ञः सखा राजसखः, प्रियः सखा प्रियसखः।

८२। "गोरतद्धितार्थे" (३)। गो-शब्दके उत्तर ट होता है। यथा, राज्ञो गौः राजगवः, परमो गौः परमगवः, दश गावो धनमस्य दशगवधनः, पञ्चानां गवां समाहारः पञ्चगवम् (*a collection of five cows*)। तद्धितार्थमें नहीं होता। यथा, पञ्चभिर्गोभिः क्रीतः पञ्चगुः (*bought with five cows*)।

८३। "मुख्यार्थादुरसः" (४)। 'मुख्य' इस अर्थका वाचक उरस् शब्दके उत्तर ट होता है। यथा, अश्वानाम् उरः इव अश्वोरसम् मुख्योऽश्व इत्यर्थः (*an excellent horse*)।

---

(१) तत्पुरुषस्याङ्गुलेः संख्याव्ययादेः (पा ५।४।८६)। (२) राजाहःसखिभ्यष्टच् (पा ५।४।९१)। (३) गोरतद्धितलुकि (पा ५।४।९२)। (४)

८४ । "अनोऽश्मायः-सरसां जातिसंज्ञयोः" (१) । जाति और संज्ञा बोध होनेसे अनस्, अश्मन्, अयस् और सरस् शब्दों के उत्तर ट होता है । यथा, जाति—उपानसम् (*a cart-load*), अमृताश्मः, कालायसम् (*iron, steel*), मण्डूकसरसम् ; संज्ञा—महानसम् (*a great carriage, a kitchen*), पिण्डाश्मः, लोहितायसम् (*copper*), जलसरसम् ।

८५ । "ग्रामकौटाभ्यां तक्ष्णः" (२) । ग्राम और कौट शब्दोंके परवर्त्ती तक्षन् (*carpenter*) शब्दके उत्तर ट होता है । यथा, ग्रामतक्षः (ग्रामस्य तक्षा) साधारणः सूत्रधर इत्यर्थः (*a carpenter who works for the people of the village*) ; कौटतक्षः (कुट्यां भवः कौटः, *independent,* स चासौ तक्षा चेति स्वतन्त्रः सूत्रधर इत्यर्थः (*an independent carpenter, a carpenter who works at home on his own account*) । अन्यत्र, राजतक्षा (राज्ञस्तक्षा, *the carpenter of a king*) ।

८६ । "अतेः शुनः" (३) । अति-शब्दके परवर्त्ती 'श्वन्' शब्दके उत्तर ट होता है । यथा, अतिक्रान्तः श्वानम् अतिश्वो वराहः (*a boar that surpasses a dog in strength or speed*), अतिश्वी सेवा (*service more degrading or contemptible than that of a dog*) ।

अग्राख्यायामुरसः (पा ५।४।९३) । (१) पा ५।४।९४ । (२) ग्रामकौटाभ्यां च तक्ष्णः (पा ५।४।९५) । (३) पा ५।४।९६ ।

८७। "उपमानादप्राणिषु" (१)। उपमानवाचक श्वन्-शब्दके उत्तर ट होता है। यथा, आकर्षः (*throw of dice*) श्वेव आकर्षश्वः (*a dog-like throw of dice i. e. a bad or unlucky throw*)। प्राणी बोध होनेसे ट नहीं होता। यथा, वानरश्वा (*a monkey like a dog*)।

८८। "उत्तर-मृग-पूर्व्वोपमानेभ्यः सक्थ्नः" (२)। उत्तर, मृग, पूर्व्व और उपमानवाचकके परवर्त्ती सक्थि-शब्दके उत्तर ट होता है। यथा, उत्तरसक्थम्, मृगसक्थम्, पूर्व्वसक्थम्; उपमान—फलकमिव सक्थि फलकसक्थम्।

८९। "नावो द्विगोरतद्धितार्थे" (३)। द्विगुसमासस्थित नौ-शब्दके उत्तर ट होता है। यथा, द्वयोर्नावोः समाहारः द्विनावम्, पञ्च नावो धनमस्य पञ्चनावधनः (*one whose wealth consists of five boats*)। तद्धितार्थमें ट नहीं होता। यथा, पञ्चभिर्नौभिः क्रीतः पञ्चनौः। द्विगु भिन्न स्थलमें—राज्ञो नौः राजनौः, नवीना नौः नवीननौः (*a new boat*)।

९०। "अर्द्धाच्च" (४)। अर्द्ध-शब्दके परवर्त्ती नौ शब्दके उत्तर ट होता है। यथा, अर्द्धं नावः अर्द्धनावम् (*half a boat*)। परलिङ्ग नहीं हुआ।

९१। "खार्य्या विभाषा" (५)। द्विगु समास होनेसे

---

(१) पा॰५।४।९७। (२) ॰उत्तरमृग-पूर्व्वाच्च सक्थ्नः (पा ५।४।९८)। (३) नावो द्विगोः (पा ५।४।९९)। (४) पा ५।४।१००। (५) खार्य्याः प्राचाम् (पा ५।४।१०१)।

अथवा अर्द्ध-शब्द पूर्व्वमें रहनेसे 'खारी' शब्दके उत्तर विकल्पसे ट होता है। यथा, द्वे खार्य्यौ प्रमाणमस्य द्विखारम्, द्विखारि ; अर्द्धं खार्य्याः अर्द्धखारम्, अर्द्ध खारी।

६२। "द्वित्रिभ्यामञ्जलेः" (१)। द्विगु समास होनेसे द्वि और त्रि शब्दोंके परवर्त्ती अञ्जलि-शब्दके उत्तर विकल्पसे ट होता है। यथा, द्वयोरञ्जल्योः समाहारः द्व्यञ्जलम्, द्व्यञ्जलि ; त्र्यञ्जलम्, त्र्यञ्जलि ; द्वावञ्जली जलमस्य द्व्यञ्जलजलः, द्व्यञ्जलि-जलः। तद्धितार्थ द्विगु-समासमें ट नहीं होता। यथा, द्वाभ्याम् अञ्जलिभ्यां क्रीतः द्व्यञ्जलिः। द्विगु भिन्न अन्य समासमें भी नहीं होता। यथा, द्वयोरञ्जलिः द्व्यञ्जलिः।

६३। "जनपदादुब्रह्मणः" (२)। जनपदवाचक शब्दके परवर्त्ती ब्रह्मन् शब्दके उत्तर ट होता है। यथा, सुराष्ट्रस्य सुराष्ट्रे वा ब्रह्मा सुराष्ट्रब्रह्मः। ऐसे—अवन्तिब्रह्मः, कलिङ्गब्रह्मः। अन्यत्र, देवब्रह्मा नारदः।

६४। "विभाषा कु-महद्भ्याम्" (३)। कु और महत शब्दोंके परवर्त्ती ब्रह्मन्-शब्दके उत्तर विकल्पसे ट होता है। यथा, कुत्सितो ब्रह्मा कुब्रह्मः, कुब्रह्मा। ऐसे—महाब्रह्मः, महाब्रह्मा (*The Supreme Spirit*)।

६५। "अक्ष्णोऽचक्षुषि" (४)। अक्षि-शब्दके उत्तर ट होता है। यथा, गवामक्षीव गवाक्षः (*a round window*)।

---

(१) पा ५।४।१०२। (२) ब्रह्मणो जानपदाख्यायाम् (पा ५।४।१०४)। (३) कुमहद्भ्यामन्यतरस्याम् (पा ५।४।१०५)। (४) अक्ष्णोऽदर्शनात् (पा ५।४।७६)।

'चक्षु' बोध होनेसे नहीं होता। यथा, बालकस्य अक्षि बालकाक्षि।

६६। "वृद्धमहज्जातेभ्य उक्ष्णः" (१)। वृद्ध, महत् तथा जात शब्दके परवर्त्ती 'उक्षन्' (*bull*) शब्दके उत्तर ट होता है। यथा, वृद्धः उक्षा वृद्धोक्षः, महान् उक्षा महोक्षः (*a great or big bull*), जातः उक्षा जातोक्षः।

६७। "निःश्रेयस-पुरुषायुषे" (१)। निःश्रेयस और पुरुषायुष शब्द निपातनसे सिद्ध होते हैं। यथा, निश्चितं श्रेयः निःश्रेयसम् (*final beatitude*), पुरुषस्यायुः पुरुषायुषम् (*the duration of a man's life*)।

६८। "विभाषा छायादि नपुंसकम्" (२)। छाया (३) आदि शब्द विकल्पसे नपुंसक होते हैं। यथा, तरुच्छायम् तरुच्छाया, गोशालम् गोशाला।

६९। "नित्यं छाया वाहुल्ये" (४)। पूर्व्व पदार्थका

---

(१) अचतुरविचतुरसुचतुरस्त्रीपुंसधेन्वनुडुहर्क्सामवाङ्मनसाक्षिभ्रुवदारगवोर्व्वष्ठीवपदष्ठीवनक्तन्दिवरात्रिन्दिवाहर्दिवसरजसनिःश्रेयसपुरुषायुषद्व्यायुषत्र्यायुषर्ग्यजुषजातोक्षमहोक्षवृद्धोक्षोपशुनगोष्ठश्वाः (पा ५।४।७७) (२) विभाषा सेनासुराच्छायाशालानिशानाम (पा २।४।२५)। यथा, वृक्षस्य वृक्षयोर्वा छाया वृक्षच्छायम्, वृक्षच्छाया; गोशालम्, गोशाला; ब्राह्मणसेनम्, ब्राह्मणसेना; यवसुरम्, यवसुरा; श्वनिशम्, श्वनिशा (कृष्णा चतुर्द्दशी, *the fourteenth day of the black fortnight*, तस्यां किल केचित् श्वान उपवसन्ति, *the night in which certain dogs are said to have fasted*)। (३) छाया, शाला, सेना, सुरा, निशा। (४) छाया बाहुल्ये (पा २।४।२२)।

बाहुल्य बोध होनेसे छाया-शब्द नित्य नपुंसक होता है। यथा, इक्षूणां छाया इक्षुच्छायम्, शराणां छाया शरच्छायम्।

१००। "सभा प्रभुपर्य्यायपूर्व्वा" (१)। प्रभुपर्य्याय शब्द पूर्व्वमें रहनेसे सभा-शब्द नित्य नपुंसक होता है। यथा, प्रभुसभम्, ईश्वरसभम्। राजसभा (२) आदि स्थलोंमें नहीं होता।

१०१। "रक्षःपिशाचादिपूर्व्वा च" (१)। रक्षस्, पिशाच आदि शब्द पूर्व्वमें रहनेसे सभा-शब्द नित्य नपुंसक होता है। यथा, रक्षःसभम्, पिशाचसभम्। अन्यत्र मनुष्यसभा, देवदत्त-सभा।

१०२। "अशाला च" (३)। शालाभिन्नार्थवाचक सभा-शब्द नित्य नपुंसक होता है। यथा, स्त्रीसभम्, स्त्रीणां समूहः इत्यर्थः; शिशुसभम् शिशूनां समवाय इत्यर्थः।

१०३। "पुंवत् कुक्कुटीप्रभृतीनामण्डादौ" (४)। अण्ड आदि शब्द परे रहनेसे कुक्कुटी आदि शब्दोंका पुंवद्भाव होता है। यथा, कुक्कुट्या अण्डं कुक्कुटाण्डम् हंस्या अण्डं हंसाण्डम्, कुक्कुट्याः शावः कुक्कुटशावः, हंस्याः शावः हंसशावः, मृग्याः पदं मृगपदम्, मृग्याः क्षीरं मृगक्षीरम्।

---

(१) सभा राजाऽमनुष्यपूर्व्वा (पा २।४।२३); पर्य्यायस्यैवेष्यते (वा० ५१९); अमनुष्यशब्दो रूढ्या रक्षःपिशाचादीनाह (भट्टोजिदीक्षित)। (२) राजन् शब्द पूर्व्वमें रहनेसे नहीं होता; किन्तु राजपर्य्याय शब्द पूर्व्वमें रहनेसे होता है। यथा, नृपसभम्, इनसभम् (*the council of a king*)। (३) पा २।४।२४। (४) कुक्कुट्यादीनामण्डादिषु पुंवद्वचनम् (वा० ६९६४)।

बहुव्रीहि-समास (Relative or Attributive Compounds) ।

१ । "बहुव्रीहिः" (१) । इस प्रकरणमें जिस समासका विधान होता है उसका नाम बहुव्रीहि है ।

२ । "अनेकमन्यपदार्थे" (२) । एकसे अधिक प्रथमान्त पद अन्य (अर्थात् प्रथमासे भिन्न द्वितीयान्त प्रभृति) पदके अर्थमें विद्यमान रहनेसे बहुव्रीहि समास होता है । यथा, आरूढ़ो वानरो यम् आरूढ़वानरो वृक्षः, कृतं कर्म्म येन कृतकर्म्मा पुरुषः, दत्तं धनं यस्मै दत्तधनो दरिद्रः, उद्धृतम् उदकं यस्मात् उद्धृतोदकः कूपः, दीर्घौ बाहू यस्य दीर्घबाहुः पुरुषः, प्रफुल्लानि कमलानि यस्मिन् प्रफुल्लकमलं सरः ।

३ । "संख्ययाव्ययासन्नादूराधिकसंख्याः" (३) । संख्यावाचक शब्दके साथ अव्यय, आसन्न, अदूर, अधिक और संख्यावाचक शब्दोंका बहुव्रीहि समास होता है ।

४ । "सख्याया अबहोर्डः" (४) । संख्यावाचक शब्दके उत्तर ड होता है ; ड् इत्, अ रहता है । यथा, दशानां समीपे ये ते उपदशाः (*about ten i. e. nine or eleven*), विंशतेरासन्नाः आसन्नविंशाः (*about twenty i. e. ninteen or twenty-one*), त्रिंशतोऽदूरे अदूरत्रिंशाः (*not far from thirty*), चत्वारिंशतोऽधिका अधिकचत्वारिंशाः (*more than forty*), द्वौ वा त्रयो वा द्वित्राः (*two or three*),

---

(१) शेषो बहुव्रीहिः (पा २।२।२३) । (२) पा २।२।२४ । (३) संख्ययाऽव्ययासन्नादूराधिकसंख्याः संख्येये (पा २।२।२५) । (४) बहुव्रीहौ संख्येये डच-

पञ्च वा षड् वा पञ्चषाः (*five or six*)। बहु-शब्दके उत्तर नहीं होता। यथा, बहूनां समीपे उपबहवः (१)।

५। "दिङ्नामान्यन्तराले" (२)। 'अन्तराल' बोध होनेसे दिग्वाचक पूर्व्वा आदि शब्दोंका बहुव्रीहि समास होता है। यथा, पूर्व्वस्या उत्तरस्याश्च दिशोरन्तरालं पूर्व्वोत्तरा (*north-east*), दक्षिणस्याः पूर्व्वस्याश्च दिशोरन्तरालं दक्षिण-पूर्व्वा (*south-east*), उत्तरस्याः पश्चिमायाश्च दिशोरन्तरालम् उत्तरपश्चिमा (*north-west*)।

६। "सहस्तृतीयया" (३)। तृतीयान्त पदके साथ सह-शब्दका बहुव्रीहि समास होता है।

७। "सहः सो विभाषा" (४)। बहुव्रीहि समासमें सह-शब्दके स्थानमें विकल्पसे स होता है। यथा, पुत्रेण सह सपुत्रः, सहपुत्रः ; अनुजेन सह सानुजः, सहानुजः ; बान्धवेन सह सबान्धवः, सहबान्धवः ; भृत्येन सह सभृत्यः, सहभृत्यः।

८। "रणव्यतिहारे तृतीयासप्तम्योः सरूपयोः" (५)। परस्पर युद्ध बोध होनेसे समानरूप तृतीयान्त तथा सप्तम्यन्त पदका बहुव्रीहि समास होता है।

९। "दीर्घोऽन्त्यः पूर्व्वस्य" (६)। रणव्यतिहारमें समास होनेसे पूर्व्वपदके अन्त्यस्वरका दीर्घ होता है।

बहुगणात् (पा ५।४।७३)। (१) गण-शब्दके उत्तर भी नहीं होता। यथा, उपगणाः। (२) पा २।२।२६। (३) तेन सहेति तुल्ययोगे (पा २।२।२८)। (४) वोपसर्ज्जनस्य (पा ६।३।८२)। (५) तत्र तेनेदमिति सरूपे (पा २।२।२७)। (६) अन्येषामपि दृश्यते (पा ६।३।१३७)।

१०। "इच् परात्" (१)। रणव्यतिहारमें समास होनेसे पर पद्के उत्तर इच् होता है ; च् इत्, अव्यय होता है ; इच् परे अन्त्य उवर्णका गुण होता है। यथा, केशेषु केशेषु गृहीत्वा इदं युद्धं प्रवृत्तं केशाकेशि, दण्डैश्च दण्डैश्च प्रहृत्य इदं. युद्धं प्रवृत्तं दण्डादण्डि। ऐसे—मुष्टीमुष्टि, बाहूबाहवि (२), अस्यसि (*sword against sword*)।

११। "स्त्रियाः पुंवद्भाषितपुंस्कायाः स्त्रियाम्" (३)। बहुव्रीहि समासमें, स्त्रीलिङ्ग शब्द परे रहनेसे, भाषितपुंस्क स्त्रीलिङ्ग शब्दका पुंवद्भाव होता है। यथा, स्थिरा बुद्धिरस्य स्थिरबुद्धिः, महती मतिरस्य महामतिः, चित्रा गतिरस्य चित्रगतिः, दृढ़ा भक्तिरस्य दृढ़भक्तिः, प्रिया भार्य्यास्य प्रियभार्य्यः, शीता गौरस्य शीतगुः (*the moon, camphor*)।

१२। "नोबन्तस्य" (३)। बहुव्रीहि समासमें ऊप्-प्रत्ययान्त स्त्रीलिङ्गका पुंवद्भाव नहीं होता। यथा, वामोरूः भार्य्यास्य वामोरूभार्य्यः।

१३। "न कोपधस्य" (४)। जिस स्त्रीलिङ्ग शब्दके उपधास्थलमें तद्धितका किंवा अक-प्रत्ययका क रहता है, उसका

---

(१) इच् कर्म्मव्यतिहारे (पा ५।४।१२७)। (२) वोपदेवके अनुसार पूर्व्व पदके अन्त्यस्वरके स्थानमें विकल्पसे आ होता है। यथा, मुष्टामुष्टि, मुष्टीमुष्टि ; बाहाबाहवि, बाहूबाहवि। स्वरवर्ण परे रहनेसे नहीं होता। यथा, अस्यसि। (३) स्त्रियाः पुंवद्भाषितपुंस्कादनूङ् समानाधिकरणे स्त्रियामपूरणीप्रियादिषु (पा ६।३।३४)। (४) न कोपधायाः (पा ६।३ ३७) ; कोपधप्रतिषेधे तद्धितवुग्रहणम् (वा० ३९३१)।

पुंवद्भाव नहीं होता। यथा, तद्धित—रसिका भार्य्यास्य रसिकाभार्य्यः; अक-प्रत्यय—पाचिका भार्य्यास्य पाचिकाभार्य्यः। अन्यत्र होता है। यथा, एका भार्य्यास्य एकभार्य्यः।

१४। "न संज्ञा-पूरण्योः" (१)। संज्ञावाचक तथा पूरणवाचक स्त्रीलिङ्ग शब्दका पुंवद्भाव नहीं होता। संज्ञा-वाचक—दत्ता भार्य्यास्य दत्ताभार्य्यः, गङ्गा भार्य्यास्य गङ्गाभार्य्यः, रोहिणी भार्य्यास्य रोहिणीभार्य्यः, रेवती भार्य्यास्य रेवतीभार्य्यः; पूरणवाचक—द्वितीया भार्य्यास्य द्वितीयाभार्य्यः, पञ्चमी भार्य्यास्य पञ्चमीभार्य्यः।

१५। "न जाति स्वाङ्गयोः" (२) जातिवाचक स्त्रीलिङ्ग शब्दका और स्वाङ्गवाचक ईकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्दका पुंवद्भाव नहीं होता। यथा, जातिवाचक—ब्राह्मणी भार्य्यास्य ब्राह्मणी-भार्य्यः, क्षत्रिया भार्य्यास्य क्षत्रियाभार्य्यः; स्वाङ्गवाचक—सुकेशी भार्य्यास्य सुकेशीभार्य्यः, कृशाङ्गी भार्य्यास्य कृशाङ्गीभार्य्यः। किन्तु सुकेशा भार्य्यास्य सुकेशभार्य्यः, कृशाङ्गा भार्य्या अस्य कृशाङ्गभार्य्यः (*a man having a wife of slender body*)।

१६। "न प्रियादि-पूरण्योः" (१)। बहुव्रीहि समासमें

---

(१) संज्ञापूरण्योश्च (पा ६।३।३८)। स्त्रियाः पुंवद्भाषितपुंस्कादनूङ् समानाधिकरणे स्त्रियामपूरणीप्रियादिषु (पा ६।३।३४)। (२) स्वाङ्गाच्चेतः (पा ६।३।४०); जातेश्च (पा ६।३।४१)। काशिका, सिद्धान्तकौमुदी आदि ग्रन्थोंमें "जातेश्च" इस सूत्रमें 'ईतः' की अनुवृत्ति नहीं की गई इसलिये उनके अनुसार क्षत्रियाभार्य्यः, शूद्राभार्य्यः आदि प्रयोग ठीक है। किन्तु मुग्धबोधके अनुसार इन

प्रिया (१) आदि शब्द परे रहनेसे, पूर्व्ववर्त्ती स्त्रीलिङ्ग शब्दका पुंवद्भाव नहीं होता। यथा, शोभना प्रियास्य शोभनाप्रियः, सुलोचना कान्तास्य सुलोचनाकान्तः।

१७। "अप् पूरणी-प्रमाणीभ्याम्" (२)। पूरणवाचक शब्दके और प्रमाणी शब्दके उत्तर अप् होता है; प् इत्, अ रहता है। यथा, कल्याणी पञ्चमी यासां रात्रीणां ताः कल्याणीपञ्चमा रात्रयः (३) (*the nights of which the fith is auspicious, nights the complement of which is an auspicious fith night*), स्त्री प्रमाणी येषां ते स्त्रीप्रमाणाः कुटुम्बिनः।

१८। "नञ्-सु-वि-त्र्युपेभ्यश्चतुरः" (४)। नञ्, सु, वि,

जगहोंमें पुंवद्भावकी प्रसक्ति है। (१) प्रिया, मनोज्ञा, कल्याणी, सुभगा, दुर्भगा, सचिवा, स्वा, कान्ता, क्षान्ता, समा, चपला, वामना। भक्ति, तनया, दुहिता, ये तीन शब्द भी प्रियादिगणमें पठित होते हैं, किन्तु सर्व्वत्र ही विपरीत प्रयोग देखनेमें आता है, इसलिये गणके भीतर नहीं दिये गये। (२) अप् पूरणी-प्रमाण्योः (पा ५।४।११६)। (३) मुख्य पूरणीके उत्तर अप् होता है, गौण पूरणीके उत्तर नहीं होता। 'कल्याणी पञ्चमी रात्रिर्यस्मिन् पक्षे स कल्याणपञ्चमीकः पक्षः'। यहां पूरणवाचक शब्द गौण है इस हेतु उसके उत्तर अप् नहीं हुआ। असमस्त अवस्थामें जिस अर्थका वाचक होता है समस्त अवस्थामें भी उसी अर्थका वाचक होनेसे ही मुख्य कहते हैं; और असमस्त अवस्थामें जिस अर्थका वाचक होता है, समस्त अवस्थामें तद्भिन्नार्थवाचक होनेसे गौण कहते हैं। 'कल्याणपञ्चमा रात्रयः' यहां पूरण-वाचक शब्द असमस्त तथा समस्त दोनों अवस्थाओंमें ही रात्रिवाचक है, इसलिये मुख्य है; और 'कल्याणपञ्चमीक' पक्षः' यहां पूरणवाचक शब्द असमस्त अवस्थामें रात्रिवाचक है, किन्तु समस्त अवस्थामें तद्वाचक न होकर तद्भिन्नार्थ पक्ष-वाचक हुआ है इसलिये यह गौण है। (४) अचतुर-विचतुर-सुचतुर इत्यादि (पा ५.४.७७) Foot-note (1), page 229; त्र्युपाभ्यां चतुरोऽजिष्यते (वा० ३३५१)।

त्रि उप, इन सभोंके परवर्त्ती चतुर्-शब्दके उत्तर अप् होता है। यथा, अविद्यमानानि चत्वार्य्यस्य अचतुरः। ऐसे—सुचतुरः, विचतुरः, त्रिचतुरः, उपचतुरः।

१९। "नेतुर्नक्षत्रात्" (१)। नक्षत्र-वाचक शब्दके परवर्त्ती नेतृ शब्दके उत्तर अप् होता है। यथा, मृगनेत्राः पुष्यनेत्राः वा रात्रयः (*the nights of which the Mrigasira or Pushya constellation is the leader i. e. the position of which in the heavens marks their advance*)।

२०। "नाभेः संज्ञायाम्" (२)। संज्ञा-बोध होनेसे नाभि शब्दके उत्तर अप् होता है। यथा, उन्नाभः, ऊर्णनाभः (*a spider*), पद्मनाभः (*an epithet of Vishnu*)।

२१। "अन्तर्ब्बहिर्भ्यां लोम्नः" (३)। अन्तर् तथा बहिस् शब्दके परवर्त्ती लोमन् शब्दके उत्तर अप् होता है। यथा, अन्तर्लोमानि यस्य अन्तर्लोमः, बहिर्लोमानि यस्य बहिर्लोमः।

२२। "नञ्-दुः-सुभ्यः सक्थ्नो वा" (४)। नञ्, दुः, सु, इन तीनोंके परवर्त्ती सक्थि शब्दके उत्तर विकल्पसे अप् होता

---

(१) नेतुर्नक्षत्रे अब् व्यक्तव्यः (वा० ३३६०)। (२) अन्यत्रापि च दृश्यते। पद्मनाभः (पा ५।४।६५ सूत्रे काशिका)। (३) अन्तर्वहिर्भ्यां च लोम्नः (पा ५।४।११७)। (४) नञ्-दुः-सुभ्यो हलि सक्थ्योरन्यतरस्याम् (पा ५।४।१२१)।

है। यथा, असक्थः, असक्थिः; दुःसक्थः, दुःसक्थिः; सुसक्थः, सुसक्थिः (*one having good thighs*)।

२३। "सक्थ्यक्ष्णोः षः स्वाङ्गे" (१)। 'स्वाङ्ग' बोध होनेसे बहुव्रीहि समासमें सक्थि और अक्षि शब्दोंके उत्तर ष होता है; ष् इत्, अ रहता है। यथा, दीर्घे सक्थिनी अस्य दीर्घसक्थः पुरुषः (*a man having long thighs*, वृत्ते सक्थिनी अस्याः वृत्तसक्थी नारी (*a woman who has round thighs*). दीर्घे अक्षिणी अस्मिन् दीर्घाक्षं वदनम् (*a face with long eyes*), विशाले अक्षिणी अस्याः विशालाक्षी देवी। 'स्वाङ्ग' बोध न होनेसे नहीं होता। यथा, दीर्घसक्थि शकटम्, स्थूलाक्षिः (२) इक्षुदण्डः (*a sugar-cane with big eye-like knots*)।

२४। "अङ्गुलेर्दारुणि" (३)। दारु (लकड़ी, *wood*) बोध होनेसे अंगुलि-शब्दके उत्तर ष होता है। यथा, पञ्चांगुलं दारु (*a piece of wood five fingers long*। दारु भिन्न स्थलमें—पञ्चांगुलिर्हस्तः (*a hand with five fingers*)।

२५। "द्वित्रिभ्यां मूर्द्ध्नः" (४)। द्वि तथा त्रि शब्दके

---

(१) बहुव्रीहौ सक्थ्यक्ष्णोः स्वाङ्गात् षच् (पा ५।४।११३)। (२) काशिकावृत्तिमें भी 'स्थूलाक्षिः इक्षुः' यह उदाहरण है; परन्तु "अक्ष्णोऽदर्शनात् (पा ५।४।७६) इस सूत्रसे समासान्त अच् होनेके कारण 'स्थूलाक्षा इक्षुः' अथवा 'स्थूलाक्षः इक्षुदण्डः' होना ही समीचीन है। इसलिये भट्टोजिदीक्षितने "स्थूलाक्षा वेणुयष्टिः' यह उदाहरण दिया है। (३) पा ५।४।११४। (४) द्वित्रिभ्यां षः

परवर्त्ती मूर्द्धन्-शब्दके उत्तर ष होता है। यथा, द्वौ मूर्द्धानावस्य द्विमूर्द्धः, त्रयो मूर्द्धानोऽस्य त्रिमूर्द्धः (*three-headed*)। अन्यत्र नहीं होता। यथा, पञ्च मूर्द्धानोऽस्य पञ्चमूर्द्धा।

२६। "असू नञ्-दुः-सुभ्यः प्रजायाः" (१)। नञ्, दुर्, सु, इन तीनोंके परवर्त्ती प्रजा- शब्दके उत्तर असू होता है। यथा, अप्रजाः (*having no progeny or descendants*), दुष्प्रजाः (*having bad progeny*), सुप्रजाः।

२७। "मन्दाल्पाभ्याञ्च मेधायाः" (१)। नञ्, दुर्, सु, मन्द, अल्प, इन सभोंके परवर्त्ती मेधा-शब्दके उत्तर असू होता है। यथा, अमेधाः (*having no retentive memory*), दुर्मेधाः, सुमेधाः, मन्दमेधाः, अल्पमेधाः।

२८। "धर्म्मादन् केवलात्" (२)। धर्म्म-शब्दके उत्तर अन् होता है। यथा, सुधर्म्मा, शुभधर्म्मा, अर्ज्जितधर्म्मा। धर्म्मशब्द अन्य शब्दके साथ मिला रहनेसे नहीं होता। यथा, परमस्वधर्म्मः।

२९। "दक्षिणादीर्म्माल्लुब्धयोगे" (३)। व्याध-सम्बन्ध बोध होनेसे दक्षिण शब्दके परवर्त्ती ईर्म्म-शब्दके उत्तर अन् होता है। यथा, दक्षिणे ईर्म्मं व्रणं यस्य दक्षिणेर्म्मा मृगः (*a stag wounded on the right side by a hunter*) व्याधेन दक्षिणे पार्श्वे कृतव्रण इत्यर्थः (४)।

मूर्द्धः (पा ५।४।११५)। (१) नित्यमसिच् प्रजामेधयोः (पा ५।४।१२२)। (२) धर्म्मादनिच् केवलात् (पा ५।४।१२४)। (३) दक्षिणेर्म्मा लुब्धयोगे (पा ५।४।१२६)। (४) स्वयंजाते व्रणे दक्षिणेर्म्मा मृगः।—गोयीचन्द्र।

३०। "प्र-सम्भ्यां जानुनोः ज्ञुः" (१)। प्र, सम्, इन दोनों अव्ययोंके परवर्त्ती जानु शब्दके स्थानमें ज्ञु होता है। यथा, प्रज्ञुः (*a bandy-legged person i. e. one having crooked shanks*), संज्ञुः (*one having pretty shanks*)।

३१। "ऊर्द्ध्वाद्विभाषा" (२)। ऊर्द्ध्व शब्दके परवर्त्ती जानु शब्दके स्थानमें विकल्पसे ज्ञु होता है। यथा, ऊर्द्ध्वज्ञुः, ऊर्द्ध्वजानुः (*one having long shanks*)।

३२। "नसो नासिकायाः संज्ञायाम्" (३)। संज्ञा बोध होनेसे नासिका-शब्दके स्थानमें नस होता है। यथा, द्रुरिव नासिका अस्य द्रुणसः, वार्ध्रीव नासिकास्य वार्ध्रीणसः (४), गौरिव नासिकास्य गोनसः। स्थूल शब्दके उत्तर नहीं होता। यथा स्थूला नासिकास्य स्थूलनासिकः। संज्ञा-बोध नहीं होनेसे नहीं होता। यथा, तुङ्गा नासिकास्य तुङ्गनासिकः पुरुषः।

३३। "उपसर्गाच्च" (५)। उपसर्गके परवर्त्ती नासिका शब्दके स्थानमें नस होता है। यथा, प्रणसः, उन्नसः, अपनसः।

३४। "खर-खुराभ्यां नस् च" (६)। खर और खुर शब्दोंके परवर्त्ती नासिका शब्दके स्थानमें नस और नस् होते हैं। यथा, खरनसः खरणाः ; खुरनसः, खुरणाः।

३५। "विग्राद्यः" (७)। वि-उपसर्ग-सहित नासिका

(१) प्रसम्भ्यां जानुनोर्ज्ञुः (पा ५।४।१२९)। (२) पा ५।४।१३०। (३) अञ् नासिकायाः संज्ञायां नसं चास्थूलात् (पा ५।४।११८)। (४) वार्ध्री *a thong*; वार्ध्रीणसः *an old white goat, an animal having a thong through its perforated nostrils.* वार्ध्रीनसः *a rhinoceros.* (५) पा ५।४।११९। (६) खुरखराभ्यां वा नस् (वा० ३३६३) ; पक्षे अजपीष्यते। (७) वेर्ग्रो वक्तव्यः.

के स्थानमें विग्र, विख्र, विख्, विख्य, विख, विखु (all meaning *nose-less*) निपातनसे सिद्ध होते हैं । (१) ।

३६ । "जानिर्जायायाः" (२) । जाया शब्दके स्थानमें जानि (आदेश) होता है । यथा, युवतिर्जायास्य युवजानिः, प्रिया जायास्य प्रियजानिः, सुन्दरी जायास्य सुन्दरजानिः ।

३७ । "इर्गन्धादुत्-सु-पूति-सुरभिभ्यः" (३) । उत्, सु, पूति, सुरभि, इनके परवर्त्ती गन्ध-शब्दके उत्तर इ होता है । यथा, उद्गन्धिः, सुगन्धिः, पूतिगन्धिः, सुरभिगन्धिः । द्रव्यान्तरके गन्धसम्बन्धमें नहीं होता । यथा, सुगन्धः पवनः ।

३८ । "अल्पसंयोगे" (४) । 'अल्पसंयोग' बोध होनेसे गन्ध-शब्दके उत्तर इ होता है । यथा, घृतगन्धि, दधिगन्धि, सूपगन्धि भोजनम् ।

३९ । "उपमानाच्च" (५) । उपमानवाचक पदके परवर्त्ती गन्ध-शब्दके उत्तर इ होता है । यथा, पद्मस्येव गन्धोऽस्य पद्मगन्धिः, करीषगन्धिः (*having the smell of dried cow-dung*) । (६) ।

४० । "पादस्य पादुपमानादहस्त्यादेः" (७) । उपमान-

(वा० ३३६५) ; खास्य (वा० ३३६६) । (१) नियम ३३ के अनुसार विगता नासिकास्य (वि उपसर्ग-सहित नासिकाके स्थानमें) विनसः भी होता है । (२) जायाया निङ् (पा ५।४।१३४) । (३) गन्धस्येदुत्पूतिसुसुरभिभ्यः (पा ५।४।१३५) ; गन्धस्य इत्त्वे तदेकान्तग्रहणम् (वा० ३३६८) । (४) अल्पाख्यायाम् (पा ५।४।१३६) । (५) पा ५।४।१३७ । (६) बोपदेवके अनुसार विकल्पसे । (७) पादस्य लोपोऽहस्त्यादिभ्यः (पा ५।४।१३८) ।

वाचक पदके परवर्त्ती पाद-शब्दके स्थानमें पाद् होता है। यथा, व्याघ्रस्येव पादावस्य व्याघ्रपात्। हस्तिन् (१) आदिके परवर्त्ती होनेसे नहीं होता। यथा, हस्तिन इव पादावस्य हस्तिपादः।

४१। संख्या-सुपूर्व्वस्य च" (२)। संख्यावाचक शब्द तथा सु पूर्व्वमें रहनेसे पाद-शब्दके स्थानमें पाद् होता है। यथा, द्विपात्, त्रिपात् चतुष्पात्, सुपात्।

४२। "स्त्रियां कुम्भादेः पद्" (३)। स्त्रीलिङ्गमें कुम्भ (४) आदिके परवर्त्ती पाद-शब्दके स्थानमें पद् होता है। यथा, कुम्भपदी, एकपदी, द्विपदी, त्रिपदी, शतपदी, विष्णुपदी, आर्द्रपदी।

४३। "सुहृद्-दुर्हृदौ मित्रामित्रयोः" (५)। मित्र, अमित्र, इन दोनों अर्थोंमें यथाक्रम सुहृद्, दुर्हृद्, ये दो शब्द निपातनसे सिद्ध होते हैं। यथा, शोभनं हृदयमस्य सुहृत् मित्रम्; दुष्टं हृदयमस्य दुर्हृत् अमित्रः।

४४। "उरःप्रभृतिभ्यः कप्" (६)। उरस् (७) आदि शब्दोंके उत्तर कप् होता है; प् इत्, क रहता है। यथा,

---

(१) हस्तिन्, कुद्दाल, अश्व, अज, कपोत, जाल, गण्ड, गण्डोल (*molasses*), कुसूल (*a grain-jar*) इत्यादि। (२) संख्यासुपूर्व्वस्य (पा ५।४।१४०)। (३) कुम्भपदीषु च (पा ५।४।१३९)। (४) कुम्भ, एक, द्वि, त्रि, शत, सूल, जाल, मुनि, गुण, सूच, गोधा, तृण, विष्णु, आर्द्र, कृष्ण, शुचि स्थूणा (*post, pillar*) इत्यादि। (५) पा ५।४।१५०। (६) पा ५।४।१५१। (७) उरस्, उपानह्, पुमस्, पयस्, दधि, मधु, शालि, सर्पिस्, अनडुह्, नौ, निर् तथा नञ्-पूर्व्वक अर्थ।

व्यूढमुरोऽस्य व्यूढोरस्कः (*having a broad chest*), उपानद्भ्यां सह सोपानत्कः, भाषितः पुमाननेन भाषितपुंस्कः, न विद्यते अर्थोऽस्मिन् निरर्थकम्, अनर्थकम् ।

४५। "इनन्तात् स्त्रियाम्" (१)। स्त्रीलिङ्गमें इन्-भागान्त शब्दके उत्तर कप् होता है। यथा, बहवोऽस्यां धनिनः बहुधनिका नगरी, बहवोऽस्यां वाग्मिनः बहुवाग्मिका सभा ।

४६। "ऋदन्त-नदीभ्याञ्च" (२)। ऋकारान्त और नदीसंज्ञक शब्दोंके उत्तर कप् होता है। यथा, ऋदन्त—एकपितृकः, समातृकः, मृतभर्त्तृका ; नदीसंज्ञक—मृतपत्नीकः, बहुकुमारीकः (*where there are numerous virgins*) ।

४७। "शेषाद्विभाषा" (३)। पूर्व्वोक्तोंओंसे भिन्नोंके उत्तर विकल्पसे कप् होता है। यथा, धृतधनुष्कः, धृतधनुः ; लब्धयशस्कः, लब्धयशाः ; मुण्डितशिरष्कः, मुण्डितशिराः ; अर्ज्जितधनकः, अर्ज्जितधनः ; बहुयोगिकः, बहुयोगी ; समानवयस्कः, समानवयाः ।

४८। "नेयसुनः" (४)। ईयसुन् प्रत्ययान्त शब्दोंके उत्तर कप् नहीं होता। यथा, बहुप्रेयान्, बहुप्रेयसी ।

४९। "न प्रशंसायां भ्रातुः" (५)। 'प्रशंसा' बोध होनेसे भ्रातृ-शब्दके उत्तर कप् नहीं होता। यथा, सुभ्राता, पण्डितभ्राता, साधुभ्राता। अन्यत्र, मूर्खभ्रातृकः, बहुभ्रातृकः ।

---

(१) इनः स्त्रियाम् (पा ५।४।१५२)। (२) नद्यृतश्च (पा ५।४।१५३)। (३) पा ५।४।१५४। (४) ईयसश्च (पा ५।४।१५६)। (५) वन्दिते भ्रातुः (पा ५।४।१५७)।

५०। "न नाड़ीतन्त्र्योः स्वाङ्गे" (१)। 'स्वाङ्ग' बोध होनेसे नाड़ी और तन्त्री शब्दोंके उत्तर कप् नहीं होता। यथा, बहुनाड़िः कायः, बहुतन्त्रीर्ग्रीवा। स्वाङ्ग बोध नहीं होनेसे, बहुनाड़ीकः स्तम्भः, बहुतन्त्रीका वीणा।

५१। "सुप्रातादयः" (२)। बहुव्रीहि-समासमें सुप्रात आदि शब्द निपातनसे सिद्ध होते हैं। यथा, शोभनं प्रातरस्य सुप्रातः, शोभनं दिवास्य सुदिवः, चतस्रोऽश्रयः अस्य चतुरश्रः (*quadrangular*)।

द्वन्द्व-समास (Copulative Compounds)।

१। "द्वन्द्वः" (३)। इस प्रकरणमें जो समास विहित होता है उसका नाम द्वन्द्व है। (४)

२। "परलिङ्गं द्वन्द्वे" (५)। द्वन्द्व-समास होनेसे, समस्त भाग परपदका लिङ्ग प्राप्त होता है।

---

(१) नाड़ीतन्त्र्योः स्वाङ्गे (पा ५।४।१५९)। (२) सुप्रातसुश्वसुदिवशारिकुक्ष-चतुरश्रैणीपदाजपदप्रोष्ठपदाः (पा ५।४।१२०)। सुप्रात, सुश्व, सुदिव, शारिकुक्ष, (चतुः-अश्रि *four-cornered*) चतुरश्र, एणीपद (एणी *a deer or a kind of short-legged black antelope*) *one having deer-like feet*, अजपद, (प्रोष्ठ *a bull*) प्रोष्ठपद (*one with bull-like fect ; the month of Bhadra*), ये सब शब्द निपातन-सिद्ध हैं। (३) चार्थे द्वन्द्वः (पा २।२।२९)। अनेकं सुबन्तं चार्थे वर्त्तमानं वा समस्यते स द्वन्द्वः। (४) समुच्चय, अन्वाचय, इतरेतरयोग और समाहार इन चारों चकारार्थोंमेंसे इतरेतरयोग और समाहार इन दोनों चकारार्थोंमें प्रयुक्त एकसे अधिक सुबन्त पदोंके समासको द्वन्द्व-समास कहते हैं। इस लिये द्वन्द्व समास दो प्रकारके हैं—इतरेतर द्वन्द्व और समाहार द्वन्द्व। (५) परवल्लिङ्गं द्वन्द्वतत्पुरुषयोः (पा २।४।२६)।

३। "इतरेतरयोगे" (१)। परस्पर (आपसमें) योग (*mutual conjunction*) बोध होनेसे द्वन्द्व समास होता है। यथा, हरिश्च हरश्च हरिहरौ, रामश्च लक्ष्मणश्च रामलक्ष्मणौ, भीमश्च अर्ज्जुनश्च भीमार्ज्जुनौ, धवश्च खदिरश्च पलाशश्च धवखदिरपलाशाः, कन्दश्च मूलश्च फलश्च कन्दमूलफलानि, शब्दश्च स्पर्शश्च रूपश्च रसश्च गन्धश्च शब्दस्पर्शरूपरसगन्धाः। 'हरिहरौ' यहां हरि-पदार्थ तथा हर-पदार्थका परस्पर योग बोध होता है; 'धवखदिरपलाशाः' यहां धव-पदार्थ, खदिर-पदार्थ तथा पलाश-पदार्थका परस्पर योग बोध होता है।

४। "समाहारे च" (१)। दो अथवा बहु पदार्थोंका समाहार (समूह, समष्टि, *collection*) बोध होनेसे द्वन्द्व-समास होता है। (२)

५। "प्राणि-तूर्य्य-सेनाङ्गानाम्" (३)। द्वन्द्व-समासमें प्राण्यङ्ग (*the parts of an animal body*), तूर्य्याङ्ग (*the varieties of musical instruments*), तथा सेनाङ्ग

---

(१) समुच्चयान्वाचयेतरेतरयोगसमाहाराश्चार्थाः। समुच्चयान्वाचययोरसामर्थ्यात् समासो न। धवखदिरौ छिन्धीति मिलितानामन्वय इतरेतरयोगः। संज्ञापरिभाषमिति समूहः समाहारः। (भट्टोजिदीक्षित)। (२) बहुधा इतरेतर द्वन्द्व और समाहार द्वन्द्व ऐच्छिक (*optional*) हैं अर्थात् अधिकांश स्थलोंमें द्वन्द्व समास इतरेतर तथा समाहार दोनों ही हो सकते हैं। यथा, रामश्च लक्ष्मणश्च रामलक्ष्मणौ रामलक्ष्मणं वा, धवश्च खदिरश्च पलाशश्च धवखदिरपलाशाः धवखदिरपलाशं वा। किन्तु स्थल-विशेषमें समाहार नित्य होता है, स्थलविशेषमें विकल्पसे होता है और स्थलविशेषमें समाहार हो ही नहीं सकता। (३) द्वन्द्वश्च प्राणितूर्य्यसेनाङ्गानाम् (पा २।४।२)।

(*the parts of an army*)-वाचक पदोंका समाहार होता है। यथा, प्राण्यङ्ग—पाणिश्च पादश्च पाणिपादम्, करश्च चरणश्च करचरणम्, दन्तश्च ओष्ठश्च दन्तौष्ठम्, कर्णश्च नासिका च कर्णनासिकम्, भ्रुवौ च ललाटश्च भ्रूललाटम्, पृष्ठञ्च उदरञ्च पृष्ठोदरम्; तूर्य्याङ्ग—पणवश्च मृदङ्गश्च पणवमृदङ्गम्, शङ्खश्च दुन्दुभिश्च शङ्खदुन्दुभि, भेरी च पटहश्च भेरीपटहम् (१), ऋषभश्च गान्धारश्च ऋषभगान्धारम्, धैवतश्च पञ्चमश्च धैवतपञ्चमम्, षड्जश्च मध्यमश्च षड्जमध्यमम्; सेनाङ्ग—रथिकाश्च अश्वारोहाश्च रथिकाश्वारोहम्, शाक्तीकाश्च याष्टीकाश्च शाक्तीकयाष्टीकम्, परशवश्च करवालाश्च परशुकरवालम्, धनूंषि च शराश्च धनुःशरम्, शराश्च तूणीराश्च शरतूणीरम् (२)।

६। "नदीवाचिनां लिङ्गभेदे" (३)। लिङ्गकी विभिन्नता रहनेपर नदीवाचक पदोंका समाहार होता हैं। यथा, गङ्गा च शोणश्च गङ्गाशोणम्, उद्ध्यश्च इरावती च उद्ध्यैरावति,

---

(१) किसी किसीके मतमें यहां तूर्य्याङ्ग=तूर्य्य-वादक है। "अत्र प्राणिसेनयोरङ्गं नामावयवः। तूर्य्यस्य त्वङ्गं नामोपकारकं बोध्यम्।" (तत्वबोधिनी)। उनके अनुसार इसका उदाहरण—मार्द्दङ्गिकश्च पाणविकश्च मार्द्दङ्गिकपाणविकम्, वीणावादकश्च परिवादकश्च वीणावादकपरिवादकम् इत्यादि होना चाहिये और पणवमृदङ्गम् आदि उदाहरण "जातिरप्राणिनाम्" (पा २।४।६) सूत्रके हैं। (२) सेनाङ्ग-वाचक पदोंके केवल बहुवचनमें ही समाहार होता है, अन्य वचनमें नहीं। यथा, शरश्च तूणीरश्च शरतूणीरौ, शक्तिश्च परशुश्च करवालश्च शक्तिपरशुकरवालाः। (३) विशिष्टलिङ्गो नदीदेशोऽग्रामाः (पा २।४।७)।

ब्रह्मपुत्रश्च चन्द्रभागा च ब्रह्मपुत्रचन्द्रभागम्। लिङ्गकी विभिन्नता न रहनेसे नहीं होता। यथा, गङ्गा च यमुना च गङ्गायमुने, सरस्वती च दृषद्वती च सरस्वतीदृषद्वत्यौ।

७। "देशवाचिनाञ्च" (१)। लिङ्गकी विभिन्नता रहने पर देशवाचक पदोंका समाहार होता है। यथा, कुरवश्च कुरुक्षेत्रञ्च कुरुकुरुक्षेत्रम्, कुरवश्च जाङ्गलञ्च कुरुजाङ्गलम्, मथुरा च पाटलिपुत्रश्च मथुरापाटलिपुत्रम्। लिङ्गकी विभिन्नता न रहनेसे नहीं होता। यथा, मद्राश्च केकयाश्च मद्रकेकयाः, विदेहाश्च कलिङ्गाश्च विदेहकलिङ्गाः। ग्रामवाचक पदोंका समाहार नहीं होता। यथा, जाम्बवञ्च शालूकिनी च जाम्बव-शालूकिन्यौ।

८। "वा पशु-शकुनि-क्षुद्रजन्तुवाचिनां बहुवचने" (२)। बहुवचनमें पशुवाचक, शकुनिवाचक और क्षुद्रजन्तुवाचक पदोंका विकल्पसे समाहार होता है। यथा, पशुवाचक— गावश्च महिषाश्च गोमहिषम्, गोमहिषाः; वृकाश्च कुरङ्गाश्च वृककुरङ्गम्, वृककुरङ्गाः; गोमायवश्च गर्द्दभाश्च गोमायुगर्द्दभम्, गोमायुगर्द्दभाः; शकुनिवाचक—हंसाश्च सारसाश्च हंससारसम् हंससारसाः; वकाश्च चक्रवाकाश्च वकचक्रवाकम्, वकचक्रवाकाः; कोकिलाश्च मयूराश्च कोकिलमयूरम् कोकिल-

(१) विशिष्टलिङ्गो नदीदेशोऽग्रामाः (पा २।४।७) (२) विभाषा वृक्षमृग-तृणधान्यव्यञ्जनपशुशकुन्यश्ववडवपूर्व्वापराधरोत्तराणाम् (पा २।४।१२); क्षुद्रजन्तवः (पा २।४।८); फलसेनाङ्गवनस्पतिमृगशकुनिक्षुद्रजन्तुधान्यतृणानां बहुप्रकृतिरेव द्वन्द्व एकवदिति वाच्यम् (वा० १५५०)।

मयूराः ; क्षुद्रजन्तुवाचक—दंशाश्च मशकाश्च दंशमशकम्, दंशमशकाः ; यूकाश्च मक्षिकाश्च यूकमक्षिकम्, यूकमक्षिकाः ; मत्कुणाश्च पिपीलिकाश्च मत्कुणपिपीलिकम्, मत्कुण-पिपीलिकाः ।

९ । "फल तृण-तरुवाचकानाञ्च" (१) । बहुवचनमें फलवाचक, तृणवाचक और तरुवाचक पदोंका विकल्पसे समाहार होता है । यथा, फलवाचक—बदराणि च आमल-कानि च बदरामलकम्, बदरामलकानि ; खर्ज्जुराणि च नारि-केलानि च खर्ज्जुरनारिकेलम्, खर्ज्जुरनारिकेलानि ; व्रीहयश्च यवाश्च व्रीहियवम्, व्रीहियवाः ; मुद्गाश्च माषाश्च मुद्गमाषम्, मुद्गमाषाः ; तृणवाचक—कुशाश्च काशाश्च कुशकाशम्, कुश-काशाः ; तरुवाचक—अश्वत्थाश्च न्यग्रोधाश्च अश्वत्थन्यग्रोधम्, अश्वत्थन्यग्रोधाः ।

१० । "नित्यं नित्यविरोधिनाम्" (२) । जो सब जन्तु परस्पर नित्यविरोधी, बहुवचनमें तद्वाचक पदोंका नित्य समा-हार होता है । यथा, अहयश्च नकुलाश्च अहिनकुलम् (*the serpent and the mungoos*) काकाश्च (*crows*) उलूकाश्च (*owls*) काकोलूकम्, मार्ज्जाराश्च मूषिकाश्च मार्ज्जारमूषिकम् । (३)

(१) विभाषा वृक्षमृगतृणधान्य इत्यादि (पा २।४।१२) ; फलसेनाङ्ग इत्यादि (वा० १५४०) ; *Foot-note (2), page 246*. (२) येषां च विरोधः शाश्वतिकः (पा २।४।९) । (३) किन्तु विरोध नित्य अर्थात् स्वाभाविक न होकर नैमित्तिक होनेसे समाहार नहीं होता । यथा, देवाश्च असुराश्च देवासुराः, कुरवश्च पाण्डवाश्च कुरुपाण्डवाः ।

११। "गवाश्वप्रभृतीनाञ्च" (१)। गवाश्व (२) आदियोंका नित्य समाहार होता है। यथा, गावश्च अश्वाश्च गवाश्वम्, अजाश्च अविकाश्च (*sheep*) अजाविकम्, पुत्त्राश्च पौत्त्राश्च पुत्त्रपौत्त्रम्।

१२। विभाषा पूर्व्वापरादीनाम्" (३)। पूर्व्वापर आदियोंका विकल्पसे समाहार होता है। यथा, पूर्व्वश्च अपरश्च पूर्व्वापरम्, पूर्व्वापरे ; अधरं च उत्तरं च अधरोत्तरम्, अधरोत्तरे ; दधि च घृतं च दधिघृतम्, दधिघृते।

१३। "विरुद्धानामविशेषणानाञ्च" (४)। परस्पर-विरुद्ध पदार्थोंका विकल्पसे समाहर होता है। यथा, शीतश्च उष्णश्च शीतोष्णम्, शीतोष्णे ; सुखश्च दुःखश्च सुखदुःखम्, सुखदुःखे ; आलोकश्च अन्धकारश्च आलोकान्धकारम्, आलोकान्धकारौ ; जन्म च मरणञ्च जन्ममरणम्, जन्ममरणे। विशेषण होनेसे नहीं होता। यथा, शीतोष्णे पयसी। (५)

---

(१) गवाश्वप्रभृतीनि च (पा २।४।११)। (२) गवाश्वम्, गवाविकम्, गवैडकम्, अजाविकम्, अजैडकम् (अज, *a goat*, एडक, *a ram*), कुब्जवामनम्, कुब्जकिरातम्, पुत्त्रपौत्त्रम्, श्वचण्डालम्, स्त्रीकुमारम्, दासीमाणवकम्, शाटीपटीरम्, शाटीप्रच्छदम्, शाटीपट्टिकम्, उष्ट्रखरम्, उष्ट्रशशम्, मूत्रशकृत्, मूत्रपुरीषम्, यकृन्मेदः, मांसशोणितम्, दर्भशरम्, दर्भपूतिकम्, अर्ज्जुनशिरीषम्, अर्ज्जुनपुरुषम्, तृणोपलम्, दासीदासम्, कुटीकुटम्, भागवतीभागवतम्। (३) विभाषा वृक्षमृगतृणधान्यव्यञ्जन-पशुशकुन्यश्ववडवपूर्व्वापराधरोत्तराणाम् (पा २।४।१२)। (४) विप्रतिषिद्धञ्चानधिकरणवाचि (पा २।४।१३)। (५) द्रव्यवाचक होनेसे भी नहीं होता। यथा, स्वर्गनरकौ।

१४। "शूद्राणामनिरवसितानां नित्यम्" (१) शूद्रवाचक पदोंका नित्य समाहार होता है। यथा, गोपाश्च नापिताश्च गोपनापितम्, कर्म्माराश्च (*blacksmiths*) कुम्भकाराश्च कर्म्मारकुम्भकारम्, ताम्बूलिकाश्च तन्तुवायाश्च ताम्बूलिकतन्तुवायम्। निरवसित (२) शूद्रोंका नहीं होता। यथा, चण्डालाश्च मृतपाश्च चण्डालमृतपाः।

१५। "न दधिपयःप्रभृतीनाम्" (३)। दधिपयस् (४) आदियोंका समाहार नहीं होता। यथा, दधिपयसी, सर्पिर्मधुनी, शुक्लकृष्णौ, दीक्षातपसी, उलूखलमुसले।

१६। "अश्चवर्ग-द-ष-हान्तात् समाहारे" (५)। समाहार द्वन्द्वमें चवर्गान्त, दकारान्त, षकारान्त और हान्त शब्दोंके उत्तर अ होता है। यथा, वाक्त्वचम्, श्रीस्रजम्, समिद्दृषदम्, सम्पद्विपदम्, वाक्त्विषम्, वाग्विप्रुषम्, छत्रोपानहम्, धेनुगोदुहम्। समाहार न होनेसे नहीं होता। यथा, श्रीस्रजौ, प्रावृट्शरदौ।

१७। "ऋदन्ताद्द्वन्द्वे ङा विद्यागोत्रसम्बन्धे" (६)।

---

(१) शूद्राणामनिरवसितानाम् (पा २।४।१०)। (२) यैर्भुक्ते पात्रं संस्कारेणापि न शुद्ध्यति ते निरवसिताः। (३) न दधिपयआदीनि (पा २।४।१४)। (४) दधिपयस्, सर्पिर्मधु, मधुसर्पिस्, ब्रह्मप्रजापति, शिववैश्रवण, स्कन्दविशाख, परिव्राट्कौशिक, प्रवर्ग्योपसद, शुक्लकृष्ण, इध्मवर्हिस् (*fuel and fire*), दीक्षातपस्, श्रद्धातपस्, मेधातपस्, अध्ययनतपस्, उलूखलमुसल, आद्यवसान, श्रद्धामेधा, ऋक्साम, वाङ्मनस। (५) द्वन्द्वाच्चुदषहान्तात् समाहारे (पा ५।४।१०६)। (६) आनङ् ऋतो द्वन्द्वे (पा ६।३।२५)।

विद्यासम्बन्ध और गोत्रसम्बन्ध रहनेसे, और ऋकारान्त शब्द परवर्त्ती होनेसे, ऋकारान्त शब्दके उत्तर डा होता है ; ड् इत्, आ रहता है। यथा, विद्यासम्बन्धमें—होता च पोता च होतापोतारौ, नेष्टा च उद्गाता च नेष्टोद्गातारौ ; गोत्रसम्बन्धमें—माता च पिता च मातापितरौ, याता च ननान्दा च यातननान्दारौ, याता च देवा च यातादेवरौ। (१)

१८। "पुत्रे च" (२)। पुत्रशब्द परे रहनेसे ऋदन्त शब्दके उत्तर डा होता है। यथा, पिता च पुत्रश्च पितापुत्रौ, माता च पुत्रश्च मातापुत्रौ।

१९। "देवतावाचिनां पूर्व्वात्" (३)। देवतावाचक पदोंका द्वन्द्व होनेसे पूर्व्वपदके उत्तर डा होता है। यथा, इन्द्रश्च वरुणश्च इन्द्रावरुणौ, मित्रश्च वरुणश्च मित्रावरुणौ, सूर्य्यश्च चन्द्रमाश्च सूर्य्याचन्द्रमसौ, अग्निश्च विष्णुश्च अग्नाविष्णू।

२०। "न ब्रह्मप्रजापत्यादेः"। 'ब्रह्मप्रजापति' प्रभृतिके उत्तर डा नहीं होता। यथा, ब्रह्मा च प्रजापतिश्च ब्रह्मप्रजापती,

---

(१) ऋकारान्त पद परे न रहनेसे—पिता च पितामहश्च पितृपितामहौ। होता च पोता च नेष्टा च उद्गाता च होतृपोतृनेष्टोद्गातारः ; यहां पोतृ-शब्द उत्तरपद (अर्थात् समासका शेष पद) न होनेके कारण होतृ-पदके तथा नेष्टृ शब्द उत्तरपद न होनेके कारण पोतृ-पदके ऋके स्थानमें आ नहीं हुआ केवल उद्गातृ शब्द उत्तरपद होनेके कारण पूर्व्ववर्त्ती नेष्टृ-पदके ऋके स्थानमें आ हुआ है। (२) पुत्रेऽन्यतरस्याम् (पा ६।३।२२)। (३) देवताद्वन्द्वे च (पा ६।३।२६)।

अग्निश्च वायुश्च अग्निवायू, वायुश्च अग्निश्च वाय्वग्नी, वायुश्च सोमश्च वायुसोमौ ।

२१ । "ईदग्नेः सोमवरुणयोः" (१) । सोम तथा वरुण शब्द परे रहनेसे अग्नि-शब्दके उत्तर ईत् होता है ; त् इत्, ई रहता है। यथा, अग्निश्च सोमश्च अग्नीषोमौ, अग्निश्च वरुणश्च अग्नीवरुणौ ।

२२ । "दिवो द्यावा" (२) । पूर्व्ववर्त्ती दिव्‌के स्थानमें द्यावा होता है । यथा, द्यौश्च भूमिश्च द्यावाभूमी, द्यौश्च क्षमा च द्यावाक्षमे ।

२३ । "दिवस् च पृथिव्याम्" (३) । पृथिवी-शब्द परे रहनेसे दिव्‌के स्थानमें द्यावा और दिवस् होते हैं । यथा, द्यौश्च पृथिवी च द्यावापृथिव्यौ, दिवस्पृथिव्यौ ।

२४ । "मातरपितरौ" (४) । यह पद निपातनसे सिद्ध होता है । यथा, माता च पिता च मातरपितरौ ।

२५ । "दम्पती जम्पती वा" (५) । जाया और पति शब्दोंका समास होनेसे विकल्पमें दम्पती तथा जम्पती होते हैं । यथा, जाया च पतिश्च जायापती, दम्पती, जम्पती ।

२६ । "नित्यं स्त्रीपुंसादयः" (६) । द्वन्द्वसमास

(१) पा ६।३।२७ । (२) पा ६।३।२९ । (३) दिवसश्च पृथिव्याम् (पा ६।३।३०) । (४) मातरपितरावुदीचाम् (पा ६।३।३२) ; मातरपितरौ उदीचाम्, उदीच्य (*northern*) वैयाकरणोंके अनुसार माता च पिता च मातरपितरौ होता है । (५) धर्म्मादिष्वनियमः (वा० १४१८) ; जायाशब्दस्य जम्भावो दम्भावश्च वा निपात्यते (भट्टोजिदीक्षित) । (६) अचतुरविचतुर इत्यादि (पा ५।४।७७) ; *Foot-note (4), page 197.*

होनेसे स्त्रीपुंसौ (१) आदि निपातनसे सिद्ध होते हैं। यथा, स्त्री च पुमांश्च स्त्रीपुंसौ, वाक् च मनश्च वाङ्मनसे, नक्तञ्च दिवा च नक्तन्दिवम्, रात्रौ च दिवा च रात्रिन्दिवम्, अहनि च दिवा च अहर्दिवम्, अहश्च रात्रिश्च अहोरात्रः।

एकशेष-प्रकरण।

२७। "सरूपाणामेकशेष एकविभक्तौ" (२)। एक-विभक्ति होनेसे समानाकारके (३) एकसे अधिक पदोंमेंसे केवल एक ही पद अवशिष्ट (शेष) रहता है। दो पदोंका एकशेष होनेसे अवशिष्ट पद द्विवचनान्त और बहुपदोंका एकशेष होनेसे अवशिष्ट पद बहुवचनान्त होता है। यथा, तरुश्च तरुश्च तरू, तरुश्च तरुश्च तरुश्च तरवः, फलञ्च फलञ्च फले, फलञ्च फलञ्च फलञ्च फलानि। (४)

---

(१) स्त्रीपुंसौ, धेन्वनडुहौ, ऋक्सामे, वाङ्मनसे, अक्षिभ्रुवम्, दारगवम्, ऊर्व्वष्ठीवम्, पदष्ठीवम, नक्तन्दिवम्, रात्रिन्दिवम्, अहर्दिवम्, ऋग्यजुषम्, अहोरात्रः। कुशश्च लवश्च कुशीलवौ। (२) पा १।२।६४। (३) समानाकारके न होनेपर अर्थगत भिन्नता न रहे तो भी एकशेष होता है। यथा, वक्रदण्डश्च कुटिलदण्डश्च वक्रदण्डौ कुटिलदण्डौ वा। (४) *According to S. Grammarians* एकशेष *is not a Samas but it is a separate* वृत्ति, *because* समासान्त *is not inserted after words of this class. So* पन्थाश्च पन्थाश्च पन्थानौ. *Had Ekasesa been a Samas, the form would have been* पथौ *by the rule* "पथोऽः समासे". एकशेषे कृतेऽनेकसुबन्ताभावाद्द्वन्द्वो न, प्राण्यङ्गत्वादेकवद्भावश्च न, समासान्तश्च न। अतो वैयाकरणा एकशेषस्य द्वन्द्वे अन्तर्भावं न इच्छन्ति परन्तु अस्य पृथग्वृत्तित्वमुपगच्छन्ति।

३३। "नपुंसकमनपुंसकेनैकवचनं वा" (१)। नपुंसक भिन्न (अर्थात् पुंलिङ्ग और स्त्रीलिङ्ग) पदके साथ नपुंसक पद का समास होनेसे नपुंसक शब्द अवशिष्ट रहता है और तब समस्त पद विकल्पसे एकवचन होता है। यथा, शुक्लश्च शुक्ला च शुक्लञ्च शुक्लम्, शुक्लानि। नपुंसक पदके साथ नपुंसक पदका समास होनेसे एकवचन नहीं होता। यथा, शुक्लञ्च शुक्लञ्च शुक्लञ्च शुक्लानि।

३४। "त्यदादीनि सर्व्वैर्नित्यम"। त्यदादि (२) के साथ अत्यदादिके समासमें त्यदादि अवशिष्ट रहता है। यथा, स च देवदत्तश्च तौ, अयञ्च रामश्च इमौ। त्यदादि पदके साथ त्यदादि पदके समासमें उत्तरपद अवशिष्ट रहता है। यथा, स च यश्च यौ, सा च या च ये।

सर्व्वसमाससाधारणविधि।

१। "पथो डः समासे" (३)। समास होनेसे समस्तके अन्तस्थित पथिन् शब्दके उत्तर ड होता है; ड् इत्, अ रहता है। यथा, पथः समीपम् उपपथम्, जले पन्थाः जलपथः, दक्षिणस्यां दिशि पन्थाः दक्षिणापथः (*the southern part*

---

(१) नपुंसकमनपुंसकेनैकवच्चास्यान्यतरस्याम् (पा १।२।६९)। (२) त्यदादि—त्यद्, तद्, यद्, एतद्, इदम्, अदस्, किम्, द्वि, अस्मद् और युष्मद्। (३) ऋक्पूरब्धूःपथामानक्षे (पा ५।४।७४)। समास होनेसे समस्त पदके अन्तस्थित ऋच्, पुर्, अप्, धुर् (भार, *burden*) और पथिन् शब्दके उत्तर अ होता है। यथा, अर्धर्च (वेदकी ऋचाका आधा), विष्णुपुरम्, विमलापम्, राजधुरा, रम्यपथः। किन्तु धुर्का अर्थ अक्ष (पहिये, *wheel*) की धुरी (*axle-tree*) होनेसे नहीं होता। यथा, दृढधूः अक्षः।

of India), महान् पन्था महापथः, त्रयाणां पथां समाहारः त्रिपथम्, चतुर्णां पथां समाहारः चतुष्पथम्, रम्यः पन्थाः अस्मिन् रम्यपथं नगरम्, क्षेत्रञ्च पन्थाश्च क्षेत्रपथौ। अव्ययके परवर्त्ती होनेसे नपुंसक होता है। यथा, विरुद्धः पन्थाः विपथम्, गर्हितः पन्थाः उत्पथम्, अपकृष्ट (*bad*) पन्थाः अपपथम्।

२। "अनपः"। समास होनेसे समस्तके अन्तस्थित अप्-शब्दके उत्तर अन् होता है; न् इत्, अ रहता है। यथा, विमला आपोऽस्मिन् विमलापं सरः, उद्धृता आपोऽस्मात् उद्धृतापः कूपः, कूपस्यापः कूपापाः, निर्म्मला आपः निर्म्मलापाः।

३। "द्व्यन्तरुपसर्गेभ्योऽप ईः" (१)। द्वि, अन्तर् तथा उपसर्गके परवर्त्ती अप्-शब्दके अकारके स्थानमें ई होता है। यथा, द्वयोर्दिशोः आपोऽस्य द्वीपम् (*island*), अन्तर्गता आपोऽस्य अन्तरीपम् (*peninsula*)। ऐसे—नीपम्, समीपम्, प्रतीपम्, अन्वीपम्।

४। "अवर्णाद्विभाषा" (२)। अवर्णान्त उपसर्गके परवर्त्ती होनेसे विकल्पसे होता है। यथा, प्रेपम्, प्रापम्; परेपम्, परापम्; अपां समीपम् उपेपम्, उपापम्।

५। "समापानूपौ" (३)। समाप तथा अनूप शब्द

(१) द्व्यन्तरुपसर्गेभ्योऽप ईत् (पा ६।३।९७)। (२) अवर्णाद्वा (वा० ५०४५)। (३) ऊदनोर्द्देशे (पा ६।३।९८)। समापो देवयजनम् इति तु समा आपो यस्मिन्निति बोध्यम् (भट्टोजिदीक्षित); समाप ईत्वे प्रतिषेधो वक्तव्यः (काशिका)।

निपातनसे सिद्ध होते हैं। यथा, समापो देवयजनम्, अनूपो देशः (*a country abounding in water*)।

६। "धुरोऽनक्षे" (१)। समास होनेसे समस्तके अन्तस्थित धुर् शब्दके उत्तर अन् होता है ; न् इत्, अ रहता है। यथा, राज्ञो धूः राजधुरा, महती धूः महाधुरा, धृता धूरनेन धृतधुरः। अक्ष-शब्दका सम्बन्ध रहनेसे नहीं होता। यथा, अक्षस्य धूः अक्षधूः (*the yoke attached to the fore-part of the pole of a car ; axis ; the pole of a cart*), दृढ़ा धूरस्मिन् दृढ़धूः अक्षः (*a cart-wheel having a strong axle-tree*)।

७। "ऋचश्च" (२)। समस्तके अन्तस्थित ऋच् शब्दके उत्तर अन् होता है। यथा, अर्द्धम् ऋचः अर्द्धर्चः (३), अधिगता ऋक् अनेन अधिगतर्चः।

८। "नञो माणवके" (४)। 'माणवक' (*a Brahmin boy*) बोध होनेसे नञ्के परवर्त्ती ऋच् शब्दके उत्तर अन् होता है। यथा, अनृचो माणवकः। अन्यत्र अनृक् साम।

९। "बह्वोश्चरणे" (४)। 'चरण' बोध होनेसे बहु-

---

(१) ऋक्पूरब्धूःपथामानक्षे (पा ५।४।७४); धुरोऽनक्षस्याः (मुग्धबोध)। (२) ऋक्पूरब्धूःपथामानक्षे (पा ५।४।७४)। (३) अर्द्धर्चाः पुंसि च (पा २।४।३१); अर्द्धर्चादयः शब्दाः पुंसि क्लीबे च स्युः, अर्द्धर्चः अर्द्धर्चम्; एवं ध्वजतीर्थशरीरमण्डपयूपदेहाङ्कुशकलशपात्रसूत्रादयः। (४) ऋक्पूरब्धूःपथामानक्षे (पा ५।४।७४)। अनृचबह्वृचावध्येतर्य्येव (भट्टोजिदीक्षित); अनृचो माणवके ज्ञेयो बह्वृचश्चरणाख्यायाम्।—काशिका।

शब्दके परवर्त्ती ऋच्-शब्दके उत्तर अन् होता है। यथा, बह्वृचश्चरणः। अन्यत्र, बह्वृक् सूक्तम्।

१०। "प्रत्यन्ववेभ्यो लोम्नः" (७)। प्रति, अनु, अव, इन तीनों उपसर्गों के परवर्त्ती लोमन्-शब्दके उत्तर अन् होता है। यथा, प्रतिलोमम्, अनुलोमम् अवलोमम्।

११। "साम्नश्च" (१)। प्रति, अनु, अव इन तीनोंके परवर्त्ती सामन् शब्दके उत्तर अन् होता है। यथा, प्रतिसामम्, अवसामम्।

१२। "कृष्णोदक्पाण्डुसंख्याभ्यो भूमेः" (२)। कृष्ण, उदक्, पाण्डु, तथा संख्यावाचक शब्दोंके परवर्त्ती भूमि-शब्दके उत्तर अन् होता है। यथा, कृष्णभूमः (*a country with dark soil*), उदग्भूमः (*good or fertile soil*), पाण्डुभूमः (*a country where the soil is yellowish white*), द्विभूमः (*having two floors*) प्रासादः, चतुर्भूमः।

१३। "ब्रह्म-हस्ति-पल्य-राजभ्यो वर्च्चसः (३)। ब्रह्मन्, हस्तिन्, पल्य, राजन्, इन शब्दोंके परवर्त्ती वर्च्चस् (*splendour, beauty, lustre, spirit, mettle*) शब्दके उत्तर अन्

(७) अच् प्रत्यन्ववपूर्व्वात् सामलोम्नः (पा ५।४।७५)। (१) अच् प्रत्यन्ववपूर्व्वात् सामलोम्नः (पा ५।४।७५)। (२) कृष्णोदक्पाण्डुसंख्यापूर्व्वायारच् (वा० ५०४६)। मुग्धबोधमें तथा कातन्त्र टीकामें 'कृष्ण' के स्थानमें 'कृष्ट' पाठ है। कृष्णोदक्पाण्डुपूर्व्वाया भूमेरच् प्रत्ययः स्मृतः। गोदावर्य्याश्च नद्याश्च संख्याया उत्तरे यदि॥—काशिका। (३) ब्रह्महस्तिभ्यां वर्च्चसः (पा ५।४।७८)। पल्यराजाभ्यां चेति वक्तव्यम् (वा० ३०५२)।

होता है। यथा, ब्रह्मवर्च्चसम् (*the superhuman power or sanctity of a Brahman, divine splendour*), हस्तिवर्च्चसम् (*spirit or splendour of an elephant*), पल्यवर्च्चसम्, राजवर्च्चसम् (*splendour of a king*)।

१४। "अवसमन्धेभ्यस्तमसः" (४)। अव, सम्, अन्ध, इनके परवर्त्ती तमस्-शब्दके उत्तर अन् होता है। यथा, अवतमसम्, सन्तमसम्, अन्धतमसम् (*deep darkness*)।

१५। "अन्ववतप्तेभ्यो रहसः" (५) अनु, अव, तप्त, इनके परवर्त्ती रहस् (*privacy, secret*) शब्दके उत्तर अन् होता है। यथा, अनुरहसम् (*in secret*), अवरहसम्, तप्त-रहसम्।

१६। "उपसर्गादध्वनः" (६)। उपसर्गके परवर्त्ती अध्वन् शब्दके उत्तर अन् होता है। यथा, प्रगतः अध्वानम् प्राध्वो रथः, अध्वनोऽभावः निरध्वम्, अध्वानं प्रति प्रत्यध्वम्। अन्यत्र,—उत्तमोऽध्वा, उत्तमाध्वा।

१७। "श्वसो वसीयःश्रेयोभ्याम्" (१)। श्वस् शब्दके परवर्त्ती वसीयस् तथा श्रेयस् शब्दोंके उत्तर अन् होता है। यथा, श्वोवसीयसम् (*happiness, prosperity*), श्वः श्रेयसम् (*happiness, prosperity, good fortune*)।

१८। "न प्रशंसायां स्वतिभ्याम्" (२)। प्रशंसा-वाचक

(४) (पा ५।४।७९)। (५) अन्ववतप्ताद्-रहसः (पा ५।४।८१)। (६) पा ५।४।८५। (१) श्वसो वसीयःश्रेयसः (पा ५।४।८०)। (२) न पूजनात् (पा ५।४।६९); स्वतिभ्यामेव (वा० ३३४६)।

सु और अति शब्द पूर्व्वमें रहनेसे समासान्त विधि नहीं होती। यथा, शोभनो राजा सुराजा, शोभनो राजा अस्मिन् सुराजा देशः ; अतिशयेन राजा अतिराजा (*a great king*)। ऐसे —सुसखा, अतिसखा ; सुगौः, अतिगौः ; सुपन्थाः, स्वध्वा।

१६। "न किमः कुत्सायाम्" (३)। कुत्सा-वाचक किम् शब्द पूर्व्वमें रहनेसे समासान्त विधि नहीं होती। यथा, कुत्सितो राजा किंराजा (*a bad king* , कुत्सितः सखा किंसखा (*a bad friend*), कुत्सितः पन्थाः अस्मिन् किम्पन्थाः (*having a bad road*) देशः।

२०। "न नञस्तत्पुरुषे" (४)। तत्पुरुष-समासमें 'नञ्' पूर्व्वमें रहनेसे समासान्त विधि नहीं होती। यथा, अराजा, असखा, अगौः।

२१। "पथो विभाषा" (५)। (नञ्-पूर्व्वक) पथिन्-शब्दके उत्तर विकल्पसे (समासान्त विधि) होता है। यथा, अपथम्, अपन्थाः।

२२। "सः समानस्य गोत्रादौ" (६)। समासमें गोत्र आदि शब्द परे रहनेसे समान-शब्दके स्थानमें स होता है। यथा, समानं गोत्रमस्य सगोत्रः (*a kinsman bearing the same surname*)। ऐसे—सरूपः, सवर्णः, सपक्षः

---

(३) किमः क्षेपे (पा ५।४।७०)। (४) नञस्तत्-पुरुषात् (पा ५।४।७१)। (५) (पा ५।४।७२)। (६) ज्योतिर्जनपदरात्रिनाभिनामगोत्ररूपस्थानवर्णवयो वचनबन्धुषु (पा ६।३।८५)।

(७), सनाभिः, सपिण्डः, सनामा, सवयाः, सतीर्थः (८) (सतीर्थ्यः) (*a fellow student, a class-mate*), सस्थानः, सबन्धुः सवचनः, सरात्रिः, सज्योतिः, सजनपदः, सब्रह्मचारी (*fellow-student, one of the Brahmchari students of the same preceptor*)।

२३। "विभाषा धर्म्मोदर्य्यजातीयेषु" (१)। धर्म्म, उदर्य्य और जातीय शब्द परे रहनेसे विकल्पसे होता है। यथा, सधर्म्मा, समान धर्म्मा; सोदर्य्यः, समानोदर्य्यः (*a whole blood brother*); सजातीयः, समानजातीयः (*of the same tribe, cast or class*)।

२४। "दुरन्यादाशीरादिषु" (२)। आशिस् आदि शब्द परे रहनेसे अन्य शब्दके उत्तर दु होता है; उ इत्, द् रहता है। यथा, अन्या आशीः अन्यदाशीः, अन्यस्मिन् आशा अन्यदाशा, अन्यस्मिन् आस्था अन्यदास्था, अन्यस्मिन् आस्थित अन्यदास्थितः, अन्यस्मिन् उत्सुकः अन्यदुत्सुकः, अन्यस्मिन् रागः अन्यद्रागः (*attachment to another*), अन्यः कारकः अन्यत्कारकः।

---

(७) समानस्य छन्दस्यमूर्द्ध- प्रभृत्युदर्केषु (पा ६।३।८४); समानस्येति योगो विभज्यते, तेन सपक्षः, साधर्म्म्यम्, सजातीयम् इत्यादि सिद्धमिति काशिका। (८) तीर्थे ये (पा ६।३।८७)। (१) विभाषोदरे (पा ६।३।८८)। (२) अषष्ठ्य-तृतीयास्थस्यान्यस्य दुगाशीराशास्थास्थितोत्सुकोतिकारकरागच्छेषु (पा ६।३।९९); दुगागमोऽविशेषेण वक्तव्यः कारकच्छयोः। षष्ठीतृतीययोरनष्ट आशीराशादिषु सप्तसु॥ (काशिका)।

२५। "न तृतीयाषष्ठ्योः" (२)। तृतीयान्तके और षष्ठ्यन्तके उत्तर नहीं होता। यथा, अन्येन आशीः अन्याशीः, अन्यस्याशीः अन्याशीः।

२६। "अर्थे विभाषा" (३)। अर्थ शब्द परे रहनेसे विकल्पसे होता है। यथा, अन्यस्यार्थः अन्यदर्थः, अन्यार्थः।

२७। "कोः कत् स्वरे तत्पुरुषे" (४)। तत्पुरुष-समासमें स्वरवर्ण परे रहनेसे कु शब्दके स्थानमें कत् होता है। यथा कुत्सितोऽश्वः कदश्वः, कुत्सितः उष्ट्रः कदुष्ट्रः, कुत्सित-मन्नं कदन्नम्, कुत्सितः आचारः कदाचारः, कुत्सितमुदकं कदुदकम्।

२८। "त्रिरथवदेषु" (५)। त्रि, रथ, और वद शब्द परे रहनेसे कु-शब्दके स्थानमें कत् होता हैं। यथा, कुत्सितास्त्रयः, कत्त्रयः, कुत्सितो रथः कद्रथः, कुत्सितं वदति कद्वदः (*a bad speaker*)।

२९। "का पथ्यक्ष्णोः" (६)। पथिन् और अक्षि शब्द परे रहनेसे का होता है। यथा, कुत्सितः पन्थाः कापथः, कुत्सितमक्षि अस्य काक्षः।

३०। "ईषदर्थे च" (७)। ईषत्-अर्थ बोध होनेसे कु-शब्दके स्थानमें का होता है। यथा, कामधुरम् ईषन्मधुर-मित्यर्थः ; कालवणम् ईषल्लवणमित्यर्थः।

---

(३) (पा ६।३। १००)। (४) कोः कत्तत्पुरुषेऽचि (पा ६।३।१०१)। (५) त्रौ च (वा० ३९९८); रथवदयोश्च (पा ६।३।१०२)। (६) का पथ्यक्षयोः (पा ६।३।१०४)। (७) ईषदर्थे (पा ६।३। १०५)।

३१। "विभाषा पुरुषे" (१)। पुरुष-शब्द परे रहनेसे विकल्पसे होता है। यथा, कापुरुषः, कुपुरुषः।

३२। "का-कत्-कवान्युष्णे" (२)। उष्ण-शब्द परे रहनेसे कु-शब्दके स्थानमें का, कत् और कव होते हैं। यथा, कोष्णम्, कदुष्णम् कवोष्णम् (*lukewarm, tepid*)।

३३। "विश्वामित्रादयः" (३)। विश्वामित्र आदि शब्द निपातनसे सिद्ध होते हैं। विश्वस्य मित्र विश्वामित्रः, विश्वावसुः, विश्वानरः, अष्टावक्रः, अष्टापदम् (अष्टसु धातुषु पदं प्रतिष्ठा यस्य तत्, *gold*), अष्टागवम्, श्वादन्तः, श्वादंष्ट्रा, श्वाकर्णः, श्वापुच्छः, श्वापदः (शुन इव पादावस्य, *a beast of prey*)।

३४। "समोऽन्त्यलोपः काममनसोः" (४)। काम और मनस् शब्द परे रहनेसे सम् इस अव्ययके अन्त्य वर्णका लोप होता है। यथा, सकामः, समनाः।

३५। "तुमुनश्च" (४)। काम और मनस् परे रहनेसे तुमुन् प्रत्ययके अन्त्य वर्णका लोप होता है। यथा, गन्तुकामः, गन्तुमनाः।

३६। "अवश्यमः कृत्ये" (५)। कृत्य प्रत्यय परे रहनेसे

(१) पा ६।३।१०६। (२) कवं चोष्णे (६।३।१०७)। (३) मित्रे चर्षौ (पा ६।३।१३०); विश्वस्य वसुराटोः (पा ६।३।१२८); अष्टनः संज्ञायाम् (पा ६।३।१२५); नरे संज्ञायाम् (पा ६।३।१२९); शुनो दन्तदंष्ट्राकर्णकुन्दवराहपुच्छपदेषु दीर्घो वाच्यः (वा० ५०४९)। (४) लुम्पेदवश्यमः कृत्ये तुं काममनसोरपि। समो वा हिततयो र्मांसस्य पचियुज घञोः॥ (काशिका)।

अवश्यम्-शब्दके अन्त्य वर्णका लोप होता है। यथा, अवश्य-देयम्, अवश्यभव्यम्, अवश्यकर्त्तव्यम्।

अलुक् समास (१)।

१। "अलुगुत्तरपदे" (२)। समास होनेपर किसी किसी स्थलमें उत्तरपद परे रहनेसे विभक्तिका लोप नहीं होता।

२। "पञ्चम्याः स्तोकान्तिक-दूरार्थ-कृच्छ्रेभ्यः" (३)। स्तोकार्थ, अन्तिकार्थ, दूरार्थ तथा कृच्छ्र शब्दके परवर्त्ती पञ्चमी विभक्तिका लोप नहीं होता। यथा, स्तोकान्मुक्तः (*narrowly escaped*), अल्पान्मुक्तः; अन्तिकादागतः, समीपादागतः (*come from near*); दूरादागतः, विप्रकृष्टादागतः (*come from far*); कृच्छ्रान्मुक्तः (*escaped with difflculty*)।

३। "ओजःसहोऽम्भस्तमोऽञ्जसस्तृतीयायाः" (४)। ओजस्, सहस्, अम्भस्, तमस् और अञ्जस् शब्दोंके परवर्त्ती तृतीया विभक्तिका लोप नहीं होता। यथा, ओजसाकृतम् (*done by force*), सहसाकृतम्, अम्भसाकृतम्, तमसाकृतम्, अञ्जसाकृतम् (आर्जवेन कृतम्, *artlessly done*)।

४। "पुंसोऽनुजे" (५)। अनुज शब्द परे रहनेसे

(१) अलुक्-समास कोई स्वतन्त्र समास नहीं है। पूर्व्वोक्त समासोंमें कहीं कहीं पूर्व्वपदकी विभक्तिका लुक् अर्थात् लोप नहीं होनेपर उसे अलुक्-समास कहते हैं। (२) पा ६।३।१। (३) पञ्चम्याः स्तोकादिभ्यः (पा ६।३।२); एवमन्तिकार्थ-दूरार्थकृच्छ्रेभ्यः। (४) ओजःसहोऽम्भस्तमसस्तृतीयायाः (पा ६।३।३); अञ्जस उपसंख्यानम् (वा० ३८८०)। (५) पुंसानुजो जनुषान्धः (विकृताक्षः) इति च (वा० ३८८१)।

पुमस् शब्दके परवर्त्ती तृतीया विभक्तिका लोप नहीं होता। यथा, पुंसानुजः (यस्याग्रजः पुमान् सः, *having an elder brother*)।

५। "जनुषोऽन्धे" (५)। अन्ध शब्द परे रहनेसे जनुस् शब्दके परवर्त्ती तृतीया विभक्तिका लोप नहीं होता। यथा, जनुषान्धः (जन्मान्धः, *born blind*)।

६। "आत्मनः पूरणे" (६)। पूरण-वाचक शब्द परे रहनेसे आत्मन् शब्दके परवर्त्ती तृतीया विभक्तिका लोप नहीं होता। यथा, आत्मनापञ्चमः (*himself and four others*), आत्मनादशमः। (*himself with nine others*)। पूरणार्थक नहीं होनेसे—आत्मना कृतम् आत्मकृतम्।

७। "वैयाकरणाख्यायां चतुर्थ्याः" (१)। व्याकरणकी संज्ञा बोध होनेसे आत्मन् शब्दके परवर्त्ती चतुर्थी विभक्तिका लोप नहीं होता। यथा, आत्मनेपदम्, आत्मनेभाषा।

८। "पराच्च" (२)। पर शब्दके उत्तर भी नहीं होता। यथा, परस्मैपदम्, परस्मैभाषा।

९। "हलन्तात् सप्तम्याः संज्ञायाम्" (३)। संज्ञा बोध होनेसे हल्-वर्णान्त तथा अकारान्त शब्दोंके परवर्त्ती सप्तमी विभक्तिका लोप नहीं होता। यथा, युधिष्ठिरः, त्वचिसारः (*a bamboo*), अपण्येतिलकाः (*wild sesamum produc-*

---

(६) आत्मनश्च (पा ६।३।६); पूरण इति वक्तव्यम् (वा० २८८२)।
(१) पा ६।३।७। (२) परस्य च (पा ६।३।८)। (३) पा ६।३।९।

ing no oil, something not serving any purpose), वनेकिंशुकाः, कूपेपिशाचकाः । (१)

१० । "अन्तमध्याभ्यां गुरौ" (२) । गुरु शब्द परे रहनेसे अन्त और मध्य शब्दोंके परवर्त्ती सप्तमी विभक्तिका लोप नहीं होता । यथा, अन्तेगुरुः, मध्येगुरुः ।

११ । "अमूर्द्धमस्तकात् स्वाङ्गादकामे" (३) । स्वाङ्ग-वाचक शब्दके परवर्त्ती सप्तमी विभक्तिका लोप नहीं होता । यथा, कण्ठेकालः, उरसिलोमा, शिरसिशिखः । काम शब्द परे रहनेसे होता है । यथा, मुखकामः । मूर्द्धन् और मस्तक शब्दोंके उत्तर भी होता है । यथा, मूर्द्धशिखः, मस्तकशिखः ।

१२ । "विभाषा बन्धे" (४) । बन्ध शब्द परे रहनेसे विकल्पसे सप्तमी विभक्तिका लोप होता है । यथा, हस्तेबन्धः, हस्तबन्धः ; पदेबन्धः, पदबन्धः । (५) ।

१३ । "तत्पुरुषे कृति बहुलम्" (६) । तत्पुरुष समासमें कृत् प्रत्ययसे निष्पन्न पद परे रहनेसे सप्तमी विभक्तिके लुक्का नियम नहीं है, अर्थात् कहीं कहीं नहीं होता कहीं कहीं होता है, और कहीं कहीं विकल्पसे होता है । यथा, अलुक्—अन्तेवासी (*a pupil*), स्तम्बेरमः (*an elephant*) कर्णेजपः (*a*

(१) गवियुधिभ्यां स्थिरः (पा ८।३।९५) ; गविष्ठिरः । हृद्द्युभ्याञ्च ; हृदिस्पृक्, दिविस्पृक् । (२) मध्याद्गुरौ (पा ६।३।११) ; अन्ताच्च (वा० ३८९४) । (३) पा ६।३।१२ । (४) बन्धे च विभाषा (पा ६।३।१३) । (५) हलदन्तेति किम्—गुप्तिबन्धः । (६) पा ६।३।१४ ।

back-biter, a spy), पङ्केरुहः, मनसिशयः (१). प्रावृषिजः (२), शरदिजः, (*avtumnal*) हृदिस्थः, सव्येष्ठः (*a charioteer, a coachman*); लुक्—कुरुचरः, स्थण्डिलशायी, कूटस्थः, गृहस्थः; विकल्पमें—सरसिजम् सरोजम्, मनसिजः मनोजः, ग्रामेवासः ग्रामवासः, ग्रामेवासी, ग्रामवासी।

१४। "षष्ठ्या आक्रोशे" (३) आक्रोश अर्थात् भर्त्सना (निन्दा) बोध होनेसे षष्ठी विभक्तिका लुक् नहीं होता। यथा, चौरस्यकुलम् (*mob or the common people*), दासस्य-तनयः (*the son of a slave or servant*)। (४)

१५; पुत्रे विभाषा" (५)। भर्त्सना (निन्दा) बोध होनेसे तथा पुत्र शब्द परे रहनेसे षष्ठी विभक्तिका विकल्पसे लुक् नहीं होता है। यथा, दास्याःपुत्रः दासीपुत्रः (*a whore son, a bastard*), वृषल्याःपुत्र वृषलीपुत्रः (६)।

१६। "वाग्-दिक्-पश्यद्भ्यो युक्ति दण्ड-हरेषु" (७)। युक्ति, दण्ड तथा हर शब्द परे रहने पर क्रमसे वाच्, दिश् तथा पश्यत् शब्दके परस्थित षष्ठी विभक्तिका लुक् नहीं होता।

---

(१) शयवासवासिष्वकालात् (पा ६।३।१८)। (२) प्रावृट्शरत्कालदिवां जे: (६।३।१२)। (३) पा ६।३।२१। (४) भर्त्सना बोध न होनेसे—ब्राह्मणकुलम्। (५) पुत्रेऽन्यतरस्याम् (पा ६।३।२२)। (६) वृषली = अविवाहिता ऋतुमती बालिका (*an unmarried girl who has menstrated at her father's house*)। भर्त्सना बोध न होनेपर—ब्राह्मणीपुत्रः। (७) वा० ३८८७।

यथा, वाचोयुक्तिः, दिशोदण्डः, पश्यतोहरः (*He who steals under one's nose, as for example, a goldsmith*)।

१७। "देवात् प्रिये" (१)। प्रिय शब्द परे रहनेसे देव शब्दके परस्थित षष्ठी विभक्तिका लोप नहीं होता। यथा, देवानाम्प्रियः।

१८। "शुनः शेफ-पुच्छ-लाङ्गूलेषु संज्ञायाम्" (२)। संज्ञा बोध होनेसे और शेफ, पुच्छ तथा लाङ्गूल शब्द परे रहनेसे श्वन् शब्दके परस्थित षष्ठी विभक्तिका लोप नहीं होता। यथा, शुनःशेफः, शुनःपुच्छः, शुनोलाङ्गूलः (*name of a holy sage, the second son of saint Richika, adopted by Visvamitra*).

१९। "दिवश्च दासे" (३)। संज्ञा बोध होनेसे और दास शब्द परे रहनेसे दिव शब्दके परस्थित षष्ठी विभक्ति का लोप नहीं होता। यथा दिवोदासः (*a name*)।

२०। "ऋतो विद्यागोत्रसम्बन्धात्" (४)। विद्या-सम्बन्धवाचक और गोत्रसम्बन्धवाचक ऋकारान्त शब्दके

---

(१) देवानाम्प्रिय इति च मूर्खे (वा० ३९००)। देवानाम्प्रियः मूर्ख इत्यर्थः। केवल इस अर्थमें ही अलुक्, अन्यत्र लुक्। यथा, देवप्रियः (*favourite of the gods*)। किसी किसीके अनुसार देवानाम्प्रियः=छागः (*a goat*)। (२) शेफपुच्छलाङ्गूलेषु शुनः (वा० ३९०१)। (३) वा० ३९०२। (४) ऋतो विद्यायोनिसम्बन्धेभ्यः (पा ६।३।२३)।

परस्थित षष्ठी विभक्तिका लोप नहीं होता । यथा, होतुःपुत्रः, होतुरन्तेवासी, पितुःपुत्रः (*the deserving son of a renowned father*), पितुरन्तेवासी । उक्त सम्बन्धवाचक न होनेसे—होतृधनम् ।

२१ । "विभाषा स्वसृ-पत्योः" (१) । स्वसृ और पति शब्द परे रहनेसे विकल्पमें होता है । यथा, मातुःष्वसा (मातुःस्वसा), मातृष्वसा ; पितुःष्वसा (पितुःस्वसा), पितृष्वसा ; दुहितुःपतिः, दुहितृपतिः ; ननान्दुःपतिः, ननान्दृपतिः ।

२२ । "पात्रेसमितादयः कुत्सायाम्" (२) । कुत्सा बोध होनेसे पात्रेसमित (३) आदि शब्दोंकी सप्तमी विभक्तिका लोप नहीं होता । यथा, पात्रेसमिताः, भोजनकाले पात्रे एव सङ्गताः न तु कार्य्यकाले इत्यर्थः (*constant at dinner-time, a parasite*) ; गेहेशूरः, गेहे एव शूरः न तु अन्यत्र इत्यर्थः (*a boasting coward, a carpet-knight*) ।

मध्यपदलोपी समास ।

१ । "लोपः क्वचिन्मध्यस्य" (४) । समास होनेसे किसी

---

(१) (पा ६।३।२४) ; मातुःपितुर्भ्यामन्यतरस्याम । मातुः और पितुः के परस्थित स्वसृ शब्दका आदि स् विकल्पसे ष् होता है । (२) पात्रेसमितादयश्च (पा २।१।४८) । (३) पात्रेसमिताः, पात्रेबहुलाः, गेहेशूरः, गेहेनर्दी, गेहेक्ष्वेड़ी, गेहेविजिती, गेहेदृप्तः, गेहेधृष्टः, गर्भेदृप्तः, गोष्ठेशूरः, गोष्ठेपटुः, गोष्ठेपण्डितः, गोष्ठेप्रगल्भः इत्यादि ।

(४) शाकपार्थिवादीनां सिद्धये उत्तरपदलोपस्योपसंख्यानम् (वा॰ १२१०) ;

किसी स्थलमें (१) मध्यपदका लोप होता है। यथा, घृतमिश्रम् ओदनम् घृतौदनम्, पलमिश्रम् अन्नं पलान्नम्, शाकप्रियः पार्थिवः शाकपार्थिवः (*a king who loves* शाक *or strength*), गत एव प्रत्यागतः गतप्रत्यागतः, कण्ठे स्थितः कालोऽस्य कण्ठेकालः (नीलकण्ठः, शिवः *Siva*), उरसि स्थितानि लोमान्यस्य उरसिलोमा, शिरसि स्थिता शिखास्य शिरसिशिखः, प्रपतितानि पर्णान्यस्मात् प्रपर्णः (प्रपतितपर्णः वा), अपगतः शोकोऽस्य अपशोकः, निर्गतं मलम् अस्मात् निर्मलः, अभुक्तानि पर्णान्यनया अपर्णा, विगतोऽर्थः अस्मात् व्यर्थः, अनुगतोऽर्थोऽस्मिन् अन्वर्थः, यथाभूतोऽर्थोऽस्मिन् यथार्थः, प्रतिगतमक्षमस्मिन् प्रत्यक्षः, उन्नमितं मुखमनेन उन्मुखः, अधःकृतं मुखमनेन अधोमुखः, निर्नष्टं धनमस्य निर्द्धनः, विचलितं मनोऽस्य विमनाः, उत्कण्ठितं मनोऽस्य उन्मनाः, सुखितं मनोऽस्य सुमनाः, सुवर्णविकारोऽलङ्कारोऽस्य सुवर्णालङ्कारः, अविद्यमानः पुत्त्रोऽस्य अपुत्त्रः (*one who has no son*), अविद्यमानः क्रोधोऽस्य अक्रोधः, एकाधिका विंशतिः एकविंशतिः (*twenty-one*), एकाधिका त्रिंशत् एकत्रिंशत (*thirty-oue*), चतुरधिका दश चतुर्दश (*fourteen*), पञ्चाधिका विंशतिः पञ्चविंशतिः (*twenty-five*), पञ्चाधिका त्रिंशत् पञ्चत्रिंशत् (*thirty-five*)।

प्रादिभ्यो धातुजस्य वाच्यो वा चोत्तरपदलोपः (वा० १२६०) ; नञोऽस्त्यर्थानां वाच्यो (वा) चोत्तरपदलोपः (वा० १२६१); सप्तम्युपमानपूर्व्वपदस्योत्तरपदलोपश्च वक्तव्यः (वा०) ; समुदायविकारषष्ठ्याश्च बहुव्रीहिरुत्तरपदस्य वक्तव्यः (वा०)।

(१) कर्म्मधारय और बहुव्रीहि समासमें।

२। "एकस्यैका दशनि" (१)। दशन् शब्दके पहले एकके स्थानमें एका होता है। यथा, एकाधिका दश एकादश (*eleven*)।

३। "द्व्यष्टनोर्द्वाष्टा संख्यायाम्" (२)। संख्यावाचक शब्द परे रहनेसे द्वि शब्दके स्थानमें द्वा और अष्टन् शब्दके स्थानमें अष्टा होता है। यथा, द्व्यधिका दश द्वादश (*twelve*), द्व्यधिका विंशतिः द्वाविंशतिः, द्व्यधिका त्रिंशत् द्वात्रिंशत्; अष्टाधिका दश अष्टादश (*eighteen*), अष्टाधिका विंशतिः अष्टाविंशतिः, अष्टाधिका त्रिंशत् अष्टात्रिंशत (*thirty eight*)।

४। "त्रेस्त्रयस्" (३)। त्रि शब्दके स्थानमें त्रयस् होता है। यथा, त्र्यधिका दश त्रयोदश (*thirteen*) त्र्यधिका विंशतिः त्रयोविंशतिः, त्र्यधिका त्रिंशत् त्रयस्त्रिंशत्।

५। "विभाषा चत्वारिंशत्प्रभृतौ सर्व्वेषाम्" (४)। चत्वारिंशत् आदि (५) शब्द परे रहनेसे विकल्पमें द्विके स्थानमें द्वा, त्रिके स्थानमें त्रयः, अष्टन्के स्थानमें अष्टा होता है। यथा, द्व्यधिका चत्वारिंशत् द्वाचत्वारिंशत्, द्विचत्वारिंशत्; द्व्यधिका पञ्चाशत् द्वापञ्चाशत्, द्विपञ्चाशत्। ऐसे त्रयश्चत्वारिंशत्, त्रिचत्वारिंशत्; त्रयःपञ्चाशत्, त्रिपञ्चाशत्; अष्टाचत्वारिंशत्, अष्टचत्वारिंशत्; अष्टापञ्चाशत्, अष्टपञ्चाशत् (*fifty-eight*)।

---

(१) प्राग्गेकादशभ्यः (पा ५।३।२९); योगविभागादात्वम् वा। (२) द्व्यष्टनः संख्यायामबहुव्रीह्यशीत्योः (पा ६।३।४७)। (३) त्रेस्त्रयः (पा ६।३।४८)। (४) (पा ६।३।४९)। (५) चत्वारिंशत्, पञ्चाशत्, षष्टि, सप्तति, नवति।

६। "नाशीतिशतादौ बहुव्रीहौ" (१)। अशीति तथा शत आदि संख्यावाचक शब्द परे रहनेसे अथवा बहुव्रीहि-समास होनेसे पूर्व्वोक्त कार्य्य नहीं होता। यथा, द्व्यशीतिः त्र्यशीतिः, द्विशतम्, त्रिसहस्रम्; द्वित्राः (*two or three*), त्रिचतुराः (*three or four*)।

७। "एकोनस्यैकान्नैकाद्वौ विभाषा" (२)। एकोन शब्दके स्थानमें विकल्पसे एकान्न और एकाद्व होते हैं। यथा, एकोनविंशतिः, एकान्नविंशतिः एकाद्वविंशति, (*nineteen*)।

पूर्व्वनिपात।

१। "उपसर्ज्जनं पूर्व्वम्" (३)। समासमें उपसर्ज्जन पदका पूर्व्वनिपात होता है।

२। "प्रथमानिर्द्दिष्टं समास उपसर्ज्जनम्" (४)। समास-सूत्रमें प्रथमाविभक्तिके सहयोगसे जिसका निर्द्देश रहता है, उसे उपसर्ज्जन कहते हैं। अव्ययीभावमें अव्यय आदि पद, तत्पुरुषमें द्वितीयादिविभक्त्यन्त पद, कर्म्मधारयमें विशेषण आदि पद, द्विगुमें संख्यावाचक पद उपसर्ज्जन हैं। यथा,—अव्ययीभावमें—कूलस्य समोपम् उपकूलम्, ज्ञानमनतिक्रम्य यथाज्ञानम्, वर्णानामानुपूर्व्व्येण अनुवर्णम्, तृणमप्यपरित्यज्य सतृणम्, ग्रामाद्बहिः वहिर्ग्रामम्, पाटलिपुत्रात् आ आपाटलिपुत्रम्, समुद्रस्य पारे

(१) द्व्यष्टनः संख्यायामबहुव्रीह्यशीत्योः (पा ६।३।४७); प्राक् शतादिति वक्तव्यम् (वा० ३९५३)। (२) एकादिश्चैकस्य चादुक् (पा ६।४।७१)। (३) पा २।२।३०। (४) पा १।२।४३।

पारेसमुद्रम्। तत्पुरुषमें—सुखं प्राप्तः सुखप्राप्तः, अन्नं बुभुक्षुः अन्नबुभुक्षुः, वर्षं भोग्यः वर्षभोग्यः, पित्रा समः पितृसमः, अङ्गेन विकलः अङ्गविकलः, पाणिनिना प्रणीतम् पाणिनिप्रणीतम्, भूताय बलिः भूतबलिः, पुत्राय हितम् पुत्रहितम्, व्याघ्रात् भयम् व्याघ्रभयम्, गृहात् निर्गतः गृहनिर्गतः, तरोः छाया तरुच्छाया, अग्नेः शिखा अग्निशिखा, शास्त्रे प्रवीणः शास्त्रप्रवीणः, पूर्व्वाह्णे कृतम् पूर्व्वाह्णकृतम्। कर्म्मधारयमें—नीलं उत्पलम् नीलोत्पलम्, नवः पल्लवः नवपल्लवः, सन् पुरुषः सत्पुरुषः। द्विगुमें—पञ्चभिः गोभिः क्रीतः पञ्चगुः, त्रयाणां लोकानां समाहारः त्रिलोकी, त्रयाणां भुवनानां समाहारः त्रिभुवनम्।

३। "राजदन्तादिषु परम्" (१)। राजदन्त आदि स्थलोंमें उपसर्ज्जन पदका परनिपात होता है। यथा, दन्तानां राजा राजदन्तः (*the front tooth*), वनस्य अग्रे अग्रेवणम् (*the city of Agra*)।

४। "वा कडारादयः कर्म्मधारये" (२)। कर्म्मधारय-समासमें कडार आदि (३) पदोंका विकल्पसे पूर्व्वनिपात होता है। यथा, कडारगजः, गजकडारः (*a tawny-coloured elephant*); खञ्जशिशुः, शिशुखञ्जः (*a lame child*); वृद्धपुरुषः, पुरुषवृद्धः (*an old man*)।

---

(१) पा २।२।३१। (२) कडाराः कर्म्मधारये (पा २।२।३८)। (३) कडार, खञ्ज, काण, कुण्ठ, गौर, वृद्ध, भिक्षुक, पिङ्ग, पिङ्गल, तनु, जठर, बधिर, वर्व्वर इत्यादि।

५। "सप्तमीविशेषणे बहुव्रीहौ" (१)। बहुव्रीहि-समासमें सप्तम्यन्त और विशेषण पदोंका पूर्व्वनिपात होता है। यथा, सप्तम्यन्त—कण्ठेकालः, उरसिलोमा; विशेषण—दीर्घबाहुः, महाबलः (*very mighty*)।

६। "विभाषा प्रियस्य" (२)। प्रिय शब्दका विकल्पसे पूर्व्व निपात होता है। यथा, गुड़प्रियः, प्रियगुड़ः।

७। "सप्तमी परा गड्वाद्यैः" (३)। गड्ड (*goiter*) प्रभृतिके योगसे सप्तम्यन्त पदका परनिपात होता है। यथा, गड्डुः कण्ठे यस्य गड्डुकण्ठः, गड्डुः शिरसि यस्य गड्डुशिराः।

८। "प्रहरणार्थेश्च" (४)। प्रहरणवाचक पदके योगसे सप्तम्यन्त पदका परनिपात होता है। यथा, शस्त्रं पाणौ यस्य शस्त्रपाणिः, दण्डः पाणौ यस्य दण्डपाणिः, खड्गः करे यस्य खड्गकरः, धनुर्हस्ते यस्य धनुर्हस्तः।

६। "निष्ठा पूर्व्वा" (५)। निष्ठानिष्पन्न पदका पूर्व्व-निपात होता है। यथा, कृतकर्म्मा, अधीतव्याकरणः, भक्षितौदनः, धृतायुधः, उद्धृतदण्डः, भग्नरथः, पक्वकेशः।

१०। "वाहिताग्न्यादिषु" (६)। आहिताग्नि आदि स्थलोंमें निष्ठानिष्पन्न पदका विकल्पसे पूर्व्वनिपात होता है।

---

(१) पा २।२।३५। (२) वा प्रियस्य (वा० १४२०)। (३) गड्वादेः परा सप्तमी (वा० १४२१)। (४) प्रहरणार्थेभ्यः परे निष्ठासप्तम्यौ (वा० १४२५)। (५) निष्ठा (पा २।२।३६); निष्ठान्तं बहुव्रीहौ पूर्व्वं स्यात्। जातिकालसुखादिभ्यः परा निष्ठा वाच्या (वा० १४२२)। (६) पा २।२।३७।

यथा, आहिताग्निः अग्न्याहितः, जातसुखः सुखजातः, जातपुत्रः पुत्रःजातः, जातदन्तः दन्तजातः, जातश्मश्रुः श्मश्रुजातः, तैलपीतः पीततैलः, घृतपीतः पीतघृतः, मद्यपीतः पीतमद्यः, सुरापीतः पीतसुरः, भार्य्योढ़ः ऊढ़भार्य्यः, अर्थंगतः गतार्थः, प्राप्तकालः कालप्राप्तः, अस्युद्यतः उद्यतासिः ।

११ । "अल्पस्वरं द्वन्द्वे" (१) । द्वन्द्व-समासमें अपेक्षाकृत अल्पस्वरविशिष्ट पदका पूर्व्वनिपात होता है । यथा, तालतमालौ, शङ्खदुन्दुभी, भ्रातृभगिन्यौ, गोमहिषौ, दंशमशकौ, हंससारसौ, काककोकिलौ, अम्लमधुरौ, तिक्तकषायौ ।

१२ । "स्वराद्यदन्तं साम्ये" (२) । स्वरसाम्यके स्थलमें स्वरादि अकारान्त पदका पूर्व्वनिपात होता है । यथा, अम्लतिक्तौ, अनलपवनौ, अच्युतमहेशौ, अचलसमुद्रौ, इन्द्रब्रह्मौ, ईशकृष्णौ (*Siva and Krishna*), उष्णखरौ, ऊर्द्ध्वनिम्ने ।

१३ । "इदुदन्तश्च" (३) । स्वरसाम्यस्थलमें इकारान्त और उकारान्त पदोंका पूर्व्वनिपात होता है । यथा, हरिहरौ, रविबुधौ, पटुशुक्लौ, मृदुदृढौ ।

१४ । "अभ्यर्हितश्च" (४) । अभ्यर्हित (पूजित वा सम्मानित) बोधक पदका पूर्व्वनिपात होता है । यथा, तापसपर्वतौ, तापसयाचकौ ।

---

(१) अल्पाच्तरम् (पा २।२।३४) । (२) अजाद्यदन्तम् (पा २।२।३३) । (३) द्वन्द्वे घि (पा २।२।३२) ; घ्यन्तादजाद्यदन्तं विप्रतिषेधेन (वा० १४२६) । (४) वा० १४१२ ।

१५। "लघुवर्णञ्च" (१)। लघुवर्णविशिष्ट पदका पूर्व्व-निपात होता है। यथा, कुशकाशम्, नलनीलौ, वलयकेयूरौ।

१६। "भ्राता च ज्यायान्" (२)। ज्येष्ठभ्रातृवाचक पदका पूर्व्वनिपात होता है। यथा, युधिष्ठिरार्ज्जुनौ, धृतराष्ट्र-पाण्डू, बलदेवकृष्णौ।

१७। "ऋतुनक्षत्राणामानुपूर्व्व्येण" (३)। ऋतुवाचक तथा नक्षत्रवाचक पदोंके आनुपूर्व्यके अनुसार पौर्व्वापर्य्यका नियम है (अर्थात् जो पूर्व्वमें होता है वह पूर्व्वमें आता है और जो पश्चात् होता है वह पश्चात् आता है)। यथा, ऋतुवाचक—हेमन्तशिशिरौ, शिशिरवसन्तौ, वसन्तनिदाघौ; नक्षत्रवाचक—अश्विनीभरण्यौ, कृत्तिकारोहिण्यौ। अक्षरसाम्यके स्थलमें ही यह नियम है।

१८। "वर्णानाञ्च" (४)। ब्राह्मणादिवर्णवाचक पदोंके आनुपूर्व्यके अनुसार पौर्व्वापर्य्यका नियम है। यथा, ब्राह्मण-क्षत्रियवैश्यशूद्राः।

१९। "अनियमो धर्म्मादौ" (५)। धर्म्मादियोंके प्रयोगमें पौर्व्वापर्य्यका नियम नहीं है। यथा, धर्म्मार्थौ, अर्थधर्म्मौ; कामार्थौ, अर्थकामौ; शब्दार्थौ, अर्थशब्दौ; वरवध्वौ, वधूवरौ; सर्पिर्मधुनी, मधुसर्पिषी; आद्यन्तौ, अन्तादी; गुणवृद्धी, वृद्धिगुणौ।

---

(१) लघ्वक्षरं पूर्व्वम् (वा० १४१३)। (२) भ्रातुर्ज्यायसः (वा० १४१६)। (३) ऋतुनक्षत्राणां समाक्षराणामानुपूर्व्व्येण (वा० १४२१)। (४) वर्णानामानुपूर्व्व्येण (वा० १४१५)। (५) धर्म्मादिष्वनियमः (वा० १४१८)।

सर्व्वसमासशेष।

१। "समासश्चतुर्विधः (१)।" पाणिनिके अनुसार समास चार प्रकारके हैं—अव्ययोभाव, तत्पुरुष, बहुव्रोहि, द्वन्द्व। कर्म्मधारय और द्विगु स्वतन्त्र समास नहीं माने जाते हैं परन्तु वे तत्पुरुष-समासके ही अन्तर्भूत माने जाते हैं। किसी किसी के मतमें कर्म्मधारय और द्विगु स्वतन्त्र समास हैं, इस लिए उनके अनुसार समास छः प्रकारके हैं।

२। "पूर्व्वपदार्थप्रधानोऽव्ययोभावः।" अव्ययोभाव-समासमें पूर्व पदका अर्थ प्रधानरूपसे प्रतीयमान होता है। उपगृहम्, यथाशक्ति, इत्यादि स्थलोंमें उप, यथा, प्रभृति पूर्व्व-पदका अर्थ प्रधानभावसे प्रतीयमान होता है।

३। "उत्तरपदार्थप्रधानस्तत्पुरुषः।" तत्पुरुष समासमें उत्तर पदका अर्थ प्रधानभावसे प्रतीयमान होता है। तरुच्छाया, गङ्गाजलम् इत्यादि स्थलोंमें छाया, जल प्रभृति परपदार्थ प्रधान-भावसे प्रतीयमान होता है।

४। "अन्यपदार्थप्रधानो बहुव्रोहिः।" बहुव्रोहि-समासमें

---

(१) "समासश्चतुर्व्विध इति तु प्रायो वादः। अव्ययीभावतत्पुरुषबहुव्रीहि-द्वन्द्वाधिकारबहिर्भूतानामपि सहसुपेति समासविधानात्। पूर्व्वपदार्थप्रधानोऽव्ययी-भावः। उत्तरपदार्थप्रधानस्तत्पुरुषः। अन्यपदार्थप्रधानो बहुव्रीहिः। उभयपदार्थप्रधानो द्वन्द्वः। इत्यपि प्राचां वादः प्रायोऽभिप्रायः। सूपप्रति, उन्मत्तगङ्गम् इत्याद्यव्ययीभावे अतिमालादितत्पुरुषे द्वित्रा इत्यादि बहुव्रीहौ दन्तौष्ठमित्यादि द्वन्द्वे चाभावात्। तत्पुरुष-विशेषः कर्म्मधारयः तद्विशेषो द्विगुः। अनेकपदत्वं द्वन्द्वबहुव्रीह्योरेव तत्पुरुषस्य क्वचिदेव इत्युक्तम्"। भट्टोजिदीक्षित।

समस्यमान कोई पदार्थ प्रधानभावसे प्रतीयमान न होकर तदुपलक्षित अन्य पदार्थ प्रधानभावसे प्रतीयमान होता है। बहुधनः, दीर्घबाहुः इत्यादि स्थलोंमें बहु, धन, दीर्घ, बाहु प्रभृति कोई भी पदार्थ प्रधानभावसे प्रतीयमान नहीं होता; परन्तु बहु धन विशिष्ट तथा दीर्घ बाहु विशिष्ट व्यक्तिरूप अन्य पदार्थ प्रधानभावसे प्रतीयमान होता है।

५। "उभयपदार्थप्रधानो द्वन्द्वः"। द्वन्द्व-समासमें समस्यमान उभय पदार्थ ही प्रधानभावसे प्रतीयमान होते हैं। रामलक्ष्मणौ, तालतमालौ इत्यादि स्थलोंमें राम, लक्ष्मण, ताल, तमाल प्रभृति सभी पदार्थ प्रधानभावसे प्रतीयमान होते हैं।

परन्तु सभी स्थलोंमें इन सब लक्षणोंका समावेश नहीं होता, स्थलविशेषमें इनके व्यभिचार लक्षित होते हैं। सप्तगोदावरम्, उन्मत्तगङ्गम् इत्यादि अव्ययीभावमें पूर्व—पदार्थ प्रधानभावसे प्रतीयमान न होकर अन्य पदार्थ ही प्रधानभावसे प्रतीयमान होता है। अकिञ्चनः, आपन्नजीविकः इत्यादि तत्पुरुषमें उत्तर-पदार्थ प्रधानभावसे प्रतीयमान न होकर, अन्यपदार्थ ही प्रधानभावसे प्रतीयमान होता है। द्वित्राः, पञ्चषाः इत्यादि बहुव्रीहिमें अन्य-पदार्थ प्रधानभावसे प्रतीयमान न होकर उभय-पदार्थ ही प्रधानभावसे प्रतीयमान होते हैं। हंससारसम्, दंशमशकम् इत्यादि द्वन्द्वमें उभय पदार्थ प्रधानभावसे प्रतीयमान न होकर उनके समाहाररूप अन्यपदार्थ प्रधानभावसे प्रतीयमान होते हैं। इसलिए पूर्व्वोक्त लक्षण सब, प्रायिक अभिप्रायसे निर्द्दिष्ट हैं;

अर्थात् प्रायः सब स्थलोंमें उन लक्षणोंका समावेश होता है किसी किसी स्थलोंमें नहीं होता, यही तात्पर्य्य है; इस हेतु बहुतोंने "प्रायेण पूर्व्वपदार्थप्रधानोऽव्ययीभावः," "प्रायेणोत्तरपदार्थप्रधानः तत्पुरुषः", "प्रायेणान्यपदार्थप्रधानो बहुव्रीहिः," "प्रायेणोभयपदार्थप्रधानो द्वन्द्वः" इस रूपसे अव्ययीभाव आदियोंके लक्षणोंमें 'प्रायेण' इस पदकी योजना कर दी है।

वस्तुतः जिस जिस समासके अधिकारमें जो सब समास विहित हुए हैं वे सब तत्तत् समासके संज्ञाभाजन हैं; अर्थात् अव्ययीभावप्रकरणमें जो सब समास विहित हुए हैं उनका नाम अव्ययीभाव है; तत्पुरुषप्रकरणमें जो सब समास विहित हुए हैं उनका नाम तत्पुरुष है; बहुव्रीहिप्रकरणमें जो सब समास विहित हुए हैं उनका नाम बहुव्रीहि है; द्वन्द्वप्रकरणमें जो सब समास विहित हुए हैं उनका नाम द्वन्द्व है।

"उभयपदार्थप्रधानो द्वन्द्वः" इस लक्षणमें 'उभय' शब्द सम्यक् संलग्न नहीं है। उभय पदोंमें जैसे द्वन्द्व-समास होता है बहुपदोंमें भी ऐसा ही होता है। फलतः केवल अव्ययीभाव-समास दो पदोंमें होता है; द्वन्द्व और बहुव्रीहि दो पदोंमें तथा बहु पदोंमें होते हैं; तत्पुरुष प्रायः सब ही स्थलोंमें दो पदोंमें होता है, किसी किसी स्थलमें बहु पदोंमें होना देखनेमें आता है। वस्तुतः द्वन्द्व-लक्षणमें उभय शब्दके स्थानमें अनेक शब्द देना ही उचित है।

६। "बहुव्रीहिर्द्विविधस्तद्गुणसंविज्ञानोऽतद्गुणसंविज्ञानश्च।"

बहुव्रीहि दो प्रकारके हैं, तद्गुणसंविज्ञान और अतद्गुणसंविज्ञान। जिस स्थलमें समास-बोधित अन्य पदार्थके ऐसा समस्यमान पदार्थोंके भी परम्पराके अनुसार क्रिया आदिके साथ अन्वय होता है वहां उसे तद्गुणसंविज्ञान कहते हैं और जहां समस्यमान पदार्थोंका क्रियाके साथ अन्वय नहीं होता वहां उसे अतद्गुण-संविज्ञान कहते हैं। 'लम्बकर्णमानय' यहां आनयन-क्रियाके साथ लम्बकर्ण-विशिष्ट व्यक्तिका अन्वय होता है, किन्तु लम्ब-कर्णका भी परम्परासे अन्वय है इसलिए वह तद्गुणसंविज्ञान है; और 'दृष्टसमुद्रमानय' यहां आनयन क्रियाके साथ दृष्टसमुद्र व्यक्तिका अन्वय है, परन्तु समुद्रका अन्वय नहीं है, इसलिये वह अतद्गुणसंविज्ञान है।

७। "समानाधिकरणपदघटितो व्यधिकरणपदघटितश्च"। अन्यरूपसे भी बहुव्रीहि दो प्रकारके हैं—समानाधिकरणपद-घटित और व्यधिकरणपदघटित। विशेषणपद और विशेष्य पदका जो बहुव्रीहि समास होता है, वह समानाधिकरणपद-घटित है। यथा, नीलाम्बरः, दीर्घबाहुः, कृष्णकायः इत्यादि। जहां अन्य प्रकारके पदोंका बहुव्रीहि-समास होता है उसे व्यधिकरणपदघटित कहते हैं। यथा, दण्डपाणिः, धनुर्हस्तः इत्यादि।

Exercise IV.

1. Define *Samasa.* How many kinds of *Samasas* are there in Sanskrit? Name them and give four examples of each. Distinguish between *Sandhi* and *Samasa.*

2. What member of a compound word (समास) does generally predominate in meaning and in what *Samasa*?

3. Define—उपपद, उपसर्जन, एकदेशी समास, समानाधिकरण बहुव्रीहि, व्यधिकरण बहुव्रीहि, उपमानकर्मधारय, उपमितकर्मधारय, रूपककर्मधारय, द्विगु, नित्यसमास, सुप्सुपा समास, मध्यपदलोपी समास and उपपदतत्पुरुष समास and give two examples of each.

4. Under what circumstances is the word महत् changed into महा? Give examples where the change does not occur.

5. Explain and illustrate the distinction between कर्मधारय and बहुव्रीहि, समाहार-द्वन्द्व and समाहार-द्विगु, तत्पुरुष and बहुव्रीहि, कर्मधारय and द्विगु।

6. Is Ekashesha (एकशेष) a Samasa? Give reasons for your answer. What words become *masculine* in form in all the Samasas?

7. Give the different meanings of नञ् and say what functions it undergoes when Samasa takes place. In what different senses are Indeclinable Compounds formed? Give examples of each.

8. State the circumstances under which षष्ठीतत्पुरुष समास does not take place; give examples. Why अश्ववास: is not used in the sense of अश्वाय वास:? (Fully discuss the questions expounding as amendment Samasa.)

9. Fully state the rules for पुंवद्भाव in the बहुव्रीहि समास. giving examples.

10. Say where समाहार-द्वन्द्व is compulsory, where it is optional and where it is not possible.

11. Substitute compound words for :—सती बुद्धिः; नद्याः समीपे; युवतिः जाया यस्य सः; क्रीड़नाय इदम्; मृतो भर्त्ता यस्याः सा; समरे शाम्यते इति; महत् उरः यस्य सः; ना सिंह इव; कुत्सितो राजा; मानुषमतिक्रान्तम्; अश्मा भूतः; शार्ङ्गं धनुर्यस्य; नास्ति उत्तमं यस्मात्; आयन्ति गावो यस्मिन् काले, गोष्ठम्; द्वयोरङ्गोः समाहारः; अश्रेण्यः श्रेण्यः कृताः; अश्नीत पिबत इत्येवं सततमभिधीयते यस्यां क्रियायां सा; उदक् च अवाक् च; सप्तानां शतानां समाहारः; दशानां समीपे ये ते; हिमस्यात्ययः; वर्णानाम् आनुपूर्व्येण; चक्रेण युगपत्; भिक्षाणां समृद्धिः; पूर्वं स्नातः पाश्चादनुलिप्तः; शोभनं दिवास्य; अग्निश्च सोमश्च; जाया च पतिश्च; माता च पिता च; यस्याग्रजः पुमान् सः; अन्यो राजा; पित्रा समः; षण्णां मातॄणाम् अपत्यम्।

12. Give Sanskrit compound words for :—A man who has a Brahmn woman for his wife; The rivers Ganga and Sona; An aggregate of two nights; Before the very eyes; A person who has a beautiful wife; According to one's ability; A king's man; One who takes a share; Payable in a year; The latter part of the night; Awakened from sleep; Want of apprehension; A man who has a wife of slender body; One having beautiful knees; A man whose wife has pretty eyes; A man who has found his livelihood.

13. Name and expound the *Samasas* in :—पद्मगन्धिः, अध्यात्मम्, सहृयम्, त्रिगुः, पद्मनाभः, प्रत्नरसम्, त्रिगङ्गम्, विशालाक्षी, प्रज्ञुः, प्रपर्णः, विग्रः, एकपदी, सुहृत्, चतुष्पात्, सोपानत्कः, पयोधरः, वृकभीतः, जवाकुसुमसंकाशं, राजसखः, कदन्नम्, सरोजम्, अन्तरीपम्, दुर्भिक्षम्, सर्व्वश्वेतः, अकिञ्चनः, द्वैमातुरः, त्रिलोकनाथः, त्रिलोकीनाथः, विस्मयोत्फुल्ललोचना।

14. Expound the compound words :—उन्नतमनाः, उन्नतमनः ; महद्भयम्, महाभयम् ; and use them properly in different sentences.

15. State the rules of—पूर्व्वनिपात and परनिपात and cite examples. Suggest other forms of द्विचत्वारिंशत्, अष्टपञ्चाशत्, एकोनविंशतिः।

16. Distinguish in meaning between द्वितीयभिक्षा and भिक्षाद्वितीयम्, अन्तर्हत्य and अन्तर्हत्वा, द्व्यङ्गः and द्व्यहः, देवानाम्प्रियः and देवप्रियः, अनृचः and अनृक्, बह्वृचः and बह्वृक्।

17. Render into idiomatic Sanskrit :—I dislike *people given to quarrelling* (कलहप्रियजनाः). Having finished our meal, *we resumed our journey* (गन्तुं प्रवृत्ता वयम्). The old man still stood talking by my side. The children love to play *on the bank of the stream* (सरिदुपकण्ठे). A great many of the miseries of mankind arise from *sloth* (आलस्य) and *thoughtlessness* (अनवधानता or निर्बुद्धिता). Honour thy father and thy mother that thou mayest live *long* (चिराय) *happily* (सुखेन) on the earth. *The good* (सन्तः) *deserve to be loved* (प्रीतिपात्रम् भवन्ति). There are high rocks *on both sides of the river* (नदीमुभयतः). When *a low-minded person* (नीचः) has gained *a post of honour* (श्लाघ्यपदम्), he *desires to get rid of the master* (स्वामिनं हन्तुमिच्छति). Shakuntala forms *a part* and *parcel of my body* (मम देहांशभूता).

18. Translate into Sanskrit :—

(*a*) A little boy with *crumbs of bread* (अपूपखण्डानि),
Many a hungry sparrow fed.

(*b*) He lay like a *warrior* (योद्धा) taking his rest,
With his *martial cloak* (युद्धसज्जा) around him.

(c) Who kills the foremost foe-man's life.
His *party* (दलम्) conquers *in the strife* (संयुगे) ।

(d) Then shook the hills with *thunder* (वज्र) riven (दीर्ण),
Then rushed the steed to battle driven.

(e) Make no peace with the man who fights *at the wrong time and place* (असमये अस्थाने च) ; for, in doing so, you will be destroyed even as a crow is killed by an owl on a dark night.

(f) *Greatly troubled in mind* (अतिव्याकुलितमनाः) *the young hermit* (असौ तरुणतापसः) went out for a walk along the river-side. The night was *awfully* (भृशं) dark ; no birds were chirping ; no bees were humming ; all creatures *had gone to their rest* (विश्रामं गताः). The young hermit, however, had no rest ; he had lost his *peace of mind* (चित्तप्रसादः).

(g) How to live happily ? Certainly by regular performance of duties. Don't waste your time ; the past is past for ever. Work, work, always work ; work is really life.

(h) Do not think that this is the only life you have ; you have had several lives ; many more you will have in future. Friends you have in every life ; so you have only friends about you. Some have been friends already ; others will be such in lives to come.